UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180271

UNIVERSAL
LIBRARY

लतखोरी लाल

श्री. जी. पी. श्रीवास्तव
बी. ए. एल. एल. बी.



सचित्र

(हास्यरस का अनुपम ग्रन्थ)

लेखक—

हास्यरस के सुविख्यात लेखक, अनेकानेक पुस्तकों
के रचयिता, स्वर्ण-पदक प्राप्त

श्री० जी० पी० श्रीवास्तव,

बी० ए०, एल्-एल० बी० ।

प्रकाशक—

भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, काशी १

ब्राञ्च—कचौड़ीगली, बनारस ।

★

चतुर्थ बार २०००] मिलने का पता:— [मूल्य ४)

साहित्य रत्न भंडार, आगरा.

प्रकाशक-
पं० कैलासनाथ भार्गव 'अमर'
अध्यक्ष-भार्गवपुस्तकालय, गायघाट,
बनारस १.
ब्रांच-कचौड़ीगली, काशी ।

सर्वाधिकार सुरक्षित

इस पुस्तक की कापीराइट जरिये नीलाम अदालत ता० १-१२-४४ को पं० बैकुंठनाथ भार्गव, अध्यक्ष-भार्गवपुस्तकालय ने, जो अब प्रकाशक हैं खरीद किया है ।

मुद्रक-
पं० बैकुण्ठनाथ भार्गव,
आनन्दसागर प्रेस, गायघाट
बनारस १.

लतखोरीलाल



पुस्तक के रचयिता—

श्री० जी० पी० श्रीवास्तव, बी० ए०, एल्-एल्० बी० ।

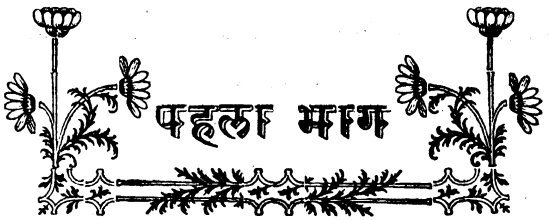
उपहार



विषय-सूची

क्रमाङ्क	विषय			पृष्ठ
१.	जेण्टिलमैनो की धूम	....	....	१
२.	गवने के मजे	....	....	२८
३.	ससुराल की बहार	....	....	५४
४.	शान की खातिर	....	....	९५
५.	परदेस की लीला	....	....	१३४
६.	लाहौल बिलाकूवत	....	....	१८४





जेण्टिलमैनी की धूम

"देखो जी, मैं बेहद सञ्जीदा हूँ।"

"तो ताज्जुब की इसमें कौन सी बात है?"

"नहीं, मैं बात कहता हूँ।"

"मैं भी तो बात ही का जवाब देता हूँ।"

"ऐ! है! मैं चाहता हूँ कि तुम भी जरा सञ्जीदा हो जाओ।"

"क्यों? क्या इसकी जरूरत है?"

"हाँ, मैं तुमसे एक भेद की बात कहने वाला हूँ।"

"कोई खून-ऊन का मामला है क्या?"

"मैं कहता हूँ कि तुम सुनते क्यों नहीं?"

"खातिर जमा रखो, मैं बहरा नहीं हूँ। मेरे कान ठीक तरह से काम कर रहे हैं।"

"तुम सुनोगे या नहीं?"

"मैं कब कहता हूँ कि नहीं।"

"अच्छा तो सुनोगे?"

"हाँ-हाँ दोनों कानों से।"

"बात यह है कि मैं जेण्टिलमैन होनेवाला हूँ।"

"अरे! अब तक तुम क्या थे? जानवर या 'लेडी'?"

"मैं पागलों से बात नहीं कर सकता। मगर इतना तुम जान लो कि अब तुम मुझे श्यामलाल सकसेना के नाम से मत पुकारना।"

"तो क्या सीटी पर बुलाना पड़ेगा ?"

"सीटी पर तो कुत्ते ही आ सकते हैं।"

"और आदमी तो और ज्यादा। क्योंकि वह समझदार जानवर है।"

"धत् तेरे लॉजीशियन की ऐसी की तैसी। कम्बख्त किसी वक्त 'लॉजिक' (न्याय-शास्त्र) से खाली नहीं रहता।"

बात-बात पर बिगड़ना और उल्टी-सुल्टी कह सुनाना तो जेण्टिल-मैनों का फैशन है। मेरी जबान से भी एकाध टेढ़ी-मेढ़ी बात जो निकली तो इससे यह सबूत मिल गया कि मेरी किस्मत भी मुझे जेण्टिलमैन बनाने में मदद कर रही है। मैं भिन्नाया हुआ उस लॉजीशियन के कमरे से बाहर निकला। जैसे दरवाजे पर पहुँचा, वैसे मुझे यह सुनाई दिया कि "अफसोस! बुरे वक्त इसका दिमाग़ बिगड़ा।" फौरन ही मैं रुका और घूम पड़ा। मगर यह सोचकर कि जेण्टिलमैन लोग ऐसा नहीं करते हैं, मैं चुपचाप चला आया।

जितने खत बाबू श्यामलाल सकसेना के नाम से आए थे, उन सबों को मैंने बिना पढ़े ही वापस कर दिया, ताकि भेजनेवालों के लिए यह एक सबक हो जाय कि फिर वे लोग ऐसी गलती न करें और इस देहाती नाम से फिर मुझे कोई खत न भेजें। मैंने पोस्टमास्टर को भी खबर भेज दी कि इस पते के खत डाकखाने ही से लौटा दिए जाया करें; क्योंकि श्यामलाल सकसेना के नाम का यहाँ कोई आदमी नहीं है। इसके बाद मैंने कॉलिज और बोर्डिङ्ग हाउस में ढिंढोरा पीट दिया कि आज से मैं मिस्टर सैमुएल सैक्सन (Mr. Samuel Saxon) हो गया। इस तरह से मैने अपने आपको उन सैक्सनों (Saxons) के वंश में, जो कि पहले-पहल इङ्गलिस्तान में बसे थे, पैदा हुआ समझने की इज्जत हासिल की। मैंने दर्जनों अपने इस नाम

के खत लिखकर डाकखाने में छोड़ दिए, ताकि डाकिए को मेरा यह नाम अच्छी तरह से याद हो जाय।

सीटी बजाते हुए तलवों के बल चलने की 'प्रैक्टिस' (अभ्यास) घण्टों अपने कमरे में करता रहा; क्योंकि यह जेण्टिलमैनों के लिए जरूरी है। मगर उस रोज से मेरे पैरों में बेहद दर्द रहने लगा। खैर, जब चीन की औरतें खूबसूरती के लिए अपने पैरों को छोटा करने में न जाने कैसी-कैसी तकलीफें सहती हैं, तो क्या जेण्टिलमैन होने के लिए मैं इतना भी नहीं सह सकता था? मगर यह चाल शुरू-शुरू में जरा भद्दी जरूर रही होगी; क्योंकि जहाँ मैं जाता था, वहाँ लोग मुझे देखकर हँस दिया करते थे। इसकी मैं जरा भी परवाह नहीं करता था; क्योंकि मैं जानता था कि सब लोग शुरू में हँसे जाते हैं। इसी लिए मैंने पक्का इरादा कर लिया कि फैशन के मामलों में किसी से भी सलाह नहीं लूँगा। हमेशा इन बातों पर अपने दिमाग और मेसर्स ह्वाइट के कैटलाग (फेहरिस्त) का सहारा लिया करूँगा।

अब तक मुझे अपने घरवालों की सख्तियों के कारण कभी बाकायदा कोट-पतलून पहनने की नौबत नहीं आई थी। फिर भी मैंने चुपके से एकाध पतलून सिलवा ली थी, जिसे मैं अपने लम्बे हिन्दुस्तानी कोट या अचकन के नीचे पाजामे के बदले अकसर पहना करता था। मगर जेण्टिलमैनों को अंगरेजी काट के कोट-पतलून पहनना जरूरी होता है। इतना मुझे मालूम था कि इस ढङ्ग की पोशाक को 'सूट' कहते हैं। और कैटलॉग में बड़े सस्ते दामों का एक सूट भी दिखाई पड़ा। झट मैने उसकी तीन अदद 'आर्डर' कर दी। मगर जब पारसल आया और उसे पहन कर कॉलेज गया, तो लड़कों ने इतनी तालियाँ पीटीं कि जेण्टिलमैनों की रीति के अनुसार 'थैङ्क यू! थैङ्क यू!' (धन्यवाद) कहते-कहते मेरा गला बैठ गया और उनकी "वाह-वाह" खतम न हुई। आखिर जब दर्जे में प्रोफेसर आए, तब जाकर यह शोर बन्द हुआ। मगर वह हजरत तो मुझे देखते ही

है, जिसको कस देने से आगे की पहिया बिलकुल सीधी हो जाती है, फिर इधर-उधर नहीं मुड़ सकती। मैं मारे खुशी के कूद पड़ा। बड़ी भारी चीज हाथ लगी। जिसके लिए मैं इतना परेशान था, वही मालूम हो गया। फौरन ही बाइसिकिल उठाई और खूब तेज करके दोनों हाथ छोड़ने के लिए हैण्डिल का हुड़का लगा दिया। वैसे ही मैं तोप के गोले की तरह जमीन पर इस जन्नाटे के साथ आया कि दो हफ्ते तक मेरी जेण्टिलमैनी चारपाई पर आराम करती रही। और बाइसिकिल का तो उसी जगह क्रिया-कर्म हो गया।

३

इन्हीं दिनों एक अंगरेजी थिएटर आया हुआ था। मेरा भी इरादा हुआ कि मौका खाली न दूं। इसलिए अपनी नई पतलून के लिए बाजार से गैलिस खरीद लाया। मगर समझ में न आया कि इसको इस्तेमाल कैसे करूँ। अब तक तो रस्सी या फीता से पतलून बाँधा करता था। खैर, किसी न किसी सूरत से इसे पतलून के बटनों में उलझा लिया।

अपने ख्याल के मुताबिक पूरा फैशनेबिल जेण्टिलमैन बन के अकड़ता हुआ थिएटर देखने चला। अपने रेशमी रूमाल को आस्तीन में डाल लिया। मगर कदम-कदम पर न जाने क्यों पतलून नीचे खिसकने लगी। लाख सम्हाली, मगर उसका खिसकना जारी ही रहा, तब विवश होकर एक गाड़ी किराए पर की, और वहाँ पहुँच कर Orchestra (दर्जा खास) का टिकट लिया। क्योंकि मैं चाहता था कि तमाशे का मजा पूरी तरह उठाऊँ। एक हाथ में टिकट लिए दूसरे से पतलून थामे जैसे-तैसे भीतर पहुँचा। लेकिन इतनी खबर-गीरी करने पर भी मेरे घुटने के नीचे पतलून में दर्जनों सिकुड़ने थीं। इसलिए पहली ही कुरसी पर लद से बैठ गया। सबकी आँखें मेरी ही तरफ दौड़ पड़ीं और हँसी की आवाज हाल में गूँज उठी। मुझे इसकी

वजह न मालूम हुई। एक छोटी लड़की मेरी तरफ उँगली उठा कर अपनी माँ से पूछने लगी—"मामा, यही Clown (नाटक का बेवकूफ) है ?"

मैं तुरन्त बोल उठा—"नहीं, जेण्टिलमैन।"

फिर हँसी की आवाज गूँजी। मैं खड़ा होकर चारों तरफ आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा कि बात क्या है। कुछ समझ में नहीं आया। मगर वजह कुछ न कुछ जरूर होगी। इसलिए सबका साथ देने के लिए मैं भी योंही हँसने लगा। इतने में किसी ने पीछे से मुझे पुकारा। यह वही मेरा साथी लॉजीशियन था। वह मुझे कह रहा था कि बाहर चलो। मगर मैं कब सुनने वाला ? क्यों ? यह न पूछिए, अभी खेल नहीं शुरू हुआ था। वह लॉजीशियन बाहर से मेरे पास आया और मेरा हाथ पकड़ कर खींचने लगा। बहुत से बहाने किए, मगर एक न चली। खैर, उसके साथ बाहर चलने को मैं राजी तो हो गया, मगर इस शर्त पर कि वह मेरा हाथ छोड़ दे। उसने ऐसा ही किया। तब मैं अपने दोनों हाथों को पतलून की जेबों में डाल कर उसे ऊपर सरकाते हुए चला।

"क्यों मिस्टर सैकसन, यह तुम किसकी पतलून माँग लाए आज ?"

"मेरी है जी, माँगने भला किससे जाऊँगा ?"

"सिलवाई किससे ?"

"एक दर्जी से।"

"मैंने समझा शायद घर ही में सिलवाई है। मगर भाई, तुम्हारा दर्जी बड़ा ईमानदार मालूम होता है।"

"तुम्हें कैसे मालूम हुआ।"

"यह देख कर कि उसने सब कपड़ा इसके सीने में लगा दिया। अपने लिए दो गिरह भी नहीं चुराया।"

"अच्छा इस वक्त तो जरा तुम अपना रूमाल दे दो।"

"क्यों ? तुम्हारे पास नहीं है क्या ?"

"है क्यों नहीं। बात यह है कि दोनों को मिला कर अपनी पतलून बाँधूँगा। यह देखो, हमारे पास ऐसा रूमाल है कि···धत् तेरे फैशन की। न जाने कहाँ गिर पड़ा।"

"क्यों-क्यों, पतलून क्यों बाँधोगे ? क्या बेल्ट या गैलिस कुछ लगाए नहीं हो ?"

"भाई गैलिस तो लगाए हूँ, मगर कम्बख्त दूकानदार ने सबसे बड़ा गैलिस दे दिया है।"

"क्या ? सबसे बड़ा !" यह कह के वह बहुत हँसा। फिर उसने पूछा—"क्या तुमने उससे छोटा नहीं करा लिया ?"

"नहीं, क्या यह छोटा बड़ा भी हो सकता है ?"

उसने मेरी वासकट खोल कर मेरे ब्रेसेस (गैलिस) को इतना कस दिया कि मेरी पीठ बिलकुल तख्ते की तरह सीधी होकर पीछे को ऐंठ गई। इतने ही में पर्दा उठा। हम दोनों अलग हो गए। मैं जाकर कुर्सी पर किसी सूरत से बैठ गया। मेरी पीठ की रीढ़ बेतरह पीछे झुकने लगी। अगर कुर्सी मुझे रोके हुए न होती तो मैं जरूर कलाबाजी खा जाता। दम-बदम यही मालूम होता था कि रीढ़ अब टूटी। तमाशा के सर-पैर का कुछ पता ही नहीं चलता था। यहाँ तो मारे दर्द के जान निकल रही थी। शुरू से आखीर तक मैं 'ब्रेसेस' को ढीला करने में बझा रहा। मगर ज्यों-ज्यों उसको ढीला करने की कोशिश करता था; त्यों-त्यों वह और कसता गया। एक तरफ मेरा ऊँचा कसा हुआ 'कालर' गला घोंट रहा था, दूसरी तरफ गैलिस पीठ की हड्डी तोड़ रहा था। बुरी हालत थी। ऐसी मुसीबत में मुझे पूरे तीन घण्टे तक बैठना पड़ा।

सुबह को जब मेरे साथियों ने पूछा कि तमाशे का नाम क्या था और कैसा था, तो मैंने चुपके से जवाब दिया कि—"तमाशे का नाम 'गैलिस की सिकुड़न' था और मैंने इसका खूब मजा उठाया।"

४

जेण्टिलमैन होकर जिसने अङ्गरेजी खाना विलायती ढङ्ग पर नहीं खाया, उसके बराबर गावदी दूसरा कोई नहीं हो सकता। इसी लिए जिस दिन से मैं कोट-पतलून पहन कर साहब बना, उसी दिन से मैं अङ्गरेजी ढङ्ग से खाना खाने की फिक्र करने लगा। मगर साथियों के मारे कुछ बस नहीं चलता था। कम्बख्त हर वक्त साथ लगे रहते थे। होटलों में जाने का कभी मौका ही नहीं मिलता था। जब कभी इस इरादे से बोर्डिङ्ग हाउस से निकला, तब अदबदा कर रास्ते में किसी न किसी सहपाठी से मुठभेड़ हो जाती थी और मुझे बैरङ्ग वापस आ जाना पड़ता था। होस्टल में मेरी तरह और भी कई लड़के फैशनेबिल थे सही; मगर फिर भी खाना खाने के मामले में सभी हिन्दुस्तानी ही थे; यों तो चाय के साथ वे लोग अण्डे रोज ही निगल जाते थे; मगर वह भी हिन्दुस्तानी तरीके पर! कुछ साहब लोगों की तरह; छुरी-काँटे से नहीं!

खैर, मूर्खों की सङ्गत में रह कर भी मैं मूर्ख नहीं रहा; क्योंकि जब कभी मुझे मौका मिलता था, खाना अपने कमरे ही में मँगवा कर दरवाजा बन्द कर लेता था। चाकू छोटी होती है, इसलिए मैं अपने दाढ़ी बनाने वाले अस्तुरे से पूड़ियाँ काटता था और परकार से उन्हें छेद-छेद कर खाता था। मगर इस तरह खाने में भूख नहीं बुझती थी और न खाने का मजा ही मिलता था। फिर भी विलायती ढङ्ग पर खाने का अभ्यास तो होता जाता था। यही बड़ी बात थी।

एक दिन दाढ़ी बनाते वक्त हमारे अस्तुरे साहब अकड़ गए। जिनको घी से चुपड़ी हुई चपातियों का मजा मिल चुका था, उन्हें भला खाली साबुन से भिगोई हुई दाढ़ी अब कब पसन्द आ सकती थी? किसी तरह रो-रोकर उन्होंने दाढ़ी को सफाचट किया; मगर जब मूछों की तरफ इशारा किया, क्योंकि फैशन के मुताबिक मैं आधी-आधी मूछें भी बनाता था, तब उन्होंने वह हाय-तोबा मचाई कि कुछ न पूछिए

मगर यह नखरे भला मैं कब देख सकता था ? ताव आ ही गया। ऐसा कस के उन्हें मूँछों पर उसका दिया कि मूछ बजाय आधी के एक तरफ पूरी सफाया हो गई !

हाय ! हाय ! यह तो बहुत ही बुरा हुआ। एक मूँछ रखने का फैशन भी नहीं, फिर इस सूरत से मैं किस तरह लोगों के सामने निकल सकता था ? शीशा उठा कर मुँह देखा तो मुझे खुद अपनी शक्ल पर इतना गुस्सा चढ़ा कि मैंने शीशा पटक दिया और बड़ी देर तक सोचता रहा कि या ईश्वर, अब क्या करूँ ? अन्त में यही निश्चित किया कि मूँछ दूसरी तरफ भी साफ करके सदा सुहागिन ही बन जाना अब मुनासिब है और इसमें हर्ज ही क्या था ? यह तो आले दर्जन का फैशन था। मैं खुद ही अपने शौक से यही करने वाला था। सिर्फ पिता जी के मरने की इन्तजारी थी। अगर वह न मरें और तकदीर बीच ही में मुझे फर्स्ट क्लास फैशनेबिल बना दे तो मेरा क्या दोष ?

मगर न जाने मूँछे सफाचट हो जाने के: कारण मेरी शक्ल औरतों की सी हो गई या देखने वालों की अक्ल पर पत्थर पड़ गया कि जैसे ही मैं कमरा खोल कर बाहर निकला, वैसे ही जिस तरह कातिक में कुतियों के पीछे कुत्ते लगे रहते हैं, उसी तरह बोर्डिङ्ग के सभी लड़के मुझे घेरे-घेरे फिरने लगे। यहीं तक नहीं, बल्कि कुछ तो ऐसे मनचले निकले कि मुझे सुना-सुना कर इन्द्रसभा पढ़ने लगे। जिनसे मेरी ज्यादा बोल-चाल न थी, वे दूर से ही घूरते और हाय करके रह जाते थे और जिनसे मेरा रब्त-जब्त बढ़ा हुआ था और जिनको मैं सीधा-सादा समझता था, वे तो ऐसे बेढब निकले कि लाख मना करने पर भी मेरे गालों पर हाथ फेर ही देते थे।

शाम को टहलने के लिए बाजार की तरफ निकला तो दस-पाँच साथ हो लिए और सभी मुझे खींच-खींच कर अपने ताँगें पर बैठालने लगे। बेताबअली सबसे जबर्दस्त था और हाथ-पैर का भी तगड़ा

था। उसने सबको डाँट-डपट कर भगा दिया और मुझे अपने ताँगे पर बैठा कर बाजार ले गया। वहाँ उसने मुझे कचालू, दही बड़े, कुल्फियाँ खिलाईं और शर्बत पिलाया। यह सब तो मुझे बड़ा अच्छा मालूम हुआ। क्योंकि पहले सैर-सपाटे और चाट उड़ाने में मुझे खुद अपना पैसा खर्च करना पड़ता था और अब दूसरे के मत्थे यह मजा उड़ाना भला किसे बुरा मालूम हो सकता था? मगर जब उसने एक गली में ले जाकर मुझसे कहा कि—"जानमन! जरा एक बीसा दे दो!" तब तो मेरे होश गुम हो गए और वहाँ से मैं बगटुट भागा और एक साँस में होस्टल पहुँच कर नौकर को बुला कर कह दिया कि मेरी तबीयत खराब है, मैं रात को खाना नहीं खाऊँगा और भीतर से दरवाजा बन्द कर चुपचाप लेट गया।

सुबह को जगा और कमरा खोला तो देखा कि दरवाजे के दरारों से मेरे कमरे में आठ-दस खत डाले गए हैं। सभी का मजमून एक है। मगर लिखने वालों के नाम नहीं थे। मैं उन्हें पढ़ कर बहुत घबड़ाया, क्योंकि जिस तरह मर्द औरतों को खत लिखते हैं, उसी तरह से वे सब खत मेरे सहपाठियों ने मुझे लिखे थे। या ईश्वर! मुझे तो मूँछ मुँड़ाए हुए केवल कुछ ही घण्टे हुए थे और इतनी देर में मेरी यह हालत हो गई और जो जेण्टिलमैन बहुत दिनों से सदा-सुहागिन बने हुए हैं, उनकी भला कैसी हालत होगी? लाजीशियन ने राय दी कि "तुम होस्टल के सुपरिण्टेण्डेण्ट मिस्टर निकोलस के पास जाओ, वह इस आफत से छुटकारा पाने का उपाय कुछ न कुछ जरूर जानते होंगे, क्योंकि उनकी भी दाढ़ी-मूँछ सभी सफाचट है। देखने में भी हसीन और नौजवान हैं। उनसे बढ़ कर इस मामले में तजुरबेकार कौन हो सकता है?" बात ठीक कही, इसलिए मैं इस मुसीबत से बचने की राय लेने के लिए उनके पास उन खतों को लेकर गया। क्योंकि मैं जेण्टिलमैन तो बनना जरूर चाहता था; मगर भाई, मर्द होकर औरत बनना मुझे किसी तरह गवारा न था।

खत सब अङ्गरेजी में थे। उन्हें पढ़ कर मिस्टर निकोलस मुस्कराए और मुझे देख कर पूछा—"क्या तुम प्रेम करते हो ?"

मैं—"जी नहीं, मैंने इन खतों को नहीं लिखा है, बल्कि यह सब मुझे लिखे गए हैं।"

निकोलस—"तब तुम्हें मैं मुबारकवाद देता हूँ।"

मैंने दिल में कहा कि यह तो अच्छे मिले। क्या सभी मूँछ-मुण्डे ऐसे ही होते हैं ? उनको मुस्कुराता हुआ देख कर अब मुझसे नहीं रहा गया।

मैं—"वाह जनाब, यह मुबारकबादी कैसी ? म तो आप से इस मुसीबत से छुटकारा पाने का उपाय पूछने आया और आप मुबारक-बादी देते हैं।"

निकोलस—"क्या तुम इस औरत को नहीं चाहते हो, जिसने तुम्हें इन प्रेम-पत्रों को लिखा है ?"

अङ्गरेजी की क्रिया में तो कोई लिङ्ग-भेद होता नहीं, इस लिए सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब यह न समझ सके कि उन खतों को किसने लिखा है—पुरुष या किसी स्त्री ने।

मैं—"अजी जनाब, ये खत औरतों के नहीं, बल्कि मर्दों के लिखे हुए हैं।"

यह सुनते ही मिस्टर निकोलस का चेहरा सुर्ख हो गया, उन्होंने दराज खोल कर अपना तमञ्चा निकाल मेरी तरफ किया और बहुत ही गुस्से में बोले—"मर्दों का नाम डुबोने वाले जनाने ! निकल यहाँ से, नहीं तो अभी तेरी खोपड़ी उड़ा दूँगा।"

मेरा खून जम गया, लड़खड़ा कर किसी तरह मैंने कहा—"मे-मे-मेरा कुछ न-न-हीं कसूर है।"

निकोलस—"कम्बख्त ! अगर तू ऐसा न होता तो तेरे पास इस तरह के खत क्यों लिखे जातें ? अगर तूने इन खतों को किसी स्त्री को लिखा होता, तो मैं तेरे साथ हमदर्दी करता। अगर कोई स्त्री इन्हें

तुझे लिखती तो म तुझे मुबारकबाद देता। क्योंकि पुरुष के लिए स्त्री और स्त्री के लिए पुरुष प्रेम करने की चीज है, मगर पुरुष के लिए पुरुष ईश्वर ने नहीं बनाया है। इसलिए मैं तुझे और तेरे आशिक दोनों को गोली मार देना चाहता हूँ। छिः! ऐसे जनखों के साथ मैं किसी किस्म की रियायत नहीं कर सकता।"

मैं निकोलस के पैरों पर गिर कर, गिड़गिड़ा कर बोला—'दोहाई है, मुझे न मारिए। ईश्वर के लिए पिस्तौल का मुंह नीचा कीजिए, नहीं तो गोली चलाने के पहले मेरा दम निकल जायगा।"

निकोलस—"तुझे छोड़ दूं? गैर मुमकिन है। आज के दिन तू खुद जनाना है और कल तू दूसरों को जनाना बनाएगा। क्योंकि जो कम्बख्त पहले खुद जनख होते हैं, वही बाद को लौंडों पर इस तरह आशिक होते फिरते हैं और उनको तबाह करते हैं। खबरदार! छोड़ इन आदतों को, नहीं तो तेरी चाल-ढाल, मिजाज और शौक सब औरतों के से हो जायँगे और तुझसे कोई स्त्री बात तक करना पसन्द न करेगी, शादी करना तो अलग रहा।"

मैं—"मैं कसम खाकर कहता हूँ, मैं उस किस्म का नहीं हूँ, जैसा आप समझ रहे हैं। यह तो आपकी तरह मूँछ मुड़ाने से मुझ पर पहली मुसीबत पड़ी है। फिर भी इस पिस्तौल वाली मुसीबत से तो वह मुसीबत कहीं अच्छी है। उसमें दूसरों के मत्थे मिठाइयाँ खाने को तो मिलती हैं।"

साहब जरा धीमे पड़े थे कि मेरी आखिरी बात से फिर पतलून से बाहर हो गए और दाँत किटकिटा कर बोले—"बस, चला जा, मैं तुझसे बात तक करना नहीं चाहता। इधर यह भी शौक है कि दूसरे तुझे मुफ्त मिठाइयाँ भी खिलावें और उधर यह कहता है कि मैं उस किस्म का नहीं हूँ। झूठा, बदमाश कहीं का! इस किस्म के लोग फिर होते कैसे हैं? अरे! बेवकूफ इसी शौक ने न जाने कितने मर्दों को जनाना बना कर, उन्हें घृणा का पात्र बना रखा है। "Psychology

of sex" की "Homo sexuality" पर किताबें पढ़, तब तुझे अपनी इस आदत की बुराइयाँ मालूम होंगी।"

यह कह कर वह अपनी आलमारी के पास गए और एक मोटी-सी किताब निकाल कर उन्होंने मेरी तरफ फेंकी।

अब मेरी जान में जान आई। चुपके से किताब लेकर वहां से खिसकने को ही था कि इतने में साहब ने फिर कड़क कर पूछा—"अपने आशिक का नाम बता।"

मैं—"एक या दो हों तो नाम बताऊँ भी। इन खतों में बेताबअली, रामनाथ और श्यामाचरण के खत पहचानता हूं, औरों की बाबत नहीं बता सकता, किसके हैं।"

तीनों आदमी बुलाए गए। तीनों पर साहब पिस्तौल लेकर उसी तरह फट पड़े, जिस तरह मुझ पर बिगड़े थे। बेताबअली को उसी वक्त उन्होंने बोर्डिङ्गहाउस से निकाल दिया। क्योंकि वह बिन-ब्याहा था। मगर रामनाथ और श्यामाचरण ब्याहे हुए थे। इसलिए इन लोगों को छुट्टी देकर घर भेज दिया और ताकीद कर दी कि तुम लोग हर महीने में दो-चार दिन के लिए घर हो आया करो, वरना बोर्डिङ्ग में रहने नहीं पाओगे। मैं भी ब्याहा हुआ था, मगर साहब ने मेरी एक नहीं सुनी और मुझे भी निकाले जाने का हुक्म दे दिया। वाह री तकदीर, मूंछ मुड़ाते ही अच्छी आफत आई! कसूर किया किसने और मारा गया कौन?

५

मैं अपने कमरे में आकर रोने लगा। दुनिया की सब से खराब बदमाशी का भी कलङ्क लगा कर निकाला जाता, तो मुझे इतने रञ्ज न होता, जितना इस तरह निकाले जाने से हुआ। हाय! अब मैं किस तरह अपने घर वालों के सामने जाऊँगा, और जब ससुराल में मेरी स्त्री यह सुनेगी, तब वह भला अपने दिल में क्या कहेगी।

मैं यह सोच कर तड़प उठा और मुझे अपने से इतनी घृणा मालूम हुई कि अपने जीवन का अन्त कर देना ही मुझे उचित मालूम हुआ।

मगर जहर कहाँ पाता ? बोर्डिङ्ग में किसी के पास बन्दूक भी न थी। अन्त में फाँसी लगा कर मरना निश्चित किया। रस्सियों की जगह पर धोतियों से काम लिया। मेज पर कुरसी और स्टूल रख कर धोती को रोशनदान से बाँधा; दूसरी तरफ रोशनदान न था, इसलिए उस तरफ दीवाल में कील गाड़ कर उसमें धोती बाँध दी और बीच में मेज रख कर अपने गले में फन्दा डाला और लटक गया।

कमरे में लैम्प जल रहा था और कम्बख्ती के मारे मेरी खिड़की खुली हुई थी। खिड़की की तरफ नौकरों के मकान थे। शायद उनमें से किसी ने देख लिया। क्योंकि वैसे ही उस तरफ से बड़े जोर से चिल्लाहट सुनाई पड़ी और मैं पक्के फर्श पर चारो खाने चित गिरा। खोपड़ी भिन्ना गई। अब मालूम हुआ कि मेरे बदन के बोझ से दीवाल की कील उखड़ गई। मैं अपना सर सम्हाल रहा था कि इतने में मेरे दरवाजे पर धक्के पर धक्के पड़ने लगे और सिटकिनी का हुड़का चुरमुरा कर अलग हो गया।

मैं चित पड़ा हुआ था और सामने कई लड़के मिस्टर निकोलस के साथ खड़े थे। लड़कों ने मुझे उठाया और निकोलस के हुक्म से मेरे असबाब मेरे कमरे से बाहर किए गए। अब मैं मय सामान के 'कॉमन रूम' में जिसमें बजाय एक लड़का के कई लड़के रहते थे, रखा गया। उस वक्त मिस्टर निकोलस मुझसे बड़ी गम्भीरता से बोले—"मुझे मालूम हो गया कि तू ऐसा खराब नहीं है, जैसा मैं समझता था। वरना तुझे इतना रञ्ज न होता। इसलिए मैं तुझे बोर्डिङ्ग से नहीं निकालूँगा; मगर खबरदार, अब ऐसी हरकत मत करना !"

मैं—"जी हाँ, यह तो मैं भी जानता हूँ कि मैं वैसा नहीं हूँ। क्यों कि आपकी किताब में लिखा हुआ है कि ऐसे लोगों को लड़कपन ही से माँग-पट्टी सँवारने का शौक होता है, मुँह पर तेलपनियाँ लगाने की

आदत होती है, पर मैं लड़कपन में सदा उजड्ड ही रहा, यहाँ तक कि बुलबुली भी नहीं रखाई। तभी तो यह देखिए, मेरे बाल सूअर के ऐसे हैं। मगर फिर भी आप मुझे नहीं समझे तो मैं क्या करता ? यह तो महज आपकी देखा-देखी मूँछ मुँड़ाई थी, उसी का नतीजा भुगत रहा हूँ; मगर आप पर इतने दिनों में भी कोई कम्बख्त आशिक नहीं हुआ और मुझे एक ही दिन में लोगों ने मार-मार कर माशूक बना दिया ! यही ताज्जुब है !"

निकोलस—"खैर ! तू बड़ी जल्दी चेता, यही बड़ी बात है, वरना तुझे लोग खाली माशूक ही नहीं, बल्कि बिलकुल औरत ही बना कर दम लेते और तू फिर इस दुनियाँ में किसी काम के लायक न रहता।"

साहब चले गए; मगर बात सच कह गए ! क्योंकि जब मैंने उनकी किताब पढ़ी तो इन बातों को समझा। बाप रे बाप ! बहुत बचा।

६

आफत आई और निकल भी गई; मगर मेरी मूँछ सफाचट की सफाचट ही रही। क्योंकि जब दिल में किसी बात का शौक पैदा हो जाता है, तो फिर वह हजार मुसीबतों में भी कायम ही रहता है। खैरियत इतनी ही थी कि मिस्टर निकोलस की सख्तियों से फिर किसी ने मुझे औरत बनाने की कोशिश नहीं की। सभी मुझसे दुम दबा कर भागने लगे। अगर कोई रास्ते में भी मिल जाता था, तो वह भी मुझे देख कर मुँह फेर लेता था। इसलिए अब मैं आजाद होकर हर जगह घूम-फिर सकता था।

एक दिन मेस का महाराज बिमार पड़ गया, बोर्डिङ्गहाउस में खाना नहीं बना। लड़के भूख बुझाने बाजार गए। कोई पूडियों पर टूटा, कोई भोजनालय में गया, कोई हिन्दू होटल में घुसा, और मैं चुपके से एक विलायती होटल में चला गया। इतने दिनों बाद आज अपने अरमान को पूरा करने का मौका मिला।

होटल में पहुँचते ही ऐसा मालूम हुआ जैसे मैं अपनी ससुराल में आ गया। हर तरफ खातिरदारियों की भरमार होने लगी। चमकती हुई वरदियाँ पहिने खानसामों की एक फौज मुझ पर टूट पड़ी। और सब पारा-पारी मुझसे पूछने लगे-"क्या लाऊँ हुजूर? टी, टिफिन डिनर, आइसक्रीम, ह्विस्की; ब्रैण्डी, वगैरह वगैरह!" न जाने इस तरह के कितने ही नाम वे बक गए। मैंने इन सबके जवाब में घबड़ा कर कहा कि खाना खाऊँगा।

यह सुनते ही खानसामों ने मुझे एक कमरे में ले जाकर एक मेज के पास बैठाया और पारा-भारी एक एक छपा हुआ कागज मुझे थमा दिया। मैं चक्कर में था कि मैं तो खाना माँग रहा हूँ और यह लोग मुझे कागज दे रहे हैं।

मैं—"यह क्या बला है?"

एक खानसामा—"हजूर यह मीनू है।"

मैं—"हाँ, सब में ऊपर मीनू लिखा है, मगर इससे क्या मतलब?"

दूसरा खानसामा—"हुजूर, यह सब खानों की फेहरिस्त है, जरा पढ़िए तो।"

मैं—(पढ़ता हुआ) "मटन, सूप, फ्रेञ्च कटलेट, जरमन सासेज, सारडिन, वगैरह-वगैरह; धत् तेरी की, मैं इनको पढ़ने नहीं आया हूँ, मैं खाना खाने आया हूँ। खाना लाओ।"

एक खानसामा—"मगर किस फेहरिस्त का खाना लाऊँ? यह तो बताइए।"

मैं घबड़ा कर उसका मुँह देखने लगा। मेरे लिए खानों के नाम सब एक से थे।

मैं—"जिस फेहरिस्त का खाना विलायती हो।"

एक खानसामा—"विलायती तो सभी हैं। सिर्फ दाम में फर्क

है। कोई पचास रुपए वाला है, कोई पचीस रुपए वाला, कोई दस रुपए का है, तो कोई पांच रुपए का है।"

यह सुनते ही मेरी अक्ल चरने चली गई। जेब में हाथ डाल कर चुपके-चुपके रुपए गिनने लगा। मालूम हुआ, बारह रुपए हैं। दिल में आया कि दस रुपए वाला खाना मगाऊँ। मगर मुँह से निकल गया कि पाँच रुपए वाला खाना लाओ। इतने में एक खानसामा एक छिछली तश्तरी में जरा सा शोरवा लाकर मेज पर रख गया। मैं इस इन्तजार में था कि इसके साथ और भी कोई चीज आएगी; मगर वह दो मिनट के बाद आया और तश्तरी चम्मच उठा ले गया। दूसरा खानसामा आया और वह एक तश्तरी में तरकारीनुमा कोई चीज रख गया। थोड़ी देर बाद यह तश्तरी भी हटा ली गई। इसी तरह दो-एक चीजें और आईं और वे भी गायब हो गईं। मैं बड़ी परेशानी में था कि यह सब के सब क्या पागल हो गए हैं, जो एक-एक चीज लाते हैं और फिर उसे ले जाते हैं? मैं किस तरह से और किसके साथ उसे खाऊँ? खाने के लिए हाथ कैसे लगाऊँ? कमबख्त हाथ धोने के लिए पानी भी तो नहीं दे गए। यहाँ प्यास के मारे दम अलग सूख रहा था। इसलिए मैंने झल्ला कर पानी माँगा। एक खानसामा एक छोटे से प्याले में पानी मेज पर रख गया। मैं उसे उठा कर पी गया और उसे पुकार कर कहा, और पानी लाओ।

खानसामा—"अरे क्या आप उसे पी गए? लाहौल बिलाकूबत! वह तो चुटकी धोने के लिए था। पीने के लिए 'ड्रिंक्स' क्यों नहीं माँगा?"

मैं झेंप कर चुप हो गया। टांगों में खटमल काट रहे थे। कुरसी की बगल में एक धुला हुआ तौलिया लटक रहा था। मैंने उसे उठाकर कुरसी पर बिछा दिया और बैठ गया। अब जरा खटमलों से पीछा छूटा। इतने में एक तश्तरी मछली की आई। तरकारी, गोश्त या मछली मैं हमेशा रोटी, पूड़ी या चावल के साथ खाता था। मगर

मछली या खाली तरकारी किस तरह खाई जा सकती है, मेरी कुछ समझ मैं नहीं आया। इसलिए इस तश्तरी को खानसामा जब उठाने आया, मैंने उसका हाथ पकड़ लिया और कहना चाहता था कि इसके साथ कुछ खाने की चीज भी लाओ; मगर मैं कुछ कहने भी नहीं पाया था कि बौखलाहट में उसके हाथ से तश्तरी छूट कर मेरी गोद में गिर पड़ी। मेरे तमाम कपड़े खराब हो गए! उसने घबड़ा कर पूछा—"हुजूर, तौलिया क्या किया?"

म—"कुरसी पर बिछा दिया है।"

खानसामा—"लाहौल बिलाकूबत! उससे आपको अपनी गोद ढक लेना चाहिए था। इसलिए हर कुरसी के हैण्डिल पर तौलिया रक्खा जाता है। अगर आप उससे अपनी टाँगे ढके होते तो आपके कपड़े क्यों खराब होते?"

वह लेक्चर देकर चला गया और मैं मारे गुस्से और झेंप के अपना सा मुँह लिए रह गया। इस दफे तश्तरी में उबाली हुई गोभी आई। अब तो मुझसे इन्तजार करते न बन पड़ा। तीन-चार दफे छुरी और काँटे की मदद से खाना चाहा, मगर या तो मारे गुस्से के मेरे हाथ काँप रहे थे या छुरी-काँटे से खाने के ढङ्ग में कुछ गलती कर रहा था कि मेरी कोशिश ठीक काम नहीं कर रही थी। तब मैंने उकता कर हाथ से उसका एक टुकड़ा तोड़ा और मुँह में डाला। धत् तेरी की! बावर्ची ने इसमें निमक ही नहीं डाला था। खानसामा आया, मैंने उससे कहा—"यह तुम क्या दे गए? इसमें तो निमक ही नहीं है। खाऊँ किस तरह?"

खानसामा—"निमक छोड़िएगा तब तो निमक का मजा मिलेगा।"

यह कह कर उसने तश्तरी उठा ली। इसके बाद एकाध तश्तरी और आई। मगर मेरा दिमाग इतना उबल गया था कि मैंने किसी पर नजर नहीं डाली। अन्त में एक तश्तरी में खाली कागज आया।

मैंने अचरज में आकर उसे देखा तो मालूम हुआ कि ५) का बिल है ! अब तो मुझसे नहीं रहा गया।

मैं—"खाना मैंने खाया नहीं और तुमने यह बिल पेश कर दिया। "

खानसामा—"आप न खाएँ तो हम लोगों का क्या कसूर ? हमने तो आपके ऑर्डर के मुताबिक सभी खाना आपके सामने पेश किया।"

मैं—"पेश किया या दिखा-दिखा कर वापस ले गए।"

खानसामा—"विलायती खाना इसी तरह परसा जाता है। एक एक चीज सामने लाई जाती है और साहब लोग एक ही एक चीज एक दफे में खाते हैं।"

मैं—"भाड़ में गया इस तरह का खाना। तुम सब चीजों को मेरे सामने परसो।"

खानसामा—"पहले इसका बिल अदा कर दीजिए।"

मैं—"मगर मैंने खाया कहाँ ?"

खानसामा—"आप खाइए या न खाइए। आपके सामने खाना लाया गया, बस उसके दाम के आप जिम्मेदार हो गए।"

मैंने बहुत-कुछ कहा, मगर उसने न माना और ५) लेकर ही मेरी जान छोड़ी। खैर, रुपए तो मैंने दे दिए, मगर जहाँ सत्यानाश तहां साढ़े सत्यानाश सही। इसलिए मैंने फिर खानों का आर्डर दिया। क्योंकि मैं बहुत भूखा था। इस दफे खानसामा अकड़ गया और कहने लगा कि साहब आप बाद को फिर झगड़ा मचाएँगे। इसलिए इस ऑर्डर का आप पेशगी दाम दे दीजिए। खैर, मरता क्या न करता ! मुझे ५) और देने पड़े। अब वह अपने 'टिप' (इनाम) के लिए गिड़गिड़ाने लगा। वह भी झख मारकर देना ही पड़ा। १०) खाने में गए और २) इनाम में चले गए और मुँह में लुक्मा अभी एक भी नहीं गया।

कमरा खाली हो गया। मेज पर एक गुलदस्ता और एक इत्रदान रक्खा हुआ था। मैंने उसमें से एक शीशी निकालकर सूँघी कि देखूँ इसमें किस चीज का इत्र है। मगर राम! राम! वह तो सिर का निकला। दूसरी शीशी उठाई। उसको खोल कर सूँघा। बाप रे बाप! सूँघते ही दिमाग भिन्ना गया। छींकते-छींकते दम निकलने लगा। मेरी बुरी हालत हो गई। क्योंकि उसमें निमक और मिर्च की बुकनी थी। कम्बख्तों ने इन चीजों की ऐसी खूबसूरत शीशियों में इस तरह सजा कर भला क्यों रक्खा था? इसकी क्या जरूरत थी? उफ! यह सब जान लेने की तदबीरें थीं! मैं मुँह पर रूमाल डाले बड़ी देर तक छींकता रहा। जब जरा छींकना कम हुआ तब आँख उठा कर देखा कि मेज पर खाना चुना हुआ है। मैंने जल्दी से दरवाजा बन्द कर दिया, ताकि फिर न कोई खानसामा आकर खाना उठा ले जाए। और इतमीनान से हाथ में छुरी-काँटा लेकर 'चाप' का एक टुकड़ा मुँह में डालने की फिक्र करने लगा। एकाएक बड़े जोर से छींक आ गई। 'चाप' तो काँटे से उछल कर अलग गिरा, मगर काँटे पर जो खोपड़ी का झटका लगा तो वह सीधे नाक में घुस गया। खून का दरिया नाक से बहने लगा और मैं बाप-बाप करता हुआ सिटकिनी खोल कर वहाँ से भागा। वाह री मेरी जेण्टिलमैनी! कदम-कदम पर ठोकर खाने लगी?

७

कई सप्ताह बीत गए। न कोई खत आया और न मनीऑर्डर। सख्त परेशानी में था। खत के लिए उतनी फिक्र न थी, जितनी मनीआर्डर के लिए। क्योंकि उसके बिना जेण्टिलमैनी के सारे मनसूबों पर पानी फिर रहा था। जो कुछ रुपए मेरे पास थे और जितने भी यार-दोस्तों से उधार माँगे मिल सकते, वह पहले ही सफाचट हो चुके थे। इसलिए मैंने पिन-पिना कर पोस्ट-मास्टर को लिखा कि इस महीने में मेरा मनीऑर्डर क्यों नहीं आया? जवाब

आया कि "मनीआर्डर तो एक के बदले दो-दो आए थे, मगर वह मिस्टर सैमुएल सैक्सन के नहीं, बल्कि बाबू श्यामलाल सकसेना के नाम के थे। इसलिए आपके नोटिस के मुताबिक बहुत से खतों के साथ वे भी भेजने वालों को वापस कर दिए गए।" गजब हुआ ! मैं मारे गुस्से के पतलून से बाहर हो गया और पोस्ट-मास्टर की इस बेवकूफी की शिकायत अपने सभी दोस्तों से कर दी। यहीं तक नहीं, बल्कि अपने मित्र मिस्टर लॉजीशियन की सलाह से झट एक मीटिङ्ग करके पोस्ट-मास्टर को बेवकूफ साबित भी कर दिया और सब लोगों को बता दिया कि उसे खत और मनीऑर्डर का भेद तक नहीं मालूम है, क्योंकि मैंने खत वापस करने को लिखा था, और उसने मनीआडर भी लौटाल दिया। सब लोग एक जबान से बोल उठे कि—"सख्त बेवकूफ है।" और "हिप-हिप हुर्रे !" की ताली पीट दी। बस मेरा प्रस्ताव पास हो गया और वह हजरत अपनी करनी का फल पा गए।

उसी रात को मैं रुपए लाने के लिए घर रवाना हुआ। जाड़ों के दिन थे। मगर मैने दुलाई-रजाई, कम्बल-कनटोप, गुलूबन्द वगैरह कुछ नहीं साथ लिया। बल्कि जेण्टिलमैनों की तरह सिर्फ अपने छोटे 'ओवर-कोट' ही से सर्दी का मुकाबला करने का इरादा कर लिया। हिन्दुस्तानियों को कानों में बड़ी सर्दी लगती है, क्योंकि वह लोग 'साइन्स' (विज्ञान) नहीं जानते और समझ के पिलपिले होते हैं। इसलिए जब तक कानों को अच्छी तरह से ढक नहीं लेते, तब तक इन्हें चैन ही नहीं पड़ता। मगर विलातियों की देखिए, हमेशा सर, गर्दन, कान खुला ही रखते हैं और थोड़ी छाती भी। वजह इसकी यह है कि वह लोग 'साइन्स' समझते हैं और जानते हैं कि जब खाना बनाया जाता है, तब पतीली के खाली पेंदे ही में आँच लगाई जाती है, मगर उसके ऊपर तक की सारी चीजें पक जाती हैं। उसी तरह जब बदन के नीचे का हिस्सा तीन चौथाई गर्म रखा जाएगा तो उसके ताव से ऊपर वाला भी खाहमख्वाही गर्म रहेगा। आखिर अबखरा

निकल कर जाएगा कहाँ ? फिर कान और खोपड़ी को बेकार ढकना बेवकूफी नहीं तो है क्या ?

मगर अफसोस ! न जाने हमारा बदन ही उस वक्त ऐसा कुछ Heat-proof हो गया था यानी जिस पर गर्मी किसी तरह असर न कर सके या ईश्वर ने हमारी खाल के नीचे बर्फ की तह जमा रक्खी थी कि उसके आगे 'साइन्स' के सारे नियम ही ठिठुर गए और मैं मारे सर्दी के एकदम अकड़ गया। क्योंकि मैं सेकेण्ड क्लास में था। ओर टाँग फैला कर सोने के लिए पूरा बर्थ खाली पड़ा था। फिर भी मुझे तमाम रात सिर्फ पाँच ही इञ्च जगह में सिकुड़ कर गठरी बने और सर को अपनी दोनों टाँगों के बीच में ठूँसे थर-थर काँपते हुए काटनी पड़ी। उस पर कम्बख्त खाँसी और जुकाम ने वह आफत ढाई कि नाक से पनारे चलने लगे। दाँत कटकटाता किसी तरह घर पहुँचा तो द्वार ही पर घर वालों ने ऐसी आवभगत की कि मुझे सर पर पाँव रख कर उल्टे कदम भागते ही बन पड़ा। वह तो बड़ी खैरियत हुई कि मेरे पास वापसी टिकट था, जो मैं गप से गाड़ी में बैठ गया और वैसे ही इञ्जन ने सीटी दे दी; वरना पिता जी के डण्डे के नीचे मेरी सारी जेण्टिलमैनी खतम हो जाती। जब तीसरे दिन माता जी ने नौकर के हाथ मेरे पास रुपये भेजे, तब उससे मकान पर की इस गर्मागर्म आवभगत का कारण समझ में आया। वह महज इतना ही था कि मैंने पिता जी के जीते जी अपनी मूँछें क्यों मुड़ा डालीं। लाहौल बिलाकूवत ! धत् तेरे की, इसका पहिले ख्याल ही न था। नहीं तो एक नकली मूँछ जरूर साथ ले जाता।

८

बड़े दिन की छुट्टियों में होस्टल के बहुत से लड़के अपने घर चले गए थे। मेरे कमरे के और साथी भी इस जाड़े में अपनी बगल गर्म करने की उमङ्ग में दो दिन पहिले ही भाग खड़े हुए। मैं क्या करने मकान जाता ? मेरा तो अभी गवना ही नहीं हुआ था। उस पर वहाँ

बगल गर्म होने के बदले पिताजी के डण्डों से खोपड़ा गर्म होने का ज्यादा धड़का था, इसलिए बिन-ब्याहे और पढ़ाकू लड़कों की तरह कलेजा मसोस कर मैं होस्टल ही में रह गया।

रात आधी से ज्यादा जा चुकी थी। मैं बड़े जोरों से खर्राटे भर रहा था। इतने में एकाएक केवाड़ की भड़भड़ाहट सुन कर मैं जग पड़ा।

"सैमुएल सैक्सन ! सैमुएल सैक्सन !"

गोकि मैं बहादुर आदमी हूँ, तो भी इतना मैं जरूर ही कहूंगा कि ज्यों-ज्यों आँधियाली नजदीक आती है, त्यों-त्यों मेरी बहादुरी भागती जाती है। और आधी रात को तो मैं बिलकुल खोखलू हो जाता हूं। खास कर जब कमरे में मैं ही अकेले होता हूँ।

"सैमुएल सैक्सन ! सैमुएल सैक्सन !"

दिल धड़कने लगा। बदन में जूड़ी आ गई। बोली बन्द हो गई। बड़ी-बड़ी मुश्किलों से मैंने लड़खड़ाती हुई आवाज में कहा—"श्याम·····सैमुएल सैक्सन नहीं हैं। वह दूसरे कमरे में रहते हैं"।

"दरवाजा जल्दी खोलो।"

थोड़ी देर तक मैं चुप रहा। फिर एकबारगी बड़े जोर से चिल्ला उठा—"बचाओ ! बचाओ डाकू ! खून ! खून ! सिटकिनी सरक के गिर पड़ी। दरवाजा खुल गया। वही लॉजीशियन एक हाथ में बत्ती लिए और दूसरे में एक अखबार, कमरे में घुस आया। यह अपने छैमाही इम्तहान की तैयारी की खातिर घर नहीं गया था।

"यार श्याम—नहीं, मिस्टर सैमुएल सैक्सन ! क्या कहूं दोस्त, तुम्हारी बदनसीबी। तुम्हारी पूरी तरह से तबाही आ गई।"

"कैसे भाई ?"—आँखों में आँसू भर के पूछा।

"तुम्हें नहीं मालूम। तुम्हारी औरत राँड़ हो गई ?"

"क्या मेरी औरत राँड़ हो गई ! इतनी जल्दी ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।"

"लेकिन इस अखबार में लिखा है।"

"या ईश्वर ! कहीं सच न हो। लाओ जरा मुझे तो देखने दो।" रोते हुए उसके हाथ से अखबार ले लिया। "मगर मैं भी कैसा बेवकूफ हूँ मैं तो जिन्दा हूँ, मेरी बीबी कैसे राँड़ हो सकती है।"

"सैक्सन, यह तुम्हारे ही कसूर से। महीने भर से बराबर तुम अपनी औरत और अपने ससुराल वालों के खत लौटालते चले आए और उन पर हमेशा तुम यह लिख दिया करते थे कि इस नाम का कोई आदमी नहीं है। तब हार मान कर उन लागों ने सुपरिण्टेण्ड़ेण्ट से तुम्हारे बारे में पूछ-ताछ की, उन्होंने भी कोरा ही जवाब दिया कि अब श्यामलाल नहीं रहे। इस पर उन्हें पूरे तौर से यकीन हो गया कि तुम मर गए। मगर तुम्हारे ससुर आजाद ख्याल के हिन्दू हैं; इसलिए अपनी लड़की का पुनर्विवाह करने के लिए अखबार में छपवाया है। यह देखो—

"जरूरत है—वर की, एक कायस्थ जाति की विधवा के लिए। लड़की की उम्र सोलह वर्ष। पढ़ी-लिखी और गाना-बजाना और हर एक तरह का हुनर जानती है। रङ्ग गोरा और बहुत खूबसूरत है"!

C/o सम्पादक"

'यह वही है वही है। रङ्ग गोरा, बहुत खूबसूरत, उम्र सोलह बरस, जात कायस्थ, पढ़ी-लिखी, और गाना-बजाना भी जानती है। हाय ! हाय ! यह तो बिलकुल वही है।"

"शादी तय हो गई है, और इसी मंगल को होगी।"

"अरी दगाबाज औरत, तूने मेरे लिए मातम भी नहीं किया!"

"उसने किया; मगर आध घण्टे में सब झगड़ा खतम कर दिया। क्योंकि वह लड़की पढ़ी-लिखी है। वक्त की कदर खूब जानती है। खैर, अब आप इस शादी के रोकने की फिक्र कीजिए।"

इतना कह के वह चला गया और इधर मैंने ढाढ़े मार कर रोना शुरू किया। आधी ही रात को तार-घर दौड़ा, मगर सुबह तक उसको

ढूँढ़ता रहा और वह न मिला। मैंने अपने ससुर को तार दिया कि "मैं जिन्दा हूँ।" मशहूर-मशहूर पत्रों में मैंने यह विज्ञापन दे दिया है कि—

"मिस्टर डी० वी० वर्मा, सुलतानगञ्ज के सब जज की लड़की अभी तक विधवा नहीं हुई है। इसलिए उसके पुनर्विवाह का जो विज्ञापन है वह ठीक नहीं है। खबरदार, कोई आदमी शादी के लिए दरखास्त न भेजे, नहीं तो बहुत पछताना पड़ेगा।

सैमुएल सैक्सन"

इसके बाद मैंने एक लम्बा-चौड़ा लेख विधवा विवाह के विरुद्ध धर्मशास्त्रों की सम्मति समेत लिखा। उसको छपने के लिए एक बड़े मशहूर समाचार-पत्र में भेज दिया और उसकी नकल मय पतिव्रता-धर्म सिखाने वाली बहुत सी किताबों को ससुर जी के पास रवाना किया और उनको यह लिखा कि इन सबों को खुद पहले आप खूब ध्यान देकर पढ़ लीजिएगा, उसके बाद अपनी लड़की को पढ़ने के लिए दे दीजिएगा।

अब भी तबीयत को चैन न पड़ा। डर लगा ही रहा कि शायद कोई मनचला न माने और मेरे विज्ञापन को झूठ मान कर शादी करने पर कमर कस ही ले। इसलिए मैंने सोचा कि अगर मैं यह मशहूर कर दूं कि मेरी औरत बदसूरत है, तो फिर कोई भी उसके पास फटकने का दिल में ख्याल भी न करेगा। इसलिए मेरा दूसरा विज्ञापन पर कई एक पत्रों में यों निकला—

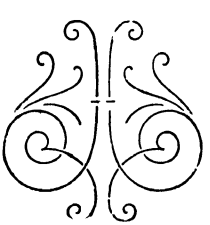
"सुलतानगञ्ज के सब-जज मिस्टर डी० वी० वर्मा की लड़की जिसकी शादी श्यामलाल सकसेना (सैमुएल सेक्सन) के साथा हुई थी, बहुत ही बदसूरत है! उसकी नाक कटी हुई है। एक आँख है ही नहीं। रङ्ग काला देवनीसी है। और उसके छोटी-छोटी मूँछे हैं। सब से खराब बात यह है कि उसे अपने मर्द को रोज मारने की आदत है।

—सैमुएल सैक्सन"

अब भला कौन माई का लाल ऐसा है कि जी मेरी औरत से ब्याह करने को कहेगा ! मुझे पूरा विश्वास है कि अगर मैं असल में मर भी जाऊँ, तो भी मेरी औरत अब हिफाजत से रहेगी।

दूसरे दिन एक दर्जन आदमी मेरी ससुराल से आए और एक दर्जन मेरे घर से। सब लोग ऐसे खफा थे कि मालूम होता था कि मुझे फाँसी ही पर चढ़ाएँगे। मगर मैं कहाँ दबने वाला ? मैं भी बहुत बिगड़ा हुआ था।

सुपेरिण्टेण्डेण्ट साहब ने यह सलाह दी कि इसको पागलखाने भेज दो। मैंने कहा, मुझे कोई उज्र नहीं। मगर शर्त यह है कि आप भी मेरे साथ चलें; क्योंकि वहाँ भी मैं आप ही के सुपरिण्टेण्डेण्टशिप में रहना चाहता हूँ। मेरे ससुर मुझे सीधे जहन्नुम भेजने वाले थे। और मेरे पिता जी यह कहते थे कि सब से पहले मैं अपने डण्डे से इसकी खोपड़ी तोड़ूँगा, फिर इसे जाने दूंगा। और मेरी सारी जेण्टिलमैनी पिलपिली हो गई, जब मैंने यह सुना कि मेरी श्रीमती जी ने कसम खाई है कि "जिन्दगी भर इसकी (यानी मेरी) सूरत न देखूँगी।" शाबश! ऐ पढ़ने वालो, अगर तुममें से किसी को मेरी सी नौबत पहुँच जाय, तो कभी भूल कर अपनी औरत की शादी रोकने की कोशिश मत करना। क्योंकि वह तो भई दोनों तरह से तुम्हारे हाथ से गई।





गवने के मजे

कौन ऐसा उल्लू मर्द होगा, जो अपनी जोरू की नाराजगी चुपचाप सह लेना गवारा कर सकता हो ? इसलिए उनका ऐंठना मुझे क्यों न बुरा लगे ? खासकर ऐसी हालत में, जब बिगड़ना मुझे चाहिये। मगर उलटे अकड़ गईं वह। आखिर वह औरत ही तो ठहरीं। और औरतों की औंधी खोपड़ी मशहूर ही है। बस यही समझ कर तो मैं अपना गुस्सा पीकर रह गया। करता क्या ? यही मुनासिब भी था। क्योंकि वह थी अपने मैके में और अभी तक कम्बख्त पण्डितों के लगन और साइत के झगड़ों के मारे मेरा गवना ही नहीं हुआ था। शादी में इन्हीं पाखण्डियों ने ऐसा अड़ङ्गा लगाया था कि मुझे उनसे दो एक बातें तक करने का मौका भी न मिला। तभी तो वह बेधड़क होकर मजे में वहीं बैठी-बैठी अपना मुँह फुला बठी। और उसकी उड़ती हुई खबर भी मेरे पास भिजवा दी ! खत से नहीं, जबानी। पाजीपने पर यह बदमाशी तो देखिए। जानती थीं न, कि इस वक्त मैं उनका कुछ कर नहीं सकता। मगर मैं ऐसा बेवकूफ नहीं हूँ। झट इस बात को मैंने अपनी डायरी में मोटे-मोटे हर्फों में लिख लिया है, ताकि मैं इसे कभी भूलने न पाऊँ। और जब कभी उनसे मुठभेड़ हो तो तुरन्त अपना गुस्सा भड़का कर अपनी कसर

पहिले ही निकाल लूँ। इसमें जरा भी मुरव्वत करना ठीक नहीं। वरना इसी तरह लोग बाद को जोरू के टट्टू हो जाते हैं। क्योंकि जहाँ कोई शुरू में दबा कि वह हमेशा के लिए दब्बू हुआ। न एतबार हो तो आजमा कर देख लीजिए।

यह तो मुझे पूरा इतमीनान है कि मौका मिलने पर मैं अपना गुस्सा उन पर खूब कस के दिखा सकता हूँ। क्योंकि उनके साथ शादी हो जाने से मेरा उन पर थोड़ा बहुत ही अख्तियार नहीं, बल्कि सोलहो आने मैं ही उनका कानूनी मालिक हूँ। और मिलकियत पाकर अपनी हकीयत में कुछ कोताही करना बेवकूफों का काम है। तब मैं बिना अपना ताव दिखाए कैसे रह सकता हूँ? मुझे चैन ही नहीं आ सकता, क्योंकि जब से उनकी नाराजगी की खबर मिली है, तभी से दिमाग ऐसा गर्म हो रहा है कि सूट-बूट, किताब-कॉपी, रोटी-दाल सब हराम है।

मगर क्या बताऊँ; जरा मैं अपने इस पाजी दिल से हैरान हूँ। क्योंकि मैं चलता हूँ उत्तर, तो यह कम्बख्त जाता है दक्खिन, और तारीफ यह है कि मौके पर मुझे भी अपने साथ घसीट ले जाता है। गोकि यह मेरे ही बदन का है। इसलिए इसे मुझको अपना माबिक समझना चाहिए। मगर यह बेवकूफ मुझे नहीं, उन्हें अपना सगा मालिक जानता है। न जाने किस फायदा और किस कानून से। बस यही तो मुश्किल है। वह भी आज से नहीं, बल्कि शादी के बहुत पहिले से, जब हमारी वह—समझे आप? श्रीमती जी—सिर्फ़ साढ़े चार फीट पौने ढाई इञ्च की थीं। निहायत हल्की, फुल्की, नन्हीं-नन्हीं भोली-भाली, हाय! हाय! कुछ न पूछिए। बस, अब ज्यादा याद न दिलाइए! नहीं गुस्सा गया भाड़ में, ढाढ़ें मार कर रोने लगूँगा। क्योंकि इतने ही में अभी से उफ! बाप रे बाप! पूरे डेढ़ सौ डिगरी की टीस मारने लगी।

जब वह अपने बाप यानी सब-जज साहब के साथ आकर मेरे

यहाँ ठहरी थीं और पिताजी ने भी सब-जज साहब को, कुछ उनकी पुरानी दोस्ती के ख्याल से उतना नहीं, जितना अपनी वकालत को और चमकाने की खातिर, अपने मकान में दो महीने तक बिना किराए के रहने दिया था, तब वह सचमुच ऐसी ही सुबुक-सुबुक, ठुमुक-ठुमुक क्या बिलकुल "Made in England" थीं और ऐसी लाजवाब कि देखते ही छाती फाड़ के रुलाई आने लगे। तभी तो उनकी विलायती काट-छाँट और 'फैन्स शेप' देख कर मुझसे न रहा गया। धम् से आशिक हो ही गया और बड़े जोरों के साथ। क्योंकि तब मुझे क्या मालूम था कि इन्हीं के साथ बाद को मेरी शादी होगी? बरना ऐसी गलती कभी मैं जान बूझ कर कर सकता था? बाप रे बाप! हर्गिज नहीं।

मुझे आशिक ही होना था तो किसी और पर होता। इन पर आशिक होकर अपने ही पैर में भला मैं कैसे कुल्हाड़ी चलाता? क्यों कि आप भी जानते ही होंगे कि प्रेमिका होती है मिठाई ओर पत्नी होती है दाल-भात। मिठाई हमेशा मिठाई ही रहेगी, दाल-भात नहीं बन सकती। इसी तरह प्रेमी होना और चीज है और पति होना और चीज। एक होता है गुलाम तो दूसरा होता है मालिक। तब यह दोनों ओहदे एक में कैसे मिलाए जा सकते हैं? तभी तो मुझसे और मेरे दिल से नहीं पटती। क्योंकि उनके प्रेम में पड़ जाने से यह चाहता है कि मैं उनके चरणों पर लोटता और उनके नखरे उठाता रहूँ और मैं अपनी पतिगीरी की हैसियत से कहता हूँ कि मिजाज बनाने का मेरा काम है, ताकि वह मेरे पैरों पर गिरें।

मगर क्या करूँ, अपनी इस कम्बख्त तकदीर को कि इसने मुझे दाल-भात की जगह पर हमेशा पेट भरने के लिए मिठाई दे रक्खी है, जिसके खयाल से यहाँ दिमाग में बदहजमी हो रही है? क्यों न हो? लोग शादी करते हैं, इसलिए न कि उनकी स्त्रियाँ उनकी सेवा करें। जब बेचारे थके-माँदे और गर्माये हुए बाहर से आएँ, तो झट पङ्खा

लेकर उन्हें ठण्ढा करें। जूता उतार कर सामने खड़ाऊँ और लोटे में पानी रख दें। उनको उम्दा खाना पका कर खिलाएँ। रात को सर में तेल लगा कर इनके पैर दबाएँ। जब मियाँ जरा ऐंठ कर जाएँ तो घण्टों हाथ जोड़कर इन्हें मनावें। मगर हाय! अफसोस! मुझे यह सब कहाँ नसीब? क्योंकि अगर श्रीमती जी मेरी कुछ सेवा करना भी चाहें, तो यह कम्बख्त दिल उन्हें कहीं करने दे सकता है? जहाँ वह पङ्खा लेकर सामने आएँगी, तहाँ तो मैं ही पङ्खा उनके हाथ से छीनकर खुद उन्हीं को झलने लगूँगा। उन्हें चौके में जाते देख दौड़ कर मैं खुद ही चूल्हा फूंकूँगा। तबीयत ही नहीं मानेगी। यही तो रोना है। यह सारी गड़बड़ी बस मेरी जरा सी चूक से हो गई है। क्योंकि उन पर आशिक होते वक्त मुझे सपने में भी ख्याल न था कि मेरी शादी इन्हीं से होगी।

२

गलती जो होनी थी वह तो इस पाजी दिल की बदमाशी की वजह से हो गई। मगर उसीके साथ गनीमत यह हुई कि मैंने बड़ी अक्लमन्दी भी की। वह यह कि उस वक्त उनसे साल-दो साल तक साहब-सलामत थी, जान-पहचान थी, मेल-जोल था और मेरा प्रेम इस बीच में औंधे फोड़े की तरह बराबर भीतर ही भीतर पकता भी रहा, मगर क्या मजाल कि कभी भी मैंने उसे फूट कर जाहिर होने दिया हो। यही तो तारीफ है। यहाँ तक कि जब सब-जज साहब बदल कर दूसरी जगह जाने लगे तब भी मैंने अपनी 'उन' से नहीं कहा—न जबान से, न खत से और न इशारों से—कि श्रीमती जी, मैं आप पर चपरगट्ट हूँ। हालांकि उनकी शादी की उस वक्त तक कुछ भी चर्चा न थी। क्योंकि मुझे बराबर यही धड़का रहा कि अगर कोई भी प्रेम की बात उनसे कहूँगा, तहाँ वह धड़ से मुझे मार न बठें या अपने बाप या मेरे बाप से कह कर मुझे पिटवा न दें। और क्या? औरतों के मिजाज का कौन ठीक? घड़ी में बिल्ली

और घड़ी में बंदरियाँ। अपनी गरज पर मेंऊँ-मेंऊँ, मगर दूसरे की गरज पर खोयँ-खोयँ। यह धाँधली इन लोगों की बाबा आदम के वक्त से चली आती है। मगर अफसोस! अब तक किसी भी रिफॉरमर ने इनको सुधारने की फिक्र नहीं की। यह लोग बस फुनगी ही सींचना जानते हैं, जड़ नहीं। तभी तो औलाद के अड़ियल और गड़बड़ होने से देश और चौपट होता जाता है।

दिल तो मेरा उनसे अपना प्रेम उगल देने के लिए मुझे बहुत हुर-पेट रहा था। मगर मैं ऐसा उल्लू न था कि इस बेवकूफ के चकमे में आकर अपनी खोपड़ी तुड़वाता। यह मैं उसी वक्त समझ गया था कि इसमें मेरी कुछ न कुछ जरूर अक्लमन्दी होगी, तभी मेरा प्रेम गुप-चुप रह गया। वह अक्लमन्दी आखिर अब जाकर खुली। क्योंकि अगर मैं उनसे कहीं कहे होता कि आपका प्रेमी हूँ, तो इस वक्त उनका मिजाज उछल कर सातवें आसमान पर हो रहता, जिसके नीचे मेरी पतिगीरी की सारी हकीकत भुस में मिल जाती। और वह जरा-सा फूलने के बदले इतना फूलती कि एकदम गुब्बारा बन कर उड़ जातीं। तब वह यह कह कर थोड़े रह सकती थीं कि "मैं इसका (यानी मेरा) जिन्दगी भर मुँह न देखूँगी।" बल्कि कहती कि "इसका कलेजा काट कर लाओ और उस पर जब नहाऊँगी तब मुझे चैन आएगा।" और मुझे उन्हें चैन देने की फिक्र करनी ही पड़ती। राजा दशरथ को देख लीजिए। कैकेयी ने उनके साथ इसी बिरते पर तो इतना जानमारू नखरा-तिल्ला फैलाया था, क्योंकि वह उनकी नाम की स्त्री, मगर असलियत में प्रेमिका थी। इसीलिए भाई, कानों पर हाथ धर के खरी-खरी कहता हूँ, चाहे मानो या न मानो, कि अपनी स्त्री से, चाहे उससे शादी हो चुकी हो या होने वाली हो, भूल कर भी प्रेम न करना। वरना पतिगीरी गई चूल्हे में, जन्म भर उसके तलवों पर नाक रगड़ते-रगड़ते नाक ही साफ हो जाएगी। यही गति मेरी भी होती, मगर खैरियत इतनी ही है कि उन्हें मेरी

अक्लमन्दी की वजह से खबर ही नहीं कि मैं उनका नया, पुराना या किसी तरह का भी प्रेमी हूँ। इसीसे मुझे पक्की उम्मीद है कि मैं उन पर अपनी पतिगीरी का पूरा हक जमा ले जाऊंगा। और पहिली ही मुलाकात में मय सूद के अपना गुस्सा दिखा कर उनसे अपना दाँव ले लूँगा, तब आगे कोई बातचीत होगी, बशर्ते कि वक्त पर मेरी डायरी मिल जाए, जिससे मैं अपने गुस्से का हिसाब-किताब ठीक-ठीक मालूम कर सकूँ।

अपने दिल को तो मैंने खूब ठोक-पीट कर समझा दिया है कि बच्चा मेरे और श्रीमती जी के मामले में तुम जरा भी चीं-चपड़ मत करना। वरना बात बनेगी नहीं। भलमनसाहत इसी में है कि न तुम्हारे काम में मैं दखल दूं और न तुम मेरे काम में अपनी टाँग अड़ाओ। तुम्हें उनसे मुहब्बत करना है, करो—खूब जी भर के करो। मैं इस समझौते की वजह से कुछ न बोलूँगा। इसी तरह तुम भी मेरी हकीयत के झगड़े में न पड़ो। और मुझे उन पर अपनी पतिगीरी की शान और हुकूमत बेधड़क होकर बर्तने दो। इतना डाँट देने से दिल साहब का तो मिजाज ठण्डा पड़ गया और अब मुझे विश्वास है कि श्रीमती जी पर मुझे अपने मालिकपन का रोब जमाते वक्त इनकी नानी मरे जो कुछ चूँ करें। लीजिए इस शैतान को तो मैंने यों जेर कर लिया। मगर अपने पुरोहित जी को किस तरह राह पर लाऊँ, कुछ समझ में नहीं आता। न जाने हमने इनके कितने बाप मारे हैं कि इनके पत्रों में मेरे गवने की साइत ही नहीं बनती, जिसकी वजह से मेरे मनसूबों का सारा ताव ठण्ढा पड़ा जा रहा है। क्योंकि जब श्रीमती जी से मिलने की नौबत आवे तब तो मैं ऐंठ दिखाऊँ। वरना जङ्गल में मोर नाचा किसने देखा ?

३

वाह ! वाह ! जरा पत्रा बनाने वालों की अक्ल तो देखिए। जब जब आसमान पर बिजली तड़पती है, और काली घटा गड़गड़ाती है,

तब मारे डर के इतना हवास गुम हो जाता है और यही जी चाहता है कि किसी की गोद में चिमट कर मुँह छिपा लें। मगर बादल रोते-रोते मर मिटे, और इन लगन के ठेकेदारों को मेरे गवने की फिक्र न हुई। अब यही लोग बतावें कि ऐसी गड़गड़ाहट की घबराहट में किससे चिमटा जाय? चारपाई की पट्टी में इतनी सख्ती है कि नाक ही थकुच जाती है।

जब हवा कोड़े की तरह शपाशप बदन को काटने दौड़ती है और कड़ाके की सर्दी पड़ती है, आदमी का साढ़े पाँच फीट का ढाँचा सिकुड़ कर सिर्फ साढ़े डेढ़ फीट का रह जाता है, उस वक्त बिस्तरे पर इतनी खाली जगह महज इसीलिए बच कर चिल्लाती है कि अब यहाँ अकेले काम नहीं चल सकता, इसलिए जल्दी एक-एक के दो-दो हो जाओ। उस पर आदमी क्या गदहा भी जानता है कि 'जाड़ा जाए रूई से या फिर दूई से।' रूई का भाव इस देश में सब चीजों की तरह दिनों-दिन इतना महँगा होता जाता है कि कुछ दिनों में इसका फाहा भी मिलना मुश्किल हो जाएगा। ऐसी हालत में सहारा खाहमखाह जाकर दूई पर अटकता है। फिर भी इन हत्यारों को मेरे गवने की न सूझी। यह खबर नहीं कि यहाँ मारे सर्दी के दाँत किटकिटाते-किटकिटाते कहीं दाँत न टूट जायँ। बदन अकड़ते-अकड़ते गठिया न हो जाय। कलेजा दलदलाते-दलदलाते निमोनिया न पकड़ ले। मगर इन्हें किसी के मरने और जीने से क्या मतलब?

इन अक्ल के दुश्मनों को शादी ब्याह, गवना-धवना की साइत बताने को सूझी भी तो कब? जब लाहौल-बिलाकूवत! कुत्ता भी कमबख्त डेढ़ हाथ की जबान लटकाए ओर दुम दबाए अपनी जान चुराने के लिए भागा-भागा फिरता है। जब बदन पर एक कुर्ता भी रखना तो दूर रहा, मारे पसीने के खुद अपना ही लोथ भारू हो जाता है। ऐसी आफत के दिनों में भला किसी के पास उठना-बैठना ही नहीं, बल्कि उसके साथ रात-रात भर एक काल-कोठरी में बन्द

रहना भाई ! कच्ची फाँसी की सांसत नहीं तो और क्या है ? मगर इन लगन बनाने वालों की औंधी समझ में जोड़ा मिलाने के लिए यही जानमारू मौसिम पसन्द आया। ताकि ससुराल के दरवाजे तक पहुँचते-पहुँचते मारे धूप के खोपड़ी चिटख जाए, लूह लग जाय या दावत खाने के पहिले ही हैजा हो जाय। खैर ! यही बड़ी बात हुई किसी तरह गौने की नौबत तो आई। चलो, भागे भूत की लंगोटी भली।

सोचे हुए था कि ससुर जी के घर पहुँचते ही श्रीमती जी से "गुड मार्निङ्ग" होगा। मगर जैसे ही उनके आँगन में कदम रक्खा, वैसे ही मेरे होश गुम हो गए। क्योंकि जिधर आँखें फाड़ कर देखता था, उधर ही दो पाँव की दर्जन भर हथिनियाँ दिखाई पड़ती थीं। झूठ नहीं बिलकुल सच। वहाँ किसी भी औरत का घूंघट किसी हथिनी की सूँड से न छोटा था। शादी में इन लोगों की इतनी भरमार न थी। मगर इस दफे ससुर जी ने इतनी हथिनीनुमा औरतें कहाँ से और क्यों पकड़ मँगवाईं, मुझे आजतक समझ ही में नहीं आया। इन्हीं झुण्डों में कहीं न कहीं श्रीमती जी भी रही होंगी जरूर। मगर शायद उन पर भी यही झूल पड़ा था। इसीसे वह मुझे दिखाई नहीं पड़ी। जी तो बहुत चाहा कि घूँघट उलट-पलट कर उन्हें ढूंढ़ निकालूँ। मगर कहाँ तक उलटता, मुझे तो सभी सूँड की आड़ में वही जान पड़ती थी।

खैर ! राम-राम, टें-टें करके वह भी वक्त आया, जब हम और वह एक में नत्थी करके भीतर से बाहर ढकेले जाने लगे उस वक्त औरतों ने खासकर श्रीमती जी ने चिल्ला-चिल्ला कर रोने का वह कोहराम मचाया कि यह मेरे कानों की बेहयाई थी कि उनके पर्दे फटते-फटते बाल-बाल बच गए। मैं फौरन समझ गया कि इन लोगों ने जरूर कोई आपस में बाजी लगाई है कि कौन सबसे ऊँचा सुर निकाल सकता है, वरना इतना गला फाड़ने की क्या जरूरत थी ?

मैंने बहुत-कुछ समझा कर इन लोगों से कहा कि—"अब बस करो, मामला फैसला हो गया। श्रीमती जी बाजी मार ले गईं। रोने में 'फर्स्ट प्राइज' उनका हो चुका। अब तुम लोग नाहक कोशिश करती हो।" मगर नक्कारखाने में तूती की आवाज किसे सुनाई पड़ती? उल्टे समझाते-समझाते मैं ही रो पड़ा। रुलाई और हँसी खरबूजे की तरह रङ्ग पकड़ती है। फिर तो मेरी आँखों से आँसू निकलते ही मुझ पर भी बाजी मार ले जाने का जोश सवार हो गया, उस पर ठहरा मेरा मर्दाना गला। बस यह कारखाने के भोंपू की तरह चिङ्घार कर सारे चिल-पों को छाप बैठा। मगर अफसोस! किसी कम्बख्त ने इस पर मुझे न तो कुछ इनाम दिया और न मुँह से इतना ही कहा कि—"शाबाश! तुम अव्वल हुए।" हर जगह पक्षपात और क्या कहूँ?

४

पालकी पर बैठते ही श्रीमती जी का घूँघट देख कर मैं भड़का। जिनको मैं पहले ही से जानता था, जो मुझसे बराबर तपाक से मिलती थीं, हँसती और बोलती थीं, वह अब भला अकेले में मुझसे किस तरह पर्दा कर सकती थीं? ससुराल के आँगन की बात और थी। जहाँ सभों के सूँड़ लटक रही थी वहाँ यही बेचारी आदमी की सूरत में फुटटैल कैसे रह सकती थीं, मगर यहाँ हमारे साथ वह भी पालकी के अन्दर इस फैशन की जरूरत मेरी कुछ समझ में नहीं आई। मैं कोई बायबी आदमी तो था नहीं। पराया मर्द भी न था। खास उन्हीं का सगा, निजी, अपना ब्याहा और कानूनी मर्द था। उस पर उनका खूब जाना पहचाना हुआ भी था। जब उनसे सिर्फ जान-पहचान का नाता था, तब तो मेरे सामने उनके सर के बाल तक अक्सर खुले रहते थे और जब वह नाता उचक कर एकदम मियाँ-बीबी के गुटरगूँ पर पहुँच गया, तो ऐसी काया-पलट? गजब खुदा का! यह अन्धेर नहीं तो और क्या था? तभी तो मुझे शक

हुआ कि यह श्रीमती जी नहीं हो सकतीं, बल्कि उनकी जगह पर कोई दूसरी औरत मेरे साथ नत्थी करके पारसल कर दी गई है।

मगर इस बात का इतमीनान किस तरह होता ? किसी बेगानों औरत से बोलना भी तो भाई 'कारेदारद' है। वह होतीं तो अब तक आप ही टुइयाँ-सी चहकने लगतीं और तब मैं अपनी डायरी चुपके से निकाल उसे पढ़-पढ़ कर अपना गुस्सा भड़काता जाता और उनके लाख पूछने पर भी मैं मारे अकड़ के चुप रह जाता और यों वहीं से अपनी ऐंठ दिखा कर उन पर रोब जमाना शुरू कर देता। इसीलिए डायरी साथ लाया था। मगर अब तो खेल ही पलट गया। झख मार कर मुझे बोलने की जरूरत पड़ी। उस पर मुसीबत यह कि अनजान औरत से। अगर कभी किसी से छेड़छाड़ की नौबत आई होती तो इस वक्त जबान भी खुल सकती थी। मगर इस मुल्क में अजब उल्लू रस्म है कि नर का गोल अलग और मांदा का अलग। खिचड़ी सोसाइटी होती ही नहीं। इसी से यहाँ मर्दों और औरतों को कभी आपस में मिलने-जुलने और बातचीत करने के तौर-तरीके मालूम ही नहीं हो सकते। इसलिए अगर उस वक्त कोई बात मेरे मुँह से नहीं निकली तो उसका जिम्मेदार मैं नहीं हो सकता!

जब बोलने में मुझे इतनी हिचकिचाहट हो रही थी तो घूँघट उलट कर उनका मुँह देखना तो मेरे लिए और पहाड़ ढाहना था। फिर भी मुझे उसी वक्त अपना इतमीनान कर लेना भी निहायत जरूरी था। क्योंकि अब भी सबेरा था। ससुराली घर से बरामद हुए अभी सिर्फ सौ ही कदम हुए थे। आखिर मेरी अक्ल आड़े वक्त काम आ ही गई। और बिना कुछ बोले-चाले और बिना उनका घूँघट उठाए मुझे उनकी सूरत देख लेने की तरकीब सूझ गई। फिर क्या था ? झट उचक कर मैं घूम गया और श्रीमती जी की तरफ पीठ करके बैठा। पालकी बड़े जोर से डगमगा उठी और बाहर कहार हाय-तोबा मचाने लगे। मगर मुझे तो उनकी शकल देखने की पड़ी

थी। इन बातों के ख्याल करने की कब फुरसत थी? इसलिए इस तरह बैठते ही मैं दन से चित लेट गया—इस हिसाब से, ताकि मेरा मुँह ठीक श्रीमती जी के घूँघट के नीचे पड़ जाए और यों मैं उनका चेहरा देख लूँ। मगर कम्बख्त कहारों की बदमाशी से मेरा निशाना गड़बड़ा गया और मैं उन्हें देख न सका। क्योंकि उन बदमाशों ने ऐन वक्त पर पालकी को अपने कन्धों पर से पटक दिया और सब मिल कर चिल्ला उठे—"हाय! बाप रे बाप! मर गयन बाबू जी! अब्बे से मूड़े पर अस अन्धेर मचावे लाग्यो? राम! राम! हमहू पञ्चम केर प्रान लै लियो अउर पलकियो चिथड़ा कै दियो! हाय! दादा!"

अब आप ही इन्साफ कीजिए कि अन्धेर मैंने किया या उन पाजियों ने, जिनकी बदौलत पालकी की पालकी टूटी और श्रीमती जी के कड़े-छड़े पर गिरकर मेरी खोपड़ी फूटी अलग। जमीन के धमाके से मेरी पीठ के जो अञ्जर-पञ्जर ढीले हो गए, उनका तो कुछ कहना ही नहीं, उस पर कम्बख्ती यह हुई कि मैं उसी वक्त पालकी में से निकाल बाहर कर दिया गया। इसका मुझे अलबत्ता बहुत अफसोस हुआ। क्योंकि यह चोट सभोंसे बढ़ कर थी।

५

घर पर जब मुझे बच्चों से पता लगाने पर मालूम हुआ कि श्रीमती जी असलियत में वही हैं जो थीं, यानी जिनके साथ मेरी सचमुच शादी हुई थी, तब तो मेरे सर से पाँव तक आग लग गई। क्योंकि तब पालकी के भीतर घूँघट काढ़ कर मुझे धोखे में डाल रखने की उनको क्या जरूरत थी? मुफ्त ही तो मेरा इतने दिनों का भड़का हुआ ताव खराब गया। उसपर कम्बख्त कहारों ने सभी लोगों के सामने मुझे जैसा जलील किया, वह मेरी पीठ और खोपड़ी ही जानती है। रेल में भी उन्होंने मेरी कुछ नहीं मदद की। दूसरों को चाहे उन्होंने बार-बार मुँह खोल कर घूरा हो, मगर मेरी तरफ एक

दफा भी घूँघट उठा कर नहीं देखा। हालाँकि मैं बार-बार उचक-उचक कर ताक-झाँक करता रहा। यहाँ तक कि मेरी नई टोपी रेल की खिड़की के बाहर गिर गई और इसके लिए मैं खूब कसके डाँटा भी गया। तभी तो मैंने उसी वक्त कसम खा ली कि अब कभी बुर्जों की मौजूदगी में श्रीमती जी के साथ सफर न करूँगा। चाहे कुछ हो। मगर नतीजा क्या हुआ? वही "कुत्ते की दुम टेढ़ी की टेढ़ी।" और "बदल गए नैना चीन्हत नाहीं।"

एक तो करेला वैसे ही तीता उस पर नीम चढ़ा। उसी तरह एक गुस्से से मैं उबल ही रहा था, उस पर यह ताजा गुस्सा और चढ़ बैठा। वह तो कहिए खैरियत हो गई कि मैंने इसे भी अपनी डायरी में लिख मारा। लाल राशनाई से और क्या? तब जाकर दिमाग में जरा ठण्ढक पहुँची, वरना न जाने मेरा क्या हाल होता?

वह नहीं बदलीं, बल्कि उन्हीं के साथ मेरा सारा घर भी बदल गया। क्योंकि जिस घर में मैं हवा की तरह आजादी की तरह से घूमता-फिरता था, अब उसा में जाने के लिए तरसने लगा। जहाँ इस नियत से कदम उठाया वहाँ दरवाजे पर फौरन रोक दिया गया। क्योंकि भीतर पर्देवालियों का पर्दा बिगड़ जाता। न जाने उस दिन श्रीमती जी के सर सींग या मुँह पर मूँछें निकल आई थीं या उनकी सूरत में कोई अजीब बात हो गई थी कि सारे शहर की पर्देवालियाँ उनका घूँघट उलट-उलट कर उन्हें गौर से देखने के लिए फट पड़ी थीं।

मगर श्रीमती जी थीं बड़ी चलती-पुर्जी। उन्होंने यह तमाशा गर्म होते देख मालूम होता है, अपनी शकल पर टिकट लगा दिया था। तभी तो उनके आगे खनाखन रुपए बरस रहे थे। जिनकी झनकार बाहर मेरे कानों में पहुँच रही थी। वाह! यह तो उन्होंने आमदनी की अच्छी सूरत निकाली। क्यों न हो? बड़े भाग्य से किसी को कमाऊ जोरू मिलती है। उनकी इस योग्यता पर मुझे बहुत खुश होना चाहिये था। और मैं अपना सारा गुस्सा भूल कर खुश

होने के लिए तैयार भी था, बशर्ते कि मेरे पास एक Free Pass यानी मुफ्त टिकट भेज देतीं। मगर हाय ! अफसोस ! उस बेमुरव्वत ने मेरे लिए इतनी भी रियायत न की।

जब सुना कि जितनी औरतें आई हैं, अभी वापस नहीं जायँगी, बल्कि रात भर यहीं रह कर रतजग्गा करेंगी तब तो जल भुन के कलेजा और कबाब हो गया। क्योंकि दिन तो किसी न किसी तरह रो-पीट कर कटा, मगर इस कड़ी गर्मी में रात किस तरह कटेगी, समझ में नहीं आया। खास कर जब पङ्खा झलने वाली घर में आ गई हो, फिर भी मुझे पङ्खा न झला जाय, तब जारू रखने से फायदा ?

अन्दर का वह हाल और बाहर का यह हाल कि जिसे देखिए वही श्रीमती जी का देवर बना मुझसे मिठाई माँग-माँग कर मेरी नाक में दम करने लगा। यह मुझे मालूम ही न था कि नई दुल्हिन सभी मुहल्ले वालों की भाभी होती है। भाड़ में गई ऐसी रिश्तेदारी। उन कम्बख्तों को उनसे रिश्ता ही जोड़ना तो यह खुली बदमाशी वाला ? और ऊपर से मिठाई माँगने चले–वह भी मुझी से ? मिठाई के बदले मैं एक-एक को दस-दस जूते खिलाता। मगर राममोहन और श्याममनोहर के मारे मेरा कुछ बस न चला।

यह दोनों मेरे स्कूल के पुराने साथी थे। मगर बहुत दिनों से पढ़ना छोड़ कर अपने घर का कारबार देखते थे। जारू वाले थे, इसलिए मैंने इन्हें खास तौर से आज बुलाया था कि इनसे पतिंगरी का कर्तव्य और जोरुओं के बारे में कुछ जानकारी हासिल कर लूँ। क्योंकि श्रीमती जी लाख मेरी जानी-पहिचानी हुई थीं, मगर गवना होते ही उन्होंने ऐसा केचुल बदल दिया था कि मेरे लिए नई की नई हो गई। अगर ऐसी न भी हो जातीं तो भी तो तब में और अब में उनमें ज़मीन-आसमान का फर्क हो ही चुका था। क्योंकि तब थीं वह सब जज साहब की खाली लड़की और अब हैं वह मेरी खास ब्याही

हुई बीबी। उस वक्त उनसे बातें होती थीं इस तरह—"नमस्ते !"···· "कहिए मिज़ाज अच्छे हैं।".....

"क्या खाना-पीना हो गया ?"····· (इसके बाद घण्टा भर तक बिलकुल सन्नाटा)·····"अच्छा अब जाता हूँ" "कभी-कभी आ जाया कीजिए"...(फुलिस्टाप और क्विक-मार्च)। अब अगर वही बातें फिर हों तब तो पतिगीरी और पत्नीगीरी दोनों ही को अपने कर्मों पर रो-कर 'क्विक-मार्च' करना पड़े। अब तो मियाँ-बीबी की तरह आपस में गुटरगूँ करने की जरूरत थी, जिसकी भाषा बिना पहिले ही से सीखे और पढ़े मेरे लिए अपनी श्रीमती जी के सामने जाना अपने को अनाड़ी साबित करके अपनी भद्द कराना था। क्योंकि भई, असलियत तो यह है, किसी भी मामले में आदमी की धाक तभी जम सकती है, जब उसमें उसे पहिले ही से काफी पैठ और निपुणता हो। सरकार भी किसी को 'पोस्ट' तब देती है, जब उसे छः महीने तक उम्मीदवार रख कर काम में होशियार कर लेती है। फौज में भी रङ्गरूटों को मुद्दतों कवायद सिखाया जाता है, तब वे लड़ाई के मैदान में भेजे जाते हैं। यहाँ तक कि लड़के घर पर सबक याद कर लेते हैं, तब स्कूल में उसे सुनाते हैं। मगर अफसोस ! पतिगीरी की शिक्षा देने के लिए मुल्क में किसी को भी फिक्र नहीं। इसीलिए तो यहाँ घर-घर आफत मची रहती है। क्यों न मचे, जब बीबी पहिले ही दिन समझ जाती हैं कि मियाँ निरे उल्लू हैं तो वह भला बाद को कब उनसे दब सकती हैं ? सुधारकों को चाहिए कि इस ऐब को मिटाने के लिए फौरन ऐसे कॉलेजों की स्थापना करें, जिसमें तजुरबेकार जोरुओं को प्रोफेसर रख कर रङ्गरूट पतियों को पतिगीरी की शिक्षा दी जाए। और कौन्सिल से यह कानून पास करावें कि बिना इसका इम्तहान पास किए किसी को भी अपनी स्त्री के पास जाने का अधिकार नहीं मिल सकता। मगर भाई, हमारे सुधारक देश के सच्चे हितैषी हों तब तो इन बातों की तरफ ध्यान दें।

वरना इन बातों की जानकारी के लिए आज मुझे जोरू वाले दोस्तों की खुशामद क्यों करनी पड़ती ? उस पर श्रीमती जी के नकली देवरों से मुझे छुट्टी मिलती तब तो इन लोगों से इस विषय पर कुछ पूछ-ताछ करता। आखिर कब तक इन मिठाई माँगने वालों से छुटकारा पाने का इन्तजार करता ? इसलिए मैंने डण्डा लेके इन मुफ्तखोरों को भगाना चाहा। उस वक्त भी राममोहन और श्याममनोहर ने बाधा डाली। अफसोस !

राममोहन—"भाई, तुम अजीब आदमी हो ! हँसी-मजाक में तुम तो काटने को दौड़ते हो। ऐसा ही मिजाज रक्खोगे तो तुम्हारी बीबी भी कहेगी कि किस बेहूदे के पाले पड़ी ?"

श्याममनोहर—'हाँ, और क्या, अब लौण्डेपन की बातें छोड़ो। घर-गृहस्थी वाले हुए, अदब और तमीज सीखो ?"

"तो मैं बदतमीज हूँ जी ?"--पिनपिना कर मैंने पूछा।

श्याममनोहर—"यह मैं नहीं कहता, फिर भी तमीज बड़ी चीज है। इसके बिना आदमी लाख खूबसूरत और काबिल होने पर भी बन्दर समझा जाता है। तभी तो पहिले जमाने में अमीरों के लड़के तमीज सीखने रण्डियों के घर भेजे जाते थे।"

६

मैं दस बजे रात को ताड़वाली वेश्या के दरवाजे पर बाँस की तरह खड़ा था। क्योंकि ईश्वर सलामत रक्खे श्याममनोहर को, जिसकी जबान से रण्डियों का जिक्र सुनते ही मुझे एकाएक ख्याल पैदा हुआ कि स्त्री से छेड़-छाड़ करने, उसकी सोसाइटी हँसने-बोलने; उठने-बैठने के तौर व तरीके को जानने के लिए बेचारे समाज ने इनलोगों के द्वार खोल ही रक्खें हैं। मैं नाहक ही इसके लिए इधर-उधर वक्त खराब कर रहा हूँ। गो यह लोग जरा नीची नजरों से देखी जाती हैं। वह तो बदमाशों की सङ्गत की वजह से। वैसे तो सारङ्गी भी बुरी समझी जाती है, मगर सारङ्गी से बढ़ कर दुनियाँ में भला

कोई बाजा है ? वैसे ही यह लोग कितनी ही खराब क्यों न मानी जाएँ, फिर भी भावी और रङ्गरूट पतियों के लिए बड़े काम की चीज हैं। बशर्ते कि वे इनको वेश्या समझ कर नहीं, बल्कि मेरी तरह पतिगीरी की शिक्षा पाने के लिए इन्हें गुरुवानी जान कर इनके यहाँ जाएँ। इसलिए मुझे विश्वास है कि मेरा इस नियत से यहाँ पर आना कभी भी बुरा नहीं समझा जा सकता। क्योंकि इसके साथ शिक्षा की दुम जो लगी हुई है। अगर कोई बुरा कहे तो आकर मुझसे बहस कर ले। मैं कुछ अपने शौक के मारे तो यहाँ आया नहीं, बल्कि खास श्रीमती जी की खातिर तमीज सीखने के लिए। क्योंकि अगर उनके सामने बिना हँसने-बोलने का ढङ्ग जाने हुए जाता तो जरूर कोई न कोई गलती, बेवकूफी या बदतमीजी हो जाती। तब उनकी नज़रों से सदा के लिए गिर कर जिन्दगी मेरी खराब जाती। बुरा कहने वालों का क्या बिगड़ता ?

यह ताड़वाली रण्डी बड़ी अच्छी थी, कम से कम देखने में। नाम इसका नसीबन, करीमन या जहूरन ऐसा ही कुछ था, मगर कहलाती थी ताड़वाली, क्योंकि उसके आँगन में एक बड़ा ही लम्बा ताड़ का पेड़ था। रहती थी मेरे मकान के पिछवाड़े चार-पाँच घर के बाद, मगर उसके यहाँ जाने का रास्ता मील भर का चक्कर लगा के चौक से घूमा हुआ था। इसलिए वह हमारे मकान से नजदीक भी थी और दूर भी। अक्सर जब कभी मैं अपने तिमञ्जिले पर चढ़ता और वह शाम को अपनी छत पर होती थी तो मुझे दूर ही से सलाम करती थी और मैं भी तब इसका जवाब देता था, जैसे कोई अपने नाक पर से मक्खी उड़ाता है। इसलिए इस दूर ही दूर की थोड़ी सी जान-पहचान होने के कारण मैंने इसी के यहाँ जाने का इरादा किया।

मगर यहाँ आकर बड़े सङ्कट में पड़ गया। इसके दरवाजे पर आते-आते न जाने क्यों मेरा दिल बड़े जोरों से घबड़ा उठा। ऐसा

जान पड़ा कि सब लोग मुझी को घूर रहे हैं और मैं बदहवासी में ऊँट की तरह गर्दन उठाए आगे बढ़ता ही चला गया। दम लेने के लिए जरा रुका तो जाना कि उसका मकान मैं मील भर पीछे छोड़ आया। वहाँ से पलटा तो फिर उसका मकान रास्ते में छूट गया और मैं पौन मील आगे जाकर रुका। आठ बजे से दस बजे तक यही कार्रवाई जारी रही। लाख दिल को मजबूत करके उसके दरवाजे पर आकर रुकना चाहूँ, मगर मुझसे रुका ही नहीं जाता था। ऐसा मालूम होता था कि पीछे से मुझे कोई खदेड़ रहा है। बस, मैं दुल्की-कदम और पोई-सरपट सब एक ही चाल में दिखाने लगता था।

आखिर जब गली में लोगों का आना-जाना बिलकुल बन्द हो गया, तब मैं चोर की तरह अंगूठों के बल धीरे-धीरे रेंगता और अपने चारों तरफ चौंक-चौंक कर देखता हुआ उसके दरवाजे के सामने ठिठक गया। उसका मकान एक मञ्जिला था और छत के चारों ओर छोटी छोटी मुँडेरें थीं। आदमी की बोल-चाल वहीं से सुनाई दे रही थी। आने वालों के लिए दरवाजा एकदम खुला था और उनकी अगवानी के लिए देहलीज में एक दिया टिमटिमा रहा था।

मैं जहाँ का तहाँ खड़ा ही रह गया। न जाने क्यों पैर एकाएक सौ-सौ मन के हो गए। भीतर जाने के लिए न उठे। तालू सूख गया। मुँह पर हवाइयां उड़ने लगीं। पुकारना चाहा, बोल न सका। खखारने के लिए मुँह खोला, आवाज न निकली। या ईश्वर! यह मुझे क्या हो गया? अब किस तरह भीतर जाऊँ और वहाँ जाकर क्या कहूँ, कुछ समझ में नहीं आया। श्रीमती जी से मिलने के लिए तो तमीज सीखने वेश्या से चला, मगर वेश्या से मिलने की तरकीब जानने अब कहाँ जाऊँ? क्योंकि यहाँ आकर जाना कि इसके लिए भी कोई उस्ताद चाहिए। बिना सबक पढ़े यहाँ भी अनाड़ियों की मिट्टी पलीद है। मैं इसी अड़चन में उलझा, बौखलाया हुआ ऊपर

की तरफ मुँह बाए ताक रहा था कि इतने में कोठे पर से कुछ छपाक् से पड़ा। O ! My God ! सर मुँड़ाते ही ओले पड़े ! धत् तेरे की ! सारा चेहरा बिगड़ गया। ईश्वर जाने पानी था या पान की पीक ! लाहौल बिलाकूवत ! अगर मैं पहले से ही जानता कि रण्डियों के यहाँ आनेवालों का ऐसा ही स्वागत होता है, तो पहले ही से आख थू ! आख थू ! करता न आता ? तब बाद को थू ! थू ! करने की क्यों जरूरत पड़ती ! खैर, जो होना था सो हो गया, अब आगे सही ! इस स्वागत पर बड़े जोरों के साथ आख थू !!!

७

"जहे किस्मत जो हुजूर ने आज खबर तो ली। बन्दी न जाने कितने दिनों से दीदार की मुश्ताक थी। आज अल्लाह ने सुन लिया।.....अरे छेदी मियाँ, जरा पान तो मँगवाना।" ताड़वाली ने सर नीचा किए डली काटते-काटते बड़े नाजो अन्दाज से मुस्करा कर कहा।

छत पर बैठने के लिए फर्शी का इन्तजाम था। उसी पर मैं गुम सुम बैठा हुआ आंखें फाड़ कर चारों तरफ देख रहा था। किस तरह यहाँ तक पहुँचा, मुझे खुद ही खबर नहीं। बस, इतना जानता हूँ कि किसी ने बाहर आकर मेरा हाथ पकड़ा था। उसके बाद मेरा दिमाग चकरा गया। प्राण ऊबने-डूबने लगे। साँस उल्टी चलने लगी और आँखें एकदम बन्द हो गई थीं। अब भी हालत करीब-करीब वही थी। सिर्फ आँखों में देखने की शक्ति लौट आई थी। मगर उसी के साथ बदन से ताबड़तोड़ पसीना छूटने लगा था। रूमाल मुँह पोंछने में पहिले ही खराब हो चुका था। इसलिए बार-बार कोट के आस्तीन से पेशानी का पसीना पोंछ रहा था।

बेगम फिर बोलीं—"अरी अम्माँ, ताक क्या रही हो ? जरा मेरा रेशमी रूमाल झटपट निकाल कर आपको दो।"

मैंने बौखला कर कहा—"नहीं-नहीं, सब ठीक है।"

बुढ़िया ने शायद रूमाल की बात सुनी ही नहीं। इसलिए इधर-उधर ताक कर बोली—"अरे, आज इतना धुआँ कहाँ हो रहा है?"

मेरी सारी अक्ल न जाने कहाँ चरने चली गई थी कि मेरी समझ ही में कुछ नहीं आता था कि यहाँ पर क्या कहूँ, क्या न कहूँ। कैसी बातचीत करूँ और कैसा जवाब दूँ। स्कूल और कॉलेज में बड़ी मोटी-मोटी किताबें पढ़ चुका था। मगर अफसोस! सारी पढ़ाई चौपट हो गई, जो मैंने सब पढ़ कर भी वेश्याओं से मिलने-जुलने का शास्त्र नहीं पढ़ा। वरना यहाँ पर मेरी भला यह हालत होती कि दो शब्द भी ठीक-ठीक कहने के लिए तरसता?

इतने में बुढ़िया ने पान चबा-चबा कर बड़बड़ाना शुरू कर दिया—"हाँ तो सरकार, हुक्म हो तो साजिन्दे भी बुलवा लिए जायँ। कुछ गाना-वाना हो। अल्लाह सलामत रखे हुजूर को, इस छोकड़ी ने क्या गला पाया है कि कुर्बान जाऊँ, पत्थर का कलेजा भी पानी-पानी हो जाता है। पारसाल ही तो यह एक शादी में दिल्ली गई थी। वहाँ के नवाब साहब अपने महल में लेटे हुए थे! इसकी अलाप जो उनके कानों में पड़ी, बस बिस्तरे पर मछली की तरह तड़प उठे। और वहाँ से नङ्गे सिर और नङ्गे पाँव भागते हुए आए। कसम खुदा की, बेअख्तियार आकर इसके कदमों पर गिर पड़े, और रो-रोकर कहने लगे कि मुझसे निकाह पढ़ा लो। मगर इसने नहीं मंजूर किया। चलते वक्त बेचारे ने दो हजार रुपए नकद और शाही खजाने का नौलखा हार भी इसे दिया। और क्या? मैनेजर साहब बार-बार पैगाम भेजते हैं। पाँच सौ रुपए माहवार देने को तैयार हैं। सूबेदार साहब तो रोज ही आकर नाक रगड़ते हैं। मगर यह किसी की बात सुनती ही नहीं। हुजूर को अल्लाह सलामत रखे कि न जाने हुजूर ने कौन सा जादू पढ़ लिया है कि बरसों से हुजूर ही के ख्याल में घुली जा रही है। देखिए कैसी दुबली हो गई है। कई दफे तो हुजूर को बुलाने

के लिए मुझसे कह भी चुकी। यह इसी के इश्क की कशिश है कि हुजूर ने आज कदम रखा फरमाया। अल्लाह जानता है....."

बेटी साहबा पहले मुस्कुराई, फिर शरमाई, उसके बाद तिनककर बोलीं—"क्यों अम्मां, न चुप रहोगी? क्या मैं उठ के चली ही जाऊँ?.....आग लगे ऐसे पानदान में, न पान, न इलायची, न जाफरान।" झन से पानदान खिसका कर मुँह फेर के बैठीं और झुँझलाहट की खासी तस्वीर बन गई।

बुढ़िया लपक कर उसकी बलाएँ लेती हुई फिर अपनी जबान का चरखा चलाने लगी—"ऐ! है सदके जाऊँ बेटी! कुर्बान जाऊ, खफा न हो। सब्र करो। हुजूर को अल्लाह सलामत रक्खे, पान-इलायची क्या चीज है, अशर्फियों के लुक्मे खाओगी। आय-हाय पान बिना कैसा मुँह सूख गया है। झाड़ू मारूँ उस निगोड़े सूबेदार का. मुआ आकर सारा पानदान ही साफ कर गया। ऐसे मुफ्तखोरों पर अल्लाह की मार। हरामी आ-आकर ढोली के ढोली पान चबा जाते हैं और तुम ताकती रह जाती हो। इसी से तो कहती हूँ बेटी, सबके साथ मुरव्वत न किया करो। भले-बुरे को पहचाना करो। जो बेचारा भलामानुस होता है, वह आते ही पान के लिए रुपया खन से फेंकता है।"

मैं एक ही रुपया घर से लेकर चला था। वह भी बुढ़िया ने पान-पत्ते के लिए मुझसे ऐंठ ही लिया। कैसे न देता? जिसने मेरे लिए नवाब साहब तक का ख्याल नहीं किया, मैनेजर साहब और सूबेदार साहब ऐसे भारी-भारी आदमियों की बातें नहीं सुनीं, उसका पान बिना कुम्हलाया हुआ चेहरा कैसे देख सकता था?

मगर गजब हो गया। रुपया निकल जाने से अब और हौलदिली समा गई। पहले तो बात न कर सकने की घबड़ाहट थी और अब तो उलझन इस फिक्र से और बढ़ गई कि पान की तरह फिर न किसी चीज की जरूरत पड़ जाए, तब दूंगा क्या? उस वक्त कैसी किरकिरी

होगी, खास कर उसके सामने, जो बेचारी मेरी खाली इज्जत ही नहीं करती, बल्कि मुझे इतना प्यार करती है कि दुबली भी हो गई है। यह जिल्लत मुझे किसी तरह से भी गवारा नहीं हो सकती थी! इस लिए पतिगीरी की शिक्षा का ख्याल तो गया चूल्हे में, यहाँ अपनी आबरू बचाने की पड़ गई। उस पर दिलकी घबड़ाहट और नोचे खा रही थी। यही जी चाहता था कि किसी तरह सर पाँव पर रख के यहाँ से जल्दी भागो।

बुढ़िया को अब धुआँ बहुत लगने लगा। वह अपना पङ्खा लेकर नीचे खिसक गई। उसके जाने से बेगम की बेवाकी कुछ खुली और वह जरा सरक कर मेरे पास आ गई। सरकने में उनके सर से ओढ़नी भी सरकी और उनकी नागिन सी चोटी पीठ पर लहरा उठी। उन्होंने अपनी टेढ़ी गर्दन करके मुझे कनखियों से देखा और फिर जरा मुस्कराकर शर्माती हुई धीरे से बोलीं—"अम्माँ अब न आएँगी।"

मैंने भी कुछ कहने के लिए मुँह खोला, मगर उसमें से सिर्फ इतनी आवाज निकली—"हाँ।"

"उफ! बड़ी गर्मी है।" यह कह कर वह अपना नन्हा सा पङ्खा लेकर झलने लगीं। उसके बाद एक हाथ से मेरा हाथ थाम कर अपनी तरफ जरा हल्के से खींचती हुई बोलीं—"जरा इतमीनान से नजदीक आकर बैठिए, हवा तो लगे। यह निगोड़ा धुआँ तो और नाक मे दम किए है। कौन मुई अपने घर ऐसी गीली लकड़ी जलाए है।"

मगर मुझे इतमीनान कहाँ था? मेरा तो दम घुट रहा था। ईश्वर जाने धुएँ की वजह से या अपनी घबड़ाहट के मारे या रुपये की सारी गर्मी एकाएक ठण्ढी पड़ जाने से, या वेश्याओं से हँसने-बोलने का ढङ्ग न जाने हुए हाने से कि मैं अपनी जगह पर उल्लू की तरह गुमसुम बैठा ही रहा। वहाँ से तिल भर न टसका। इतने में मालूम हुआ कि जिस तरह डगन में छोटी मछली हिलगती है, उसी तरह से कोई कमबख्त किसी छुछुंदर या मेढक को तागे में बाँध कर एक डण्डे

से लटकाए मेरी नाक के पास हिला रहा है। मैं बाप! बाप! करके चिल्ला उठा और चौंक कर पीछे उचका तो मेरी खोपड़ी ओगालदान पर तड़ाक से बोली और मेरी पीठ नीचे ही तर-बतर हो गई।

बाद को पता चला कि वह कोई काटू जानवर न था, बल्कि पत्ते में लपेटा हुआ पान था, जिसको छेदी मियाँ तम्बोली के यहाँ से मेरा हिन्दू धर्म बचाने के लिए इस तरह लटकाए हुए लाकर मुझे दे रहे थे। धत् तेरे की! मुझे क्या मालूम था कि रण्डियों के यहाँ हिन्दुओं को पान इस तरह दिया जाता है।

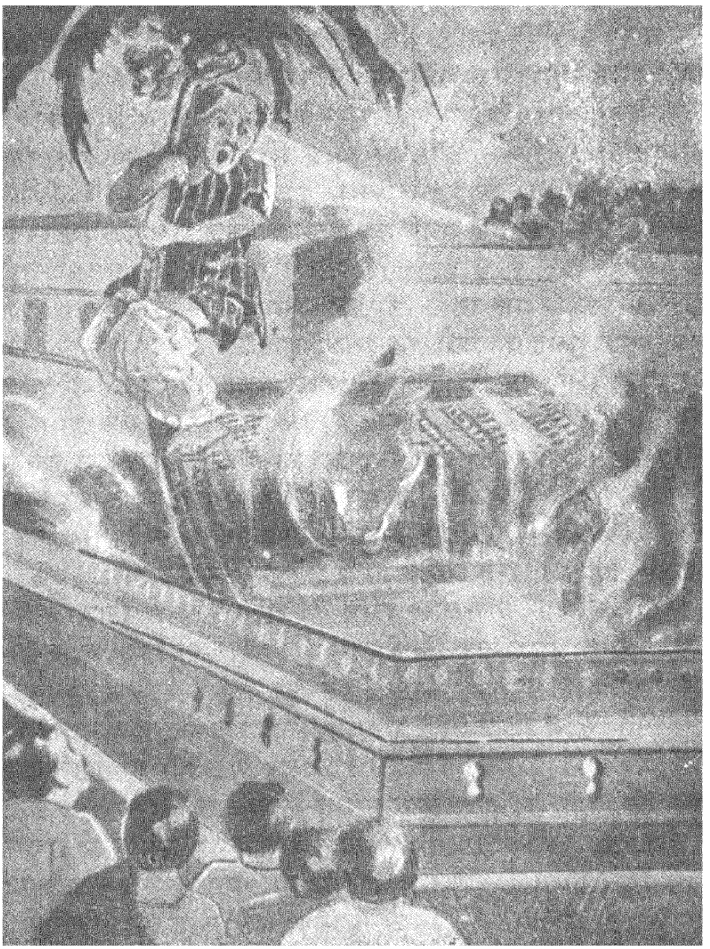
बेगम और छेदी मियाँ कालीन पर लोट रहे थे हँसी के मारे मैं जमीन पर लोट रहा था। इसलिए कि मेरी पीठ के दाग दिखाई न पड़े। इसके सिवाय उन्हें छिपाता तो किस तरह छिपाता? कोई बड़ा अक्लमन्द हो तो बतावे न? अभी यह लोट-पाट जारी ही थी कि नीचे कोहराम मचा कि "भागो-भागो, घर में आग लगी है।"

८

सब तो मकान के बाहर हो गये और मैं हर तरफ दौड़-दौड़ कर टटोलता ही रहा, मगर बाहर निकलने का दरवाजा न मिला। उस पर अब धुएँ के मारे मैं ऐसा अन्धा हो रहा था कि आँख ही नहीं काम देती थी। जिधर भागता था, उसी तरफ टकरा कर रह जाता था। एकदफा इसी तरह अन्धे के हाथ बटेर लग गई थी और मैं दरवाजे के पास बिलकुल पहुँच भी गया था। मगर हाय! कब? जब बाहर आदमियों का जमौड़ा जुट चुका था। उनकी आवाज सुनते ही मैं फिर भाग कर आँगन में हो रहा। क्योंकि इतने आदमियों के सामने कोई कैसे किसी वेश्या के घर से निकल सकता था! चाहे वह बेचारी कितनी अच्छी और भलेमानुस क्यों न होती और निकलने वाला उसके पास मेरी तरह शिक्षा ही लेने क्यों न गया होता? मगर देखने वाले तो यह नहीं समझते। आते वक्त ऊपर की साँस ऊपर और

नीचे की नीचे अटक गई थी, वह भी सुनसान अंधियाली में, जब दूसरा कोई मुझे हाथ पकड़ कर लाया था तब। वैसे ही सन्नाटे में जब यहाँ से कोई मुझे ढकेल कर निकालता तभी तो निकलता। उफ! ओ! अब मालूम हुआ कि वेश्याओं से खाली हँसना-बोलना, मिलना जुलना ही नहीं मुश्किल है, बल्कि इनके यहाँ आना-जाना तक भी लोहे का चना है। इसके आगे जहन्नुम में भी जाकर निकल आना कहीं आसान है। बाप रे बाप! इसके रास्ते में तो शर्म डर, झिझक, घबड़ाहट, बौखलाहट, सिटपिटाहट और लड़खड़ाहट वगैरह की ऐसी-ऐसी बेढब और गहरी खाइयाँ हैं कि मैं क्या, बड़े-बड़े हिम्मतवरों की नानी मर जाती है। ख्याल आते ही मेरे बदन से पसीना अब भी छूटने लगता है। श्रीमती जी के सामने तो शायद तमीज और हिचकिचाहट की छोटी-छोटी टट्टियाँ ही फाँदनी थीं, जिनको बेलाग उचक जाने के लिए यहाँ शिक्षा लेने आया था। मगर अफसोस! उल्टे लेने के देने पड़ गए। क्योंकि यह मैं नहीं जानता था कि यहाँ तो बाबा हिमालय पहाड़ लाँघना पड़ता है। कैसी बेवकूफी हुई कि फरीगदका चलाने का अभ्यास तलवार से करने चला था और उसी में हाय! जूझ मरा। बला से श्रीमती जी मुझे अनाड़ी बदतमीज या गँवार समझतीं। बला से मेरी पतिगीरी की धाक उन पर न जमती और मैं हमेशा ही उनके आगे दुम हिलाया करता। फिर भी जान तो सलामत रहती। तब इस तरह आज कबाब की तरह तो न भून जाता।

आँगन खूब लम्बा-चौड़ा था और सामने ही पानी से भरे दो घड़े और बालटी रक्खी थी। मैंने चट इनको अपने ऊपर उड़ेल कर अपने और अपने कपड़ों को खूब तर-बतर कर लिया। इसीसे मैं अब तक एकदम जल-भुनकर राख नहीं हो सका, मगर इतनी देर में आग ने मकान को चारों ओर से पकड़ लिया और उसकी गर्मी अब मेरे कपड़ों की तरावट नहीं बरदाश्त कर सकी। किसी तरफ भी भाग



"अरे! यह तो सार लतखोरीललवा है। यह सरौ का देखा, रण्डीबाजी करे गए रहा। भल भवा।

[पृष्ठ ५१]

कर चैन नहीं मिलता था। इस छटपटाहट में इस वक्त दरवाजे से सभों के सामने भी निकल जाना गनीमत समझता, मगर हाय! वह भी तो धायँ धायँ करके जल रहा था। ऊपर आग की लपट कम हो चुकी थी, क्योंकि छत की वजह से आँच थोड़ी ही बहुत निकल पाती थी। मगर नीचे आग की धमक तन्दूर के ताव की तरह सारे आंगन में छा गई और उसी में मैं डबल रोटी की तरह पकने लगा।

आखिर मरता क्या न करता? जूता खोल कर फेंक दिया। अपनी पतलून पर की किरमिच की पेटी खोल कर निकाली। उसमें बकलस लगा कर पेटी के गोल फन्दे को पैरों में डाला और पासी की तरह मैं ताड़ पर चढ़ने लगा। गो कि मैं ताड़ पर कभी चढ़ा न था मगर जब जानों पर आ बनती है तो आदमी अपने प्राण बचाने की खातिर सब कुछ कर सकता है। इसलिए मैं बन्दर की तरह सर सर ऊपर चढ़ता गया। यहाँ तक कि मैं उतनी ऊँचाई पर पहुँच गया, जहाँ आंच की लपट के साथ कुछ ठण्डी हवा भी मिलने लगी। तब जाकर दम में दम आया और मैंने दम लिया। वैसे ही नीचे इतने जोरों से शोर हुआ कि सारा आसमान गूंज उठा।

मैंने नीचे देखा कि मकान के बाहर सौ-पचास आदमी जमे हैं, और मेरी तरफ उँगली उठा-उठा कर चिल्ला रहे हैं। सब एक जबान से यही कह रहे थे कि-अरे! "वह देखो! वह देखो!"

इस चिल्लाहट पर सारे मुहल्ले वाले दौड़े। चारों तरफ आदमियों का तांता लग गया और आनन-फानन तमाम शहर वहीं फट पड़ा। आस-पास के कोठों पर भी आदमी, औरत, बच्चे, ठसाठस भर गए। सब तरफ से मुझ पर बिजली के मशाल (Torch) की रोशनी फेंकी जा रही थी। हालाँ कि आग में अभी योंही काफी रोशनी थी। एकाएक नीचे के झुण्ड से गूंजती हुई बड़े जोरों की आवाज उठी कि—"अरे! यह तो सारा लतखोरीललवा है। यह सरौ का देखौ, रण्डीबाजी करे गए रहा। भल भवा।"

लाहौल बिलाकूवत ! यह बेहूदापन बिजली की तरह सारे शहर में फैल गया। न मेरे बाप का रक्खा हुआ मेरा हिन्दुस्तानी नाम "बाबू श्यामलाल सकसेना" और न मेरा खुद रक्खा हुआ अपना विलायती नाम "मिस्टर सैमुएल सैक्सना", बल्कि हर तरफ कम्बख्त एक जबान से बदमाशों का रक्खा हुआ मेरा वह मनहूस और पुराना नाम "लतखोरा ललवा" "लतखोरी ललवा" कह कर चिल्लाने लगे, जिससे मैं चिढ़ता था। इस आफत में यह मुसीबत ? मैं वहीं दाँत किटकिटा कर रह गया। इस जिल्लत से मर जाना लाख गुना अच्छा था। उस पर लोगों की हँसी सुन कर जब अपने ऊपर गौर किया, तब मैं और कट मरा। क्योंकि अब जाना कि मेरी पतलून बेलाग हो जाने से खिसक कर पैरों के पास सिमट गई है और उसको हाय ! हाय ! मैं किसी तरह भी सम्हाल नहीं सकता था।

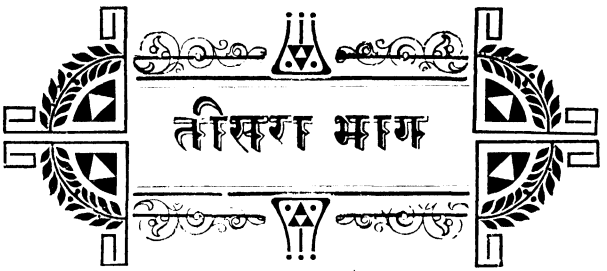
❀ ❀ ❀

नीचे आकर सुना की पिता जी मेरा बन्दूक से निशाना बनाने वाले थे। क्यों न बनाते ? ऐसा उम्दा मौका उन्हें शिकार खेलने को और कहाँ मिलता ? और यह भी सुना कि ताड़वाली रण्डी अपनी माँ के साथ हाथ मटका-मटका कर मुझे कोस रही थी कि—"आज इसी मूए की वजह से मेरा घर जला। या अल्लाह ! यह मूँड़ीकाटा वहीं से गिर कर जहन्नुम चला जाय।" वाह ! वाह ! इसके इश्क ने तो अच्छा रङ्ग दिखाया। क्यों न हो, आखिर रण्डी ही का इश्क तो। तभी लोग कहते हैं कि आँच लगते ही इसकी कलई खुलती है।

इस बात को इन दोनों माँ-बेटी ने मेरे नीचे उतरते ही मुझे सभों के सामने जूतियों से तड़ तड़-तड़ पीट कर खूब समझा भी दिया, ताकि जन्म भर याद रहे। मगर अफसोस ! इसकी खबर मेरे घर पहुँचने के पहले ही श्रीमती जी के पास पहुँच गई। यहीं तक नहीं, बल्कि यह भी पता चला कि रतजग्गा करने वाली औरतों के साथ तिमञ्जिले पर चढ़ कर उन्होंने खुद अपनी आँखों से यहाँ का रत्ती-

रत्ती हाल देखा है। बस, मैं कलेजा थाम कर रह गया। अब कौन सा मुँह लेकर उनके सामने जाने की हिम्मत करता ? हाय ! हाय ! सब चौपटानाथ हो गया। इसलिए मैं बाहर ही बाहर चुपके से स्टेशन भागा और अँगूठी बेच कर अपने होस्टल पहुँचा। हालाँकि अभी कॉलेज खुलने में बहुत दिन थे। मगर क्या करता ? कहाँ जाकर मुँह छिपाता ? कहाँ वह जिन्दगी भर मेरा मुँह देखना नहीं चाहती थीं और कहाँ अब मुझी को जिन्दगी भर उनसे मुँह चुराने की फिक्र हो गई। हाय रे तकदीर ! गवना होकर भी उनसे मुलाकात न हो !!!





ससुराल की बहार

बड़े जोरों की खुशी थी। तबियत कबूतर की तरह फड़फड़ा रही थी, दिल लंगूर की तरह बासों उछल रहा था और मैं अपने कमरे में, मूसदानी के भीतर चूहे की तरह फुदक-फुदक कर चक्कर गिन्नी काट रहा था। कभी टोपी उछालता था, कभी ताली पीटता था, कभी.....। इतने में दरवाजा भड़भड़ा कर खुला और लॉजीशियन के साथ चार-पाँच लड़के उल्लू की तरह आँखें फाड़े कमरे में घुस पड़े।

"अरे! यहाँ तो तुम अकेले ही हो।"

"तो क्या मैं अब छोटे दर्जे में थोड़े ही पढ़ता हूँ, जो एक कमरे में चार-पांच के साथ भेड़ों की तरह रहूं। अजी जनाब, अब मैं ग्रेजुएट हूँ ग्रेजुएट, और अपने कमरे का अकेला मालिक हूँ।" इतना कह कर जरा मैं शान में ऐंठ गया।

"कौन नहीं जानता कि आप ग्रेजुएट हैं और इस साल एल्-एल्० बी० का इम्तिहान देकर यहाँ से हमेशा के लिए कूच करने वाले हैं।"

'तब फिर जान-बूझ कर Insult (बेइज्जती) करना क्या मानी?"

"Insult? अरे भाई, हम तो तुम्हारी हमदर्दी करने आए थे; क्योंकि हम लोगों को ख्याल हुआ, शायद तुम्हें कोई मार रहा

है.....।" लॉजीशियन ने इतना ही कहा था कि मैं पिनपिना कर बोल उठा—"कौन साला हमको मार सकता है ?"

"तब यह फटाफट की आवाज कहाँ से आ रही थी ?"

"वाह ! वाह ! खूब समझे ? अजी जनाब मैं थपोड़ियाँ पीट रहा था, थपोड़ियां।"

"आप ही आप ? क्या कौए हँका रहे थे ? हाँ, हाँ, अक्सर रोशनदान पर कौए आकर बैठ जाते हैं।"

"नहीं जी, मैं खुशी मना रहा था खुशी, और आप लोगों को देखिए कि आकर मेरी सारी खुशी बरबाद कर दी।"

'अख्खाह ! यह कहिए। तब तो जनाब, हम सब लोग आपकी खुशी में शरीक हैं। नाहक ही तो आप बिगड़ रहे हैं। मनाओ भाई, सब लोग खुशी। हिप ! हिप ! हुर्रे !"

तड़-तड़-तड़ तालियों की गोलाबारी शुरू हो गई। कमरे में एक कोहराम सा मच गया। होस्टल के सभी लड़के जुट गए। सबने मिल कर ऐसी खुशी मनाई, ऐसी खुशी मनाई कि अपनी खुशी में उनको इतना साथ देते देख मैं अपने Insult का ख्याल भूल कर एकदम मस्त हो गया। बला से कमरे की सारी चीजें तहस-नहस हो गईं, मगर उन लोगों ने दिल खोल कर अपना सच्चा जोश तो मेरे लिए दिखलाया। टोपी वालों ने अपनी टोपियाँ उछाली, जो बेचारे नङ्गे सिर थे, उन्होंने अपने जूते ही उछाले। जिनको कुछ न मिला वे मेरी किताबों पर टूट पड़े, और एक-एक करके उनको ऊपर फेंका। गर्ज की खूब खुशी मनाई गई। इसमें किसी ने जरा सी भी कोताही नहीं की। इसीसे मैं उन लोगों के आग्रह पर उनको दावत भी देने को तैयार हो गया।

मगर जब दावत खा-पीकर मिस्टर लॉजीशियन ने कहा—"भाई, ईश्वर से मनाओ कि मिस्टर सकसेना नहीं, मिस्टर सैक्सन के रोज योंही लड़का पैदा हुआ करे, ताकि हम लोगों को हमेशा ही ऐसा दिन

नसीब हो।" तब तो मैं भड़का और बौखलाहट में जल्दी से उगल बैठा—"लड़का ? वाह ! अभी श्रीमती जी से मुझसे मुलाकात तक नहीं हुई, और लड़का हो गया ? गैरमुमकिन है।"

'अक्सर गैर-मुमकिन बात भी मुमकिन हो जाती है। इससे ताज्जुब न करो। ईश्वर की देन ऐसी होती है।...जब देते हैं तब छप्पर फाड़ कर।"—लॉजीशयन ने बड़ी गम्भीरता से कहा।

"अजो लड़का हुआ ही नहीं.... .....।"

"अच्छा तो लड़की सही। जैसे लड़का वैसे लड़की, बड़ी खुशी की बात है। ईश्वर बच्ची को सलामत रक्खे। वे लोग सचमुच बड़े बेवकूफ होते हैं, जो लड़की की पैदाइश पर दिल खोल कर खुशी नहीं मनाते। खैर, आपने खूब किया मिस्टर सैक्सन। शाबाश ! यही चाहिए .. ....।"

मैंने बात काट कर कहना चाहा—"न लड़का हुआ न लड़की। आप लोग..... ।"

इतने में कोई बोल उठा—"तब कोन जानवर पैदा हो गया भाई ?"

मुझे ताव आ गया, और मैं अपनी मुद्दतों की छिपी हुई बात फिर कह बैठा—"यहाँ पैदाइश का सवाल ही बेकार है। कह तो दिया कि श्रीमती जी के पास तक अभी जाने की नौबत ही नहीं आई।"

सब एक जबान होकर पूछ बैठे—"क्यों ?"

आखिर सच्ची बात बौखलाहट में जबान से निकल ही गई—"हिम्मत ही नहीं पड़ी।"

"और शादी हुए इतने दिन हो भी गये ? सुभानअल्लाह ! सुभान अल्लाह ! वाह री आपकी हिम्मत !"

इतने में किसी ने और जले पर निमक छिड़क दिया—"और आपका गोना हुए भी तो शायद वर्षों हो गए। क्यों न हो, नई जवानी मांझा ढीला !"

अब जाकर मुझे अपनी गलती का ख्याल आया। एक तो बेवकूफी

इतनी मुद्दत तक श्रीमती जी से न मिलने में हुई, और दूसरी बेवकूफी उस बात को जाहिर कर देने में हो गई। इसीलिए मैं इसको सदा छिपाता आता था, क्योंकि मैं जानता था कि न घटना-चक्र का कोई ख्याल करेगा, जिसमें पड़कर मैं श्रीमती जी के सामने जा न सका, और न उनको कोई दूसेगा, बल्कि इसमें सब मेरा ही कसूर बतावेंगे और इसके लिए मुझी को थूकेंगे। खैर! अब तो ताव में भण्डा फूट हो गया। फिर भी गनीमत यह हुई कि मैं जल्दी चेत गया और झट इस पर लीपापोती करने लगा। इसलिए मैंने बहुत समझ कर कहना शुरू किया—"हाँ, मेरा गौना हुए तो बेशक बहुत दिन हुए, मगर उन दिनों वह इतनी बीमार थीं, इतनी बीमार थीं, इतनी बीमार थीं……"

किसी ने बात काट कर कहा—"बस, बस, रहने दीजिए, मालूम हुआ आप खुद बीमार थे।"

मैं तुरन्त बोल उठा—"वाह! मैं कहाँ बीमार था? बीमार होता तो वैसे ही भाग कर कहीं कालेज आ सकता था? उसके बाद मेरे घर वालों ने यह बेवकूफी की, जो मुझे घर बुलाया ही नहीं; और बुलाया भी तो कब, जब वह फिर अपने मैके पहुँच गई। तब से आज तक पण्डितों के पत्रों में न जाने कौन-सा खर-बांस का इतना लम्बा-चौड़ा नक्षत्र पड़ गया है कि श्रीमती जी के आने की साइत ही नहीं बनती। उस पर मेरे घर वाले भी ऐसे गधे हैं कि पण्डितों की बातों में आ जाते हैं।"

लॉजीशियन ने सिर हिला कर हामी भरी—"क्यों न हों, आखिर आप ही के घर वाले ठहरे।"

तब तक एक साहब और चिल्ला पड़े—"न लड़का हुआ और न लड़की, सब यह इतनी खुशियाली क्यों मनाई गई?"

मैंने वैसे ही उन्हें आड़े हाथों लिया—"वाह जनाब, वाह! अब तक आपको बसन्त की खबर ही नहीं?"

बस, लगे सब के सब उन्हीं को बनाने—"जी हाँ, सावनके अन्धे

ऐसे ही होते हैं। डेढ़-डेढ़ पाव पूड़ियाँ उड़ा गए, और अब तक आप पड़े सोते ही रहे। क्या कहना है!"

"और नहीं तो क्या? भला यह भी कोई पूछने की बात थी?"

"यह तो इन्हें पहले ही समझ जाना चाहिए कि मिस्टर सैक्सन को कोई बहुत ही बड़ी खुशियाली हुई है, तब तो इन्होंने ऐसी धूम मचाई है।"

अब तो मेरी खुशियाली का कारण भी एकाएक चौंक कर मेरे दिल के भीतर वह ऊधम मचाने लगा कि मेरे सँभाले न सँभला, और उस हजरत को सभों की नजरों में और भी उल्लू साबित करने के लिए वह खट से मेरे मुँह से निकल ही तो पड़ा—"बेशक! इससे बड़ी भला दुनियाँ में और कौन खुशियाली हो सकती है कि मेरे ससुर जी ने मुझे खत लिख कर बुलाया है, और इसी दशहरे की छुट्टी में।"

"लाहौल बिलाकूवत !!!"

सारा कमरा गूंज उठा। इसलिए मुझे चिल्ला कर कहना पड़ा—"लाहौल बिलाकूवत नहीं, यह देखो उनका खत, अरे! इसी की बदौलत तो श्रीमती जी से मिलने की खुशकिस्मती नसीब होगी, भाई!"

"हो चुकी।"

अरे! यह क्या? वह कैसी उल्टी हवा चली? सब मुँह बिचका कर चल दिए और मैं हाथ में ससुर जी का खत लिए अपना-सा मुँह लेकर रह गया। हाय! हाय! मेरी सारी खुशी चौपट हो गई और खिलाना-पिलाना भी भाड़ में चला गया।

२

निहायत अफसोस में था। दिल में खुशी जरूर रही होगी, मगर मुँह तो बड़ा सा लटका हुआ था। जिस खुशखबरी को सुन कर सङ्गी-साथी, यार-दोस्त फड़क न उठे, उसका मजा ही किरकिरा हो जाता है। मुझे तो ख्याल था कि ससुर जी का खत देखते ही यार

लोग लपक कर उसे छीन लेंगे, और मेरी तरह मारे खुशी के उछल पड़ेंगे और यों जिस तरह से सूर्य की किरणें आईने पर पड़कर और चमक उठती हैं, उसी तरह ये लोग भी अपनी खुशी से मेरी खुशी को दुबला कर देंगे। इसलिए इन लोगों को दावत दी थी। मगर अफसोस! यह सब तो ऐसे मिट्टी के ढेर निकले कि अपनी मुर्दनी से मेरे दमकते हुए चेहरे पर भी झाँई डाल गए। मैं इस सोच में पड़ गया कि शायद यह खुशी की बात ही न हो, या श्रीमती जी से मेरे मिलने के मनसूबों का इन लोगों ने कुछ ख्याल ही न किया हो।

शाम को लॉजीशियन के साथ दस-पाँच लड़के गरोह बाँध कर Deputation के तौर पर मेरे पास आए और रञ्जीदा सूरतें बनाए मेरी हालत पर अफसोस करने लगे। तब तो मैं बौखला गया।

लॉजीशियन इस गरोह का नेता होकर मुझसे कहने लगा और सब लोग उसकी बात पर 'हाँ' कहके ताईद करने लगे—"मिस्टर सैक्सन, हम लोगों को यह जान कर बहुत ही अफसोस है कि आपके ससुर जी ने आपको इस दशहरे की छुट्टियों में अपने यहाँ बुलाया है।"

मैंने ताज्जुब में आकर पूछा—"मेरी समझ में नहीं आता कि आप लोगों को क्यों अफसोस है। यह तो मेरे लिए ऐन खुशनसीबी है कि वह इतने दिनों बाद पसीजे तो।"

लॉजीशियन—"मगर बेमौके, क्योंकि—का वर्षा जब कृषी सुखाने।"

मैं—"यह क्या?"

लॉजीशियन—"यही कि ससुराल जाना दूल्हों ही को शोभा देता है, बुड्ढे भतारों को नहीं?"

मैं हैरान होकर बोला—"बुड्ढा भतार? अरे! क्या मैं अभी से बुड्ढा हो गया? इतनी जल्दी?"

लॉजीशियन—"और नहीं तो तुम अपने को क्या समझते हो? भाई, अब जवानी-बुढ़ापा उम्र से नापने का फैशन ही नहीं रहा। अब तो पढ़ाई पर है।"

मैं—"यह कैसे ?"

लॉजीशियन—"यह आजकल की तालीम की खूबी है। क्योंकि पढ़े-लिखों में अब जवानी बस एन्ट्रेन्स ही तक रहती है। उसके बाद एफ० ए० में जाते ही अधेड़ अवस्था शुरू हो जाती है, और बी० ए० में पहुँचते-पहुँचते तो बुढ़ौती फट पड़ती है। इसे चाहे कोई माने या न माने, और अपने चेहरे पर कितना ही तेल-पानी लगावे, मगर असलियत यही है।"

सभों ने इसे सही बताया। एक साहब ने तो यहाँ तक कहा कि "इससे कोई इनकार कर ही नहीं सकता, चाहे किसी के हाथ पर गङ्गाजली रख कर पूछ लीजिए।"

मेरा दिल बैठ गया, क्योंकि बदकिस्मती से मैं तो बी० ए० पास हो चुका था। फिर भी बड़ी हिम्मत करके मैंने कहा—"वाह! ससुर जी को इस साल रायसाहबी मिली है, उसी का जलसा वह इस दशहरे की छुट्टियों में कर रहे हैं ताकि उनके दूर-दूर के सभी रिश्तेदार उसमें शरीक हो सकें। वहाँ नाटक होगा, दावत होगी। ससुरजी अपनी लम्बी-चौड़ी 'स्पीच' (भाषण) देकर सबको धन्यवाद देंगे। उनके बड़े दामाद, जो खाली बी० ए० ही नहीं बल्कि एम० ए०, एल्-एल्० बी० हैं और देखने में भी बूढ़े हो चले हैं, वह भी जायँगे। और मैं तो खास तौर से बुलाया गया हूँ। तब मेरा जाना क्यों नहीं अच्छा है ?"

लॉजीशियन ने मुँह बिचका कर कहा—"अजी तुम्हारे बड़े साढ़ू पुराने जमाने के एम० ए०, एल्-एल्० बी० होंगे! उनकी बात और है। दूसरे वह जायँगे जलसा देखने और तुम जाओगे शायद अपनी श्रीमती जी से मिलने के लिए। वह भी पहले-पहल।"

मैं—"हाँ भाई हाँ तुमने दिल की बात कह दी।"

लॉजीशियन—"बस, इसीलिए तो तुम्हारी हालत पर हम लोगों को इतना अफसोस हो रहा है। क्योंकि तुम खुद ही कह चुके हो कि

जब गौने में तुम्हारे यहाँ वह आई थीं, जहाँ तुमको कोई दूसने वाला नहीं था, तब तो उनके सामने जाने में तुम्हारी नानी मर गई, और वहाँ, जहाँ साली-सलहजें होंगी, और खिल्ली जरूर उड़ाएँगी; क्योंकि ईश्वर जाने औरतें कौन सी विद्या पढ़े रहती हैं कि वे आदमी की जवानी या बुढ़ापा लाख छिपे रहने पर भी दूर ही से भाँप लेती हैं, और उसके साथ फिर वैसा ही बर्ताव करती हैं। तब ऐसी फटकार की बौछार में श्रीमती जी से मिलने के लिए तुम्हारी हिम्मत भला कहीं ठहर सकती है ?"

"नहीं ठहर सकती, नहीं ठहर सकती।"—सभों ने सिर झटक-घटक कर कह दिया।

इस शोर में मेरी रही सही हिम्मत भी जाती रही। किसी तरह बड़ी मुश्किल से इतना कह सका—"मगर गौने की बात और थी। एक ऐसी घटना हो गई थी, जिसके मारे मैं उनको अपना मुँह न दिखा सका।"

लॉजीशियन— 'अजी घटना गई भाड़ में ! जवानी में एक नहीं, सैकड़ों ही घटनाएँ हो जाती हैं, मगर हिम्मत ज्यों की त्यों बनी रहती है; क्योंकि उन दिनों खून में सुर्खी और गर्मी रहती है, जिससे बदन में ताकत बनती है, और ताकत ही से हिम्मत पैदा होती है। मगर जब खून ही पानी हो जाय, तब भला हिम्मत किस बिरते पर हो ? तब तो जरा सी भी कोई बात हो जाय, बस, लीजिए हाथ-पांव फूल गए। इसीलिए तो कहता हूँ कि दोस्त, तुम बुड्ढे हो गए, और यह बुढ़ापा तुम्हारे गौने ही के वक्त से जारी है। क्यों, उस जमाने में तुम बी० ए० में आ चुके थे न ?"

मैंने हिसाब लगा कर देखा तो जाना, सचमुच उस वक्त मैं बी० ए० के शुरू साल में था। बस, वैसे ही मैंने अपना सिर पीट लिया।

लॉजीशियन—"आखिर वही बात निकली कि नहीं ? नियम थोड़े ही गलत हो सकते हैं। जो बात कह दूं, उसे ब्रह्म-वाक्य की तरह

अटल समझो। यह तुम्हारा बुढ़ापा ही है, तो श्रीमती के पास जाते हुए तुम्हारी टांग पकड़ कर खींच लेता है। घटना-वटना का ख्याल बिलकुल बेकार है।"

अब तो मुझे भी विश्वास हो गया कि असलियत में मैं बूढ़ा हूँ, और मेरा खून भीतर ही भीतर जरूर पानी हो गया है।

लॉजीशियन ने चलते-चलाते घूम कर फिर कहा–"हालत तुम्हारी यह, और श्रीमती जी से मिलने की उम्मीद लिए तुम्हारा ससुराल जाना सुन कर क्यों न हम लोगों की छाती फटे? आखिर हम लोग तुम्हारे दोस्त हैं कोई दुश्मन नहीं। तुम खुद ही सोचो कि जब पहले-पहल किसी हाकीम के सामने जाना पड़ता है, तो बड़े-बड़े हिम्मतवारों की भी घिग्घी बँध जाती है, कलेजा दहल उठता है। और वह तो तुम्हारी श्रीमती जी हैं भाई, जिनसे तुम्हारी दुम भी पहले ही से दबी हुई है। उस पर तुम ठहरे बूढ़े। सामने जाते ही तुम्हारी जो गति न हो जाय, वह थोड़ी है।"

मैं एकदम ठण्डा हो गया। चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। हाय! हाय! इस बुढ़ापे के ख्याल ने श्रीमती जी से मिलने के सारे मनसूबे मिट्टी में मिला दिए। मेरे और उनके बीच में यह कम्बख्त बुढ़ापा क्यों फट पड़ा? इसकी यहाँ क्या जरूरत थी? क्या इस पाजी को भगाने की कोई तदबीर नहीं है? उफ्! कुछ समझ में नहीं आया।

३

दो घण्टे तक मैं अपने कमरे में अकेला पागलों की तरह चक्कर लगाता रहा। जब तबियत बहुत परेशान हो गई, तब मैं सीधे लॉजीशियन के पास दौड़ा, और जाते ही उनके बिस्तरे पर धम से गिर पड़ा।

लॉजीशियन ने घबरा कर पूछा–"क्या हुआ भाई, क्या हुआ?"

मैंने एक आह खींच कर जवाब दिया-"क्या बताऊँ दोस्त, मैं तो अपनी श्रीमती जी के लिए बेमौत मरा जाता हूं। उनका प्रेम मेरी नस-नस में भींज गया है। अब बिना उनसे मिले मैं किसी तरह भी जिन्दा नहीं रह सकता। मगर हाय! इस बुढ़ापे को क्या करूँ। यह साला तो मालूम होता है, मेरे लड़कपन ही से मेरे पीछे हाथ धोके पड़ा है। मेरी सारी आफतों की जड़ यहा है। उफ! आज पता मिला। अब तक मुझे इसकी कुछ खबर ही न थी। इसके मारे तो अभी से यहाँ होलादल शुरू हो गया है। यही हाल है तो ईश्वर जाने, मेरा वहाँ क्या हाल हो! और बिना वहाँ जाकर उनको देखे मैं रह भी तो नहीं सकता। यों भी मौत और यों भी मौत। हाय! क्या करूँ? क्या तुम इस कमबख्त से मेरा पिण्ड नहीं छुड़ा सकते? कम से कम इस छुट्टी भर तक के लिए? क्या यह बात मुमकिन है? ईश्वर के लिए बोलो।"

लॉजीशियन ने बड़ी गम्भीरता से कहा—"दुनियां में भला कौन सी बात मुमकिन नहीं? किसी तरह से तुम्हारे खून की गर्मी, जो दिमागी मिहनत से कम हो गई है, पूरा कर देने से काम बन सकता है। इसके लिए दवाइयाँ तो बहुतेरी हैं, मगर वे महीनों में अपना असर दिखाती हैं और छुट्टी दो ही दिन बाद होने वाली है। इतनी जल्दी भला क्या हो सकता है।"

मैंने बड़ी उतावली से पूछा—"जरा उस दवा का नाम तो बताओ। दो दिन तो बहुत हैं। में एक ही दिन में महीनों की खूराक पी जाउँगा; क्योंकि मेरा जाना बहुत जरूरी है। मैं किसी तरह भी रुक नहीं सकता। वर्षों तड़पने के बाद उनसे मिलने का यह मौका मिला है। इसे मैं कैसे छोड़ सकता हूँ? तुम्हीं सोचो।"

लॉजीशियन—"मगर दवा मँगाने में भी तो छः सात दिन लग जायँगे।"

मैं—"हाय! हाय! तब क्या करूँ? कहो तो, जी कड़ा करके

गर्म तवे पर बैठ जाऊँ। सारे बदन का खून एकबारगी खौल उठे। मैं श्रीमती जी की खातिर सब कुछ करने को तैयार हूँ, उनके लिए मेरी जान जा रही है।"

लॉजीशियन—"नहीं-नहीं, इसमें बड़ी सख्त तकलीफ होगी। ठहरो....हाँ, दरवाजा बन्द कर दो बात ही ऐसी है। कोई सुन न ले।"

मैंने लपक कर दरवाजा बन्द कर दिया, और बड़ी बेताबी से कहा—"हाँ, अब बताओ।"

लॉजीशियन ने खाँस कर जवाब किया—"रूठी जवानी मनाने में कसरत बड़ी जल्दी मदद करती है।"

मैं—"तो जाकर डण्ड लगाना शुरू कर दूं?"

लॉजीशियन—"इससे खाली सीना चौड़ा होकर रह जायगा। मुग्दर भाँजोगे तो बाँहें मजबूत होंगी। बैठक से टाँगों की फिल्लियाँ मोटी होंगी। इसलिए यह सब तुम्हारे लिए बेकार है।"

मैंने घबड़ा कर पूछा—"हाय! हाय! तब क्या करूँ?"

लॉजीशियन—घोड़े की सवारी! तमाम कसरतों में बस यही एक शाहाना कसरत है। इससे सारे बदन के खून में हलचल मचती है। इस हलचल से गर्माहट पैदा होती है। जहाँ दो दिन तुम्हें कसके घोड़े की सवारी करने को मिली, वहाँ गई जवानी आप से आप तुम्हारे पैरों पर गिरेगी; क्योंकि यों तो तुम्हारी जवानी की उम्र है ही।"

घोड़े का नाम सुनते ही मेरे हवास गुम हो गए, क्योंकि जिन्दगी में मैं कभी घोड़े पर चढ़ा नहीं था। इसलिए डरते-डरते कहा—"मगर बहुत सीधा और बहुत छोटा घोड़ा हो, तब तो। भला ऐसा घोड़ा मिलेगा कहाँ?"

लॉजीशियन—"यही मैं सोच रहा हूँ। अरे! खूब याद आया। इस होस्टल के पिछवाड़े वाले मैदान में अक्सर बनियों के टट्टू चरने आते हैं। चलो, आज उन्हीं में से एक पकड़ कर तुम अपना काम निकालो। कल देखा जायगा। मगर जब सब कोई सो जायँ, तब।

वरना शायद कोई हँसी उड़ावे कि इन्हें लद्दू टट्टू पर भी चढ़ना नहीं आता।"

मैं—'हाँ भाई, हाँ। कोई जानने न पावे इसका ख्याल रखना बहुत जरूरी है। मगर कहीं पटक न दे?"

लॉजीशियन—"नहीं जी, लद्दू तो लद्दू, पटकेगा क्या? अच्छा एक घण्टे बाद जब तुम एक सीटी की आवाज सुनना, तो चुपके पिछवाड़े वाले मैदान में चले आना। मैं कोई न कोई घोड़ा पकड़ कर सीटी बजाऊँगा। चाँदनी रात है। मजे से रात भर खूब सवारी करना।"

आधे ही घण्टे के बाद सीटी बजी। मेरे कान उधर ही लगे थे। मैं चुपके से कमरे के बाहर हुआ। डरता था, शायद कोई टोक न बैठे। मगर ईश्वर की कृपा से तमाम होस्टल में सन्नाटा छाया हुआ था। मैदान में पहुँचा तो देखा, लॉजीशियन सचमुच एक पेड़ के नीचे अँधेरे में एक निहायत उम्दा छोटा सा टांघन मेरे लिए पकड़े खड़ा है। बिलकुल मेरे मन के लायक। शुरू-शुरू में मैं बस ऐसा ही चाहता था। श्रीमती जी की खातिर उस वक्त घोड़े की सवारी के जाश में इतना भरा हुआ था और उस पर चढ़ना भी ऐसा आसान था कि मैंने जाते ही उस पर चढ्ढी गाँठ दी। उसके अगले पैर छाँदे हुए थे।

लॉजीशियन ने उसे खोल दिया, और उस रस्सी से मेरे दोनों पैर उस टट्टू के पेट के नीचे जुटा कर बाँध दिए, ताकि वे जमीन में लग कर मुझे सवारों की तरह उचकने में बाधा न डालें। वरना खून में हलचल मचना गैर मुमकिन था!

मैंने लॉजीशियन को धन्यवाद देकर कहा—"वाह दोस्त, तुम्हीं मेरे एक सच्चे दोस्त हो। यह छोटा सा टट्टू तुमने खूब ढूँढ़ा। इस पर मुझे जरा भी डर नहीं मालूम होता। मगर बहुत बचकाना मालूम होता है। कहीं मेरे उचकने से यह बैठ न जाय।"

लॉजीशियन–"नहीं जी, बड़ा मजबूत जानवर है। इसकी मजबूती की दुनिया तारीफ करती है। बड़ी मुश्किलों से तो यह मिला है।"

इतने में पेड़ के साए से निकल कर जब मैं चाँदनी में आया तब घबड़ा कर बोल उठा—"अरे ! यह तो घोड़ा नहीं गधा है जी !!!"

लॉजीशियन ने झट मेरा मुँह बन्द करके कहा—"चुप भी रहो। कोई सुन लेगा तो क्या कहेगा? घोड़ा मिला ही नहीं तो क्या करता? जहाँ मुर्गा न हो तो वहाँ क्या सुबह ही न हो? तुम्हें अपना काम निकालने से मतलब। यही सही। अरे यह मिल गया, यही बड़ी बात हुई। नहीं आज योंही तुम रह जाते।"

मैंने चारो तरफ देख कर कहा—"वह देखो, एक टट्टू तो चर रहा है।"

लॉजीशियन—"वह टट्टू नहीं, गधी है। मैं पहले ही देख चुका हूँ। तुम नाहक हिचकिचाते हो। सुना नहीं, गरज पर लोग गधे को भी बाप बनाते हैं? दूसरे इसके बराबर शरीफ, भलामानुस और मजबूत जानवर दुनियाँ में कोई होता ही नहीं। साहब लोग अपने बच्चों को इसी पर घोड़सवारी सिखाते हैं। ऐब इतना ही है कि हिन्दोस्तान में इस बेचारे की कदर नहीं है, इसलिए तुम्हें अगर इस पर कोई देख ले, तो अलबत्ता बुराई है। उसकी भी चिन्ता नहीं; क्योंकि सब लड़के आज 'सिनेमा' देखने गए हैं। तुमने होस्टल में सन्नाटा देखा होगा।"

उसने बात ठीक कही। मुझे अपनी गरज देखनी चाहिए। हिन्दोस्तानी पाखण्ड में पड़ कर बेकार वक्त खराब करने से क्या फायदा। मैं कोई शौकिया तो इस पर सवार नहीं हुआ? इलाज के लिए गधा क्या, सुअर पर भी चढ़ना पड़ता तो चढ़ता ही; क्योंकि मुझे परसों ही ससुराल जाना था। दूसरे कोई देखने वाला भी न था। इसलिए श्रीमती जी का नाम लेकर मिनट में छिहत्तर दफे के हिसाब से उस पर मैंने उचकना शुरू कर दिया।

मगर बेलगाम का गधा कमबख्त गधी के पास जा खड़ा हुआ, और वह हरामजादी उसे देखते ही अपनी दुलत्तियों से ताबड़तोड़

ऐसा नखरा दिखाने लगी कि मेरी जाँघ और पीठ का कचूमड़ निकल गया। खैरियत हो गई कि मेरी चिल्लाहट पर लॉजीशियन ने दौड़कर गधी के बंधे हुए पैर खोल दिए और उसको मार कर वहाँ से भगा दिया, वरना उस दिन वह मुझे मार ही डालती।

लॉजीशियन चला गया, और गधे साहब थोड़ी दूर चल कर मजे से चरने लगे। वहाँ पर ऐसे अड़े कि लाख चुचकार-पुचकार और हुरपेटने पर भी वह न भिनके। उन पर घण्टे भर तक बैठे-बैठे उनकी खुशामदें कीं, और हर तरह से कहा कि "भाई साहब! आपकी जगह पर अगर दूसरा कोई होता, तो मैं कहता भी कि अबे गधे, यह क्या कर रहा है; मगर आपको क्या कहूँ? आप तो आप ही हैं। ईश्वर के लिए मेरी हालत पर तरस खाइए। मुझे परसों ही श्रीमतीजी के पास जाना है। अब चरना बन्द कीजिए। कितना खाइएगा, बदहज्मी हो जायगी।" मगर उन्होंने मेरी बातों पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। तब तो मुझे बड़ा गुस्सा मालूम हुआ। जी में आया कि उतर कर कम्बख्त को दो-चार लातें जमाऊँ, या कहीं से पतली शाख तोड़ कर उसकी खबर लूँ; मगर अपने पैर बँधे हुए होने के कारण मैं किसी तरह भी उस पर से उतर नहीं सका। बन्धन खोलने की कोशिश की, मगर वहाँ तक मेरा हाथ ही नहीं पहुँचा। हाय! हाय! यह तो बड़ा गजब हुआ, क्योंकि अगर बन्धन न खुला, तब तो खाली रात ही भर नहीं, बल्कि दिन में भी इसी पर लदा रह जाऊँगा, और सारी आबरू खाक में मिल जायगी। उस पर गलती यह हुई कि मैं लॉजीशियन से यह कहना भूल गया कि पौ फटने के पहले मुझे आकर खोल देना। इसलिए सब ख्याल छोड़ कर अब मुझे अपने बन्धन खोलने की पड़ गई। मैं दाहिने-बाँयें लटक-लटक कर अपने पैरों तक अपने हाथ बढ़ाने लगा। इतने में न जाने कहाँ से रेंकने की आवाज आई। वैसे ही मेरे गधे साहब भी झट खाना-पीना छोड़ कर 'सीपों-सीपों' करते हुए उसी तरफ भागे। मैं इस अचानक भगदड़ में नीचे लटका का लटका

ही रह गया, और मेरी बँधी हुई टाँगे जन से सरक कर गधे की पीठ पर जा पहुँची। मुझे मालूम न हो सका कि गधा किधर जा रहा है; क्योंकि मैं उस पर उल्टा टँगा हुआ था। अपनी खोपड़ी को जमीन पर बार-बार टकराने से बचाने के लिए मुझे भी गधे के साथ-साथ अपने दोनों हाथों के बल दौड़ना पड़ता था। फिर भी मेरा एक तरफ का चेहरा काफी रगड़ गया। इतने में पास ही बड़े जोरों की चिल्ला-हट सुनाई पड़ी कि—"अरे! यह छै टांग का कौन जानवर है। लाओ बन्दूक! जल्दी 'शूट' कर दो, नहीं तो भाग जायगा।"

मेरे प्राण सूख गए। अब इस वक्त मैं आबरू देखता या अपनी जान! इसलिए मैं गला फाड़ कर चीख उठा—"हां-हां, कहीं ऐसा गजब न करना। मैं हूँ, मैं—सैमुएल सैक्सन उर्फ श्यामलाल सकसेना उफ लतखोरीलाल।" घबराहट में मैंने अपने सब नाम जल्दी से उगल दिए। ताकि गोली चलाने के पहले किसी तरह लोग मुझे पहचान तो जायँ।

लोगों ने मुझे खूब पहचाना, जी-भर के पहचाना, अच्छी तरह से पहचाना। जिनको कुछ शक था, उन्होंने भी बिजली की बत्ती जला-जला कर पहचाना; क्योंकि मेरा गधा सीधे होस्टल के हाते के भीतर जाकर डेढ़ सौ लड़कों के बीच में अपनी गधी के पास खड़ा हुआ था, जहाँ उसे वे लोग शायद सिनेमा से लौटते समय किसी के कमरे में बन्द करने के लिए कहीं से पकड़ लाए थे, और उसको घेरे हुए ही-ही करके हँस रहे थे। खामखाह!

रात भर चेहरा भन्भाता और सारा बदन फोड़ा सा दुखता रहा। सुबह को शीशे में मुँह देखा, मेरी आधी सूरत जमीन की रगड़ से एक दम छिल गई थी। उसी वक्त लॉजोशियन ने आकर मुबारक-बाद दिया और कहा-"उफ्! ओह! एक ही दिन में इतना फायदा? देखो, खून में कितनी सूर्खी आ गई और उसमें अब गर्माहट भी



"अरे ! यह छै टाँग का कौन जानवर है ? लाओ बन्दूक ! जल्दी 'शूट' कर दो, नहीं तो भाग जायगा।" [पृष्ठ ६८]

होगी। गाल पर हाथ रख कर देखो तो। दोस्त, तुम्हारी बुढ़ापे की शिकायत बिलकुल दूर हो गई। अब तुम बेखटके अपनी श्रीमती जी से मिलने जा सकते हो।"

मैंने ठण्डी सांस लेकर जवाब दिया—"मगर हाय! यह नुची हुई सूरत लेकर वहाँ कैसे जाऊँ?"

सारी छुट्टी मलहम-पट्टी में निकल गई, और श्रीमती जी से मिलने के मनसूबे हाय! फिर दिल में ज्यों के त्यों रह गए।

४

आखिर देवी-देवताओं को मनाते, ईश्वर को रातों-दिन याद करते, मन्दिरों में सुबह-शाम नाक रगड़ते बड़े दिन की छुट्टियाँ आईं और मैं श्रीमती जी से मिलने की खातिर ढेरों मनसूबों की गठरी बाँधे, बड़े ठाट-बाट से ससुराल रवाना हुआ। दोस्तों की सलाह से ससुराल वालों को भेंट देने के लिए एक उम्दा सौगात भी खरीद ली। ससुर जी के लिए खिजाब, सास जी के लिए चश्मा, बच्चों के लिए एक दर्जन कलम बनाने वाले चाकू, नौकरानी के लिए आग सुलगाने की फुकनी और श्रीमती जी के लिए कोकशास्त्र—गरज यह कि सब के लिए इसी तरह चुन-चुन कर जरूरत की चीजें रख लीं; ताकि उन्हें लेते ही लोग मुझसे खुश हो जायँ और श्रीमती जी भी जाने कि हाँ, मेरा मर्द सचमुच बड़ा काबिल है।

मगर क्या बताऊं, ससुराल वालों की औंधी अक्ल के मारे श्रीमती जी पर मेरी धाक कुछ भी बँधने न पाई। क्योंकि मेरी सौगात देखते ही सभी के मुँह न जाने क्यों लटक गये। सिर्फ बच्चे बेचारे अलबत्ता अपनी चीज देख कर फूले न समाए और झट हाथ में एक एक चाकू लेकर लगे घर भर में नाचने। मगर अक्ल के दुश्मनों से यह भी देखा न गया। इन लोगों ने मार-पीट कर उन बेचारों से चाकू छीन लिया और उनके हँसते हुए चेहरे को अपने ही

ऐसा तोबड़ा सा लटकता हुआ बना दिया। अङ्गरेजों के बच्चे पैदा होते ही तोप, बन्दूक, तमञ्चे से खेलें और हिन्दुस्तानी बच्चे एक छोटी सी छुरी से भी खेलने न पावें ! अन्धेर है कि नहीं ? तभी तो देश में इतनी कमहिम्मती फैली हुई है !!

ससुर जी तो मुझसे कुछ नाराज थे, क्योंकि उनके बुलाने पर भी मैं उनके यहाँ दशहरे के जलसे में शामिल न हो सका था, हालाँकि बाद को मैंने अपने पत्र में माफी मांगते हुए उनको लिख दिया था कि इस बड़े जलसे में, जो आप लम्बा-चौड़ा लेक्चर देने वाले हैं, उसे अभी आकर मेरे न सुन सकने से आप चिंता न कीजिएगा। कृपया उसे आप याद रखिएगा,मैं बड़े दिन में आकर उसे निहायत इतमीनान से जरूर सुनूँगा। इसलिए उसकी कसर इस वक्त उन्होंने मेरी भेंट लौटाल कर निकाली और सूखे मन से यह बहाना कर दिया कि "मैं खिजाब नहीं लगाता; और दूसरे दामाद से कोई चीज ली भी नहीं जाती।" मगर सास जी चश्मा फेंक कर ख़ामखाही उबल पड़ीं—"वाह रे सपूत ! अभी तो मैं रात में भी कसीदे काढ़ लेती हूं और तुम हमको अन्धी बनाए देते हो। ले जाओ इसे अपनी अम्माँ को देना। बेचारी निहाल हो जायँगी।" यह कह कर सासजी वहाँ से खिसकगईं।

नौकरानी एक छल्ले-उछाल थी। मालकिन का कड़ुआ रङ्ग देखते ही खुद भी चटपटी हो गई। चमक कर बोली—"इसे भी ले जाइए, उन्हीं को थमा दीजिएगा।" यह कह कर उस हरामजादी ने मेरे आगे इस तरह फुकनी पटकी कि वह जमीन से उछल कर मेरी गोद में जा गिरी। फिर क्या था, आँगन में बच्चे ताली बजा कर चिल्ला उठे—"जीजा भी मारे गये।"

मेरे होश उड़ गये कि कहीं श्रीमती जी इसे सुन न लें, वरना उनकी निगाहों में मेरी रही-सही इज्जत भी खाक में मिल जायगी। इसलिए मैंने लड़कों से डपट कर कहा—"चुप रहो। देखते नहीं, फुकनी अलग गिरी ? मुझे कहाँ लगी ?"

छेड़ने से जैसे बन्दर और भी खौखियाने लगते हैं, वैसे मना करने पर लड़कों ने और जिद्द पकड़ ली। इसलिये अब और जोर-जोर से कहने लगे—"महरिन ने जीजा जी को मारा है। हमने देखा है, हमने देखा है!"

मैं डर के मारे आँखें फाड़ कर चारों तरफ देखने लगा कि कहीं श्रीमती जी नजदीक तो नहीं हैं। मगर हाय-! आँख उठाते ही देखा कि सामने वाली कोठरी के किवाड़ की आड़ में उनकी झलक बिजली की तरह चमक कर गायब हो गई। मैं हक्का-बक्का सा मुँह बाए अभी उसी तरफ ताक ही रहा था कि इतने में मेरी छोटी साली उसी कमरे से हाथ में एक बड़ा सा लिफाफा लिए हँसती हुई बाहर हुई और सीधे मेरे पास आकर मेरी पीठ इस तरह झाड़ने लगी गोया मैं सच-मुच मारा गया हूं। उसपर आफत यह मचाई कि वह जोर से सबको सुना-सुना कर कहने भी लगी—"जीजा जी ऐसे ही हैं, जिन्हें महरिने भी मारती हैं। राम! राम!"

मेरा दम घुटने लगा। मैं घबड़ा कर वहाँ से भागा। मगर वह चट कमीज पकड़ कर बोली—"आप इतने छटकते क्यों हैं? मार खाते वक्त यह नखरे भूल गए थे क्या?"

"मैं तुम्हारे लिए बड़ी अच्छी चीज लाया हूँ, उसी को लाने जाता हूँ।" यह मैंने झट चुपके से उसके कान के पास कह दिया, ताकि किसी तरह मेरी बेइज्जती की यह चर्चा तो बन्द हो।

मैं भाग कर बैठक में हो रहा और अपना ट्रङ्क खोल कर साली को देने के लिए उपहार ढूँढ़ने लगा। मगर सच तो यह था कि मैं उसे बच्चों ही में गिने हुए था। यह मुझे ख्याल ही नहीं हुआ कि इतनी जल्दी यह इतनी बड़ी हो जायगी। इसलिए किसी नवयुवती को देने योग्य मैं कोई चीज नहीं लाया था। एकाएक याद आया कि महराजिन के लिए मैं एक गृहस्थी का सामान लाया हूँ, जो उसके मौजूद न होने से अब तक मेरे पास है। बस, वैसे ही मुझे सूझ गया

कि उसी को साली साहिबा को देकर इस वक्त अपनी लाज रखनी चाहिए। क्योंकि अब बड़ी हो जाने से इसे भी गृहस्थी के काम में हाथ बटाना ही पड़ता था। इसलिए मैंने जल्दी से ढूँढ़-ढाँढ़ कर उसको निकाला और उसे ले जाकर मैंने साली साहिबा को दिया।

साली—"अरे यह हँसिया लेकर मैं क्या करूँ ?"

मैं—"इसे तुम्हारे लिए खास तौर से लाया हूं, बड़े काम की चीज है। जब तरकारी काटने बैठोगी तब इसकी जरूरत जानोगी।"

वह मारे खुशी के एकाएक हँस पड़ी और हँसते-हँसते लोट गई। मेरा भी मुरझाया हुआ दिल यह देखकर खुश हो गया कि इसने अलबत्ता मेरी चीज की कद्र की। यहीं तक नहीं, बल्कि वह मुझसे इतनी खुश हुई कि उसने जमीन से वह बड़ा सा लिफाफा उठा कर, जिसे लिए हुए मेरी श्रीमती जी के कमरे से वह बाहर हुई थी मुझे दिया और कहा—'इसे आप रख लीजिए। जीजी की तरफ से ननद जी के लिए मैं यह भेंट देती हूं। जीजी ने कहा है कि यह उनके बड़े काम की चीज है। इसकी जरूरत उन्हीं को बहुत रहती है।"

मैंने लिफाफे में हाथ डाल कर देखा तो बस ! कलेजा थाम कर रह गया। मैंने यहां पहुँचते ही सुबह को श्रीमती जी के पास नौकरानी के हाथ जो कोकशास्त्र भिजवाया था, हाय ! उसी के एक-एक वरक दस दस टुकड़ों में फाड़कर उसमें रक्खे हुए थे। उन्हें देखते ही बदन में आग लग गई ; क्योंकि एक तो किताब की किताब फाड़ी, उस पर उसे मेरी बहिन को देने के लिए कहा, जो बेचारी अभी कुमारी थी। यह सोच कर मुझे बहुत गुस्सा आया और बस यही जी चाहा कि तड़ाक-तड़ाक तो तमाचे साली साहिबा को जड़ दूँ और रात का बिना इन्तजार किए, इसी वक्त सामने वाले कमरे में घुस जाऊँ और फिर.....कि इतने में कम्बख्ती का मारा एक लड़का बोल उठा—क्यों दिद्दा, यह हंसिया तुम क्यों लिए हो ?

साली—"जीजा जी अभी सूपनखा बनेंगे, तब इसी से उनकी नाक काटूंगी।"

गजब हो गया। यह सुनते ही एक लड़के ने झपट कर साली साहिबा से हंसिया छीन ली और उसे लेकर वह मेरे पीछे यह कहता हुआ दौड़ा—"जीजा जी सूपनखा बनिए, मैं आपकी नाक काटूँगा।"

फिर क्या था? लड़कों की फौज मुझ पर टूट पड़ी। सभी मेरी नाक काटने के जोश में आ गए। इन लोगों से पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया। मैं सर पर पाँव रख के भागा, मगर इन आफत के परकालों ने मुझे खाली घर ही में नहीं दौड़ाया, बल्कि सारे मुहल्ले में मुझे दौड़ा-दौड़ा कर मार डाला!!

५

रात के नौ बजे जब लड़के सो गए, तब जाकर मेरी जान बची और दिल में चैन आया। नहीं तो उन लोगों का कौन ठिकाना था? जोश में अन्धे थे ही, जहाँ जरा मौका पाते, वहाँ धड़ से मेरी नाक पर हाथ फेर देते। इसी लिए खाना खाते वक्त भी एक हाथ से मैं अपनी नाक पकड़े ही रहा। खैर, किसी तरह उनसे छुट्टी मिली। घण्टा भर खाली हाँफने में लग गया। दिन भर की घुड़दौड़ में सांस फूल गई थी और दिल अब भी धड़क रहा था। इसके बाद डेढ़ घण्टे तक अपना सिंगार-पटार करता रहा, क्योंकि श्रीमती जी से मिलना था। बरसों एड़ियां रगड़ने के बाद जिन्दगी में यह पहली मुलाकात नसीब हुई थी, जिसमें मुद्दतों के क्या, पुश्तहा-पुश्त के अरमान निकलने वाले थे। इसलिए कम से कम तीन दफा उल्टी दाढ़ी बनाना, 'पोमेड' से बालों को चिपकाना, चेहरे पर कस-कस के 'हेजलीन स्नो' मलना जरूरी थे ही। मगर जब कपड़े पहनने की बारी आई, तो अक्ल गुम हो गई। समझ में नहीं आता था कि इस मौके पर क्या पहनाना चाहिए। अचकन-पाजामा या कोट पतलून? यह

बात साथियों से भी पूछना भूल गया था। इसलिए दिमाग पर बहुत जोर देना पड़ा। खैर, इत्तिफाक से प्रोफेसर साहब की यह चेतावनी कि "लेडियों" के सामने हमेशा "टिपटाप फैशन" से जाना चाहिए, याद आ गई, और फैशन अङ्गरेजी पोशाक ही में होता है। फिर क्या, मुश्किल आसान हो गई। मैंने झट कोट-पतलून चढ़ा कर ओवरकोट भी डाल लिया और उस पर लगाया टोप। इतने में बैठक में नौकरानी फट पड़ी!

नौकरानी—"क्यों बाबू जी! आज आप सोने न जायँगे? अरे! आप तो कहीं जा रहे हैं?"

मैं—"नहीं तो।"

नौकरानी—"तब इतनी रात को चारजामा काहे को कसे हुए हैं?"

मैं—"वाह! यह भलेमानुसों की पोशाक है। इसे तू चारजामा कहती है?"

नौकरानी—"अच्छा तो मेहरबानी करके इसे झटपट उतारिए, नहीं तो सरकार को जगा कर कहे देती हूँ कि जमाई बाबू ठेठर देखने जा रहे हैं।"

मै—"अरे नहीं; कहीं ऐसा गजब भी न करना।"

नौकरानी—"तो उतारते क्यों नहीं?"

मैं—"समझती तो हो नहीं। मिलने के लिए यही पोशाक ठीक है।"

नौकरानी ने घबड़ा कर पूछा—"अरे! तो आप किससे मिलने जा रहे हैं? और आधी रात को? वाह रे आपका सउक! मैं पहले ही जान गई थी। बस, अब कपड़े उतारिए और चुपके से कोठे पर जाकर सो रहिए। सबेरे जिससे मिलना होगा उससे मिलिएगा, इस बखत नहीं।"

सबेरे मिलने का नाम सुन कर मैं सन्न हो गया। मैंने बौखला कर कहा –"क्यों? इस वक्त क्यों नहीं?"

नौकरानी—"नहीं मानते तो यहीं से चिल्ला कर सरकार को बुलाती हूँ।"

क्या करता ? चुपचाप कपड़े उतारना ही पड़ा। जब इस वक्त उनसे मिलना ही नहीं था, तो इस ठाट-बाट से क्या फायदा था ? हाय ! सारी शान मिट्टी में मिल गई। सब मनसूबे चूल्हे में चले गए। एक हाथ से हैट उतार कर "हलो ! गुड इवनिङ्ग मैडम" कहते हुए उनसे हाथ मिलाने का सारा शौक चौपट हो गया। मैं अधमरा मुर्दा-सा खाली धोती और कमीज पहने नौकरानी के पीछे चला।

बैठक से आँगन का रास्ता था। भीतर पहुँच कर देखा, चारों तरफ सन्नाटा छाया हुआ है ; जिससे मालूम हुआ कि सब लोग सो गए हैं। दिन में जिस कमरे से श्रीमती जी झांक रही थीं उसके किवाड़ खुले हुए थे। मगर कम्बख्त नौकरानी मुझे उस तरफ नहीं ले गई, बल्कि बीच ही में जीने के पास खड़ी होकर बोली—"बस आप कोठे पर चले जाइए।"

मैं—"कोठे पर क्या करने जाऊँ ?"

नौकरानी—"तब क्या रात भर यहाँ पहरा दीजिएगा ? बिछावन तो आपका कहाँ लगा हुआ है।"

मैंने श्रीमती जी के कमरे की तरफ एक ललचाई हुई नजर से देखा और एक आह खींची।

नौकरानी—"अरे ! आप तो खड़े खड़े फुफकारते हैं ! क्या कोठे पर अकेले जाते डर लगता है, या आप चाहते हैं कि कोई आकर आपको हाथ पकड़ कर ले जाय ? नहीं कहिए तो मैं वहाँ तक भी पहुँचा आऊँ।"

मैं—"नहीं-नहीं-नहीं ! मैं चला जाऊँगा।"

किसी तरह बला टली और नौकरानी से पीछा छूटा। मगर मैं दो-चार सीढ़ियों ही पर चढ़ कर अटक गया। लाख ऊपर जाने की कोशिशें करता था, मगर दिल मुझे नीचे की तरफ ढकेल रहा था।

क्योंकि नीचे श्रीमती जी के कमरे का द्वार खुला देखकर हर कदम पर यही जी चाहता था कि लौट पड़ूं और इस हरामजादी नौकरानी की आँखों में धूल झोंक कर या इसके मुँह में कपड़ा ठूँस कर उनके कमरे में घुस जाऊं! मैं तो सिर्फ उन्हीं से मिलने आया था, कुछ ससुराल में टाँग पसार कर सोने के लिए नहीं। इसलिए बिना उनसे दो-दो बातें किए मेरे लिए ऊपर जाकर सोना मानों चिता पर चढ़कर पड़ा रहना था। सारी रात नींद हराम हो जाती और कोठे पर पहुँच कर फिर वहां से इस जाड़े-पाले की रात में चोर की तरह उनसे मिलने के लिए उतरना किसी भलेमानुस का काम न था। आखिर दिल के इस भीतरी धक्कमधुक्का में मेरी कोशिशों के पैर उखड़ गए और मैं अपने जूते हाथ में लिए चुपके से नीचे उतर आया और दबे पाँव श्रीमती जी के कमरे की तरफ बढ़ा; क्योंकि उस वक्त अन्धेरे में खड़े होकर दूर से देख लिया था कि नौकरानी ने अपने सोने के लिए रसोई-घर के भीतर जाकर भड़ से दरवाजा बन्द कर लिया है।

मगर उनके द्वार तक पहुँचते ही मेरे हाथ-पाँव फूल गए। दिल बड़े जोरों से धड़कने लगा। साँस उल्टी चलने लगी। कई दफे जी कड़ा करके दरवाजा ठेलना चाहा, मगर हाथ न उठा। एक तो पोशाक ठीक नहीं, उस पर छिपे चोरी की मुलाकात और तीसरे यह धड़का कि कोई मुझे देखता न हो। बस, मैं घबड़ा उठा और दुम दबा कर बैठक में हो रहा। मैं तो समझे हुए था कि निहायत शान से ऐंठता हुआ ससुराल में श्रीमती जी के पास मुझे जाने को मिलेगा। मुझे क्या खबर थी कि यहां वाले ऐसे बेवकूफ होंगे कि उन्हें पाताल में रख कर और मुझे आकाश पर अटकाने का इन्तजाम करके मेरा बना-बनाया सारा प्रोग्राम ही उलट देंगे? ऐसी हालत में घबराहट तो खामखाही पैदा होती।

बड़ी देर तक आराम-कुर्सी पर लेटा हुआ अपने चित्त को शान्त करता रहा। एकाएक मुझे ख्याल आया कि इस साल जब मैं पहले-

पहल अपने कालेज के ड्रामे में 'स्टेज' पर निकलने जा रहा था, तब ठीक यही मेरी दशा हो गई थी। उस वक्त 'स्टेज-मैनेजर' ने चट मुझे ब्राण्डी का एक घूँट देकर मेरी हालत संभाल दी थी और तब मैं बड़े मजे से अपना पार्ट करने लगा था। ईश्वर भला करे मेरे दोस्तों का, जिनकी सलाह से श्रीमती जी के संग चुप-चाप पीने-पिलाने के लिए एक शीशी में ब्राण्डी भी खास तौर से मैंने अपने साथ रख ली थी। उन लोगों ने बहुत जोर देकर कहा था कि यह अमृत ऐसी ही आनन्द की घड़ियों के दे, लिए क्योंकि इससे मर्दों की झिझक मिटती है और औरतों को शर्म खुल जाती है। फिर तो प्रेमालाप के मजे का क्या पूछना—दो-चार गुना नहीं, डेढ़-दो सौ गुना ज्यादा बढ़ जाता है। खैर, प्रेमालाप की जब नौबत आती, तब देखा जाता। मगर इस वक्त तो मुझे अपनी घबड़ाहट दूर करने की पड़ी थी। इसलिए ट्रङ्क से शीशी निकाल कर अपने मुँह में उड़ेल दी।

मुँह पर से हाथ हटाना भूल गया। सारी ब्राण्डी पेट के भीतर पहुंच गई। खोपड़ी भिन्ना उठी, दिमाग चकरा गया, कमरा नाचने लगा। दिल में वह जोश समा गया कि मालूम हुआ दुनियाँ का बादशाह मैं ही हूँ। फिर कैसा डर और कैसी घबड़ाहट? शेर की तरह अकड़कता और हाथी की तरह झूमता-झामता बेखटके श्रीमती जी के कमरे में दाखिल हो गया। देखा, आप मजे में सर से रजाई ताने खर्राटे भर रही हैं। अगर मुझमें ब्राण्डी का जोर न होता, तो रात भर योंही खड़ा रह जाता और उन्हें जगाने की मेरी कभी हिम्मत ही नहीं पड़ सकती थी; मगर यहाँ कमहिम्मती का सवाल अब भला कहाँ था? उस पर ठहरा बरसों का प्यासा। बस, चट उनकी रजाई जरा-सी उठा कर गड़ाप से उसके भीतर घुस गया। मगर वैसे ही उसके अन्दर बड़े जोरों की छटपटाहट के साथ एक अजीब तरह की घिग्घी बधी हुई चिल्लाहट की आवाज गूँज उठी। मैंने तुरत सर के नीचे से तकिया खींच कर उनके मुँह को दबा दिया। ऐसा करने में

रजाई उनके बदन पर से कुछ सरकी और उस पर लम्प की रोशनी पड़ी, तो हाय ! हाय ! मेरी दोनों आँखें एकदम बाहर निकल पड़ीं, सारा नशा हिरन हो गया। मुझे कहीं भागने या मुँह छिपाने की जगह न मिली। इसलिए जन से लुढ़क कर मैं चारपाई के नीचे दबक रहा जितना ही ऊपर ससुर जी चिल्लाते थे, उतना ही नीचे मेरा होश गुम होता जाता था। खैरियत इतनी ही थी कि वह डर के मारे खाली गो गो करके रह जाते थे। आवाज साफ या जोर से नहीं निकल पाती थी, फिर भी सास साहिबा न जाने कहाँ से "क्या हुआ ? क्या हुआ ?" कहती हुई आ ही गईं।

ससुर जी किसी तरह हाँफ कर कहने लगे—"मे-मे-मे-मे.... ।"

सास जी—"खाली मेमियाते हो या मुँह से कुछ कहोगे भी ? बोलो क्या हुआ—क्या ?"

ससुर जी ने कई दफे की कोशिशों के बाद कहा—"मे-मे मेरे ऊपर को-को-कोई आदमी चढ़ बैठा।"

सास जी—"भला यहाँ आदमी कहाँ ? मैं जान गई, उस दिन की तरह तुम फिर आज भी चौंक पड़े। इसीलिए जब कहती हूं कि तुम मेरे कमरे में सोया करो, तब तो कहते हो कि बच्चों की चिल्ल-पों के मारे वहाँ नींद नहीं आती। उसी का मजा है। लो उठो यहाँ से चलो।"

ससुर जी—"नहीं-नहीं मैं सचमुच कहता हूं, कोई आदमी था।"

सास जी—"हाँ हाँ, स्वप्न में देखा होगा।"

ससुर जी—"स्वप्न में नहीं..... ।"

सास जी—"आहा ! समझ गई, बिल्ली कूदी होगी।"

ससुर जी—"म-म-मगर बिल्ली इतनी बड़ी कैसे हो सकती है ?"

सास जी—"चुप भी रहो। कहीं आवाज कोठे पर पहुँचेगी तो बच्ची घबड़ा कर उतर पड़ेगी और फिर वह रो-रो कर आसमान-जमीन एक कर देगी। जानते हो वह जरा ही में कितना घबड़ा उठती

है और खासकर तुम्हारा जहाँ जरा सा भी सर दुखता है, वहाँ उसका दम निकलने लगता है।"

हाय! हाय! बच्ची का कोठे पर होना जान कर मैं तो और बेमौत मर गया; क्योंकि यहाँ बच्ची वही कहलाती थीं, जिनसे मिलने की खातिर मैं इस मुसीबत में फँसा था। जब वह कोठे पर थीं, तब उस हरामजादी नौकरानी ने "इस वक्त मिलना नहीं हो सकता" कह कर मेरे कपड़े क्यों उतरवा दिए? मैं कोई ज्योतिष तो पढ़े नहीं था कि दिन में उन्हें इस कमरे में देखकर समझ जाता कि वह इस वक्त यहाँ नहीं, बल्कि कोठे पर होगी? उस पर उस उल्लू की पट्ठी नौकरानी की दुम ने मुझे इस बात का कुछ इशारा भी नहीं दिया, वरना मैं सीढ़ियों पर से लौट कर इस जञ्जाल में पड़ता ही क्यों?

ससुर जी ने सास जी को अपनी बात का विश्वास दिलाने के लिए फिर कहा—"कहना मानो, वह बिल्ली नहीं थी। वह बहुत बड़ा था।"

सास जी—"अच्छा, तो बिल्ला होगा; मगर हाथ जोड़ती हूं, इतना शोर न मचाओ। देखो, आज दामाद आया हुआ है; इसका तो कुछ ख्याल करो। खैरियत इतना ही है कि वह इस वक्त कोठे पर सो रहा है। कहीं वह जग पड़ेगा, तो सारी इज्जत किरकिरी हो जायगी, वह अपने दिल में यही कहेगा कि इनके यहाँ आधी रात को अच्छा तमाशा हुआ करता है। आओ, उठो चलो यहाँ से, नहीं फिर कहीं चूहा भी खटकेगा, तो तुम योंही आसमान सर पर उठाने लगोगे।"

सास साहिबा अगर लालटेन लेकर चारपाई के नीचे झाँकती तब तो उन्हें पता चलता कि उनके दामाद साहब कोठे पर आराम कर रहे हैं या यहाँ सिकुड़े हुए राम का नाम ले रहे हैं। खैर! ईश्वर ने बड़ी मेहरबानी की कि सास जी की बात ससुर जी किसी तरह मान गए, और वह रजाई ओढ़े हाथ में लालटेन लिए कमरे से निकल खड़े हुए। उसके बाद सास साहिबा भी चट उनका बिस्तरा लेकर बाहर

हुईं। मेरा धड़कता हुआ दिल एकाएक मारे खुशी के नाच उठा! क्योंकि इस तरह मैदान खाली हो जाने से मुझे लुक-छिप कर कोठे पर अपनी श्रीमती जी के पास पहुंच जाने की फिर उम्मीद हो गई। मगर हाय! गजब! सास जी की अक्ल पर पत्थर पड़े कि वह जाते वक्त कमरे का दरवाजा बन्द करके बाहर से कुण्डी लगाती गईं और मुझे इस कलेजा दहलाने वाले जाड़े में बिना ओढ़ना और बिछावन के रात भर ऐंठने के लिए इस काल कोठरी में बन्द क्या कर गईं, गोया वह मुझे जीते ही कब्र में गाड़ गईं। हत् तेरे सास की! तुमसे ईश्वर समझे!!

६

ईश्वर न करे, किसी भलेमानुस को मेरी तरह ससुराल में रहना नसीब हो। उस पर सर्दी भी कम्बख्त उस दिन ऐसे कड़ाके की पड़ रही थी कि रात भर थर-थर काँपता और कटाकट दाँत खटखटाता न रहता तो इसमें शक नहीं मैं एकदम जम कर बर्फ हो गया होता। जब जाड़े के मारे बदन बहुत कटने लगता था, तब मैं डण्ड पेलना शुरू कर देता था। इसी तरह कभी सिकुड़ कर गेंद बनते और कभी फैल कर डण्ड पेलते मेरी सारी रात कटी। कसम खाकर कहता हूं कि इतनी कसरत किसी पहलवान ने अपनी जिन्दगी भर में भी न की होगी, जितनी एक ही रात में उस काल-कोठरी के भीतर मुझे दनादन-दनादन करनी पड़ी।

सारा बदन फोड़ा-सा दुखने लगा। हाथ उठाने तक का दम नहीं रह गया। तब जमीन ही पर पड़े-पड़े पेट के नीचे हाथ-पैर समेट कर मेढक बन गया। कितनी देर में सुबह होगी, उस बन्द कमरे की अँधियाली में कुछ भी पता नहीं चलता था। इससे और ऊब-ऊब कर मैं मरा जा रहा था। उस पर यह शङ्का कि कहीं सुबह को भी यह कमरा न खुला तब क्या होगा—मेरी जान अलग सुखाए हुए थी। खैर! राम-राम करके मकान में बच्चों की खांसी कुनमुनाहट



तब ज़मीन ही पर पड़े-पड़े पेट के नीचे हाथ-पैर समेट कर मेंढक बन गया।

[पृष्ठ ८०]

*

सुबह का झुटपुटा हो रहा था। फिर भी बाहर काफी अँधेरा था। सभी कमरों के किवाड़ भिड़े हुए थे। अभी जीने के पास आया भी नहीं था। इरादा था किसी तरह इस वक्त भी श्रीमती जी के पास पहुँच जाऊँ तो कम से कम एक नजर से इन्हें जी भर के देख लेने से मेरा रात भर का ठिठुरा हुआ दिल कुछ तो गरम हो जायगा। मगर इतने में वह कम्बख्त नौकरानी आँगन में न जाने क्यों चिल्ला उठी—"ओ बहू जी, सरकार की कोठरी में तो कुत्ता बन्द था। धुत्! धुत्! धुत्! हाय! हाय! कोई डण्डा भी नहीं मिल रहा है। अरे! निगोड़ा जीने की तरफ जा रहा है। ओ बच्ची! अरी ओ बच्ची! कुत्ता कोठे पर जाता है। मारो-मारो। मैं भी डण्डा लिए आती हूँ।"

यह कह कर उस उल्लू की पट्ठी ने मेरी तरफ एक चैला खींच कर फेंका। जानवर ही निशाना बचाना जानते हैं। आदमियों में भला इतनी फुर्ती कहाँ? उस पर वह ठहरी पक्की निशानेबाज जिसका पता अब मिला। खैर, इसके लिए मुझे ज्यादे अफसोस करने की जरूरत न थी। क्योंकि मुझे असल में गम था तो यह था कि इस हरामजादी ने न मुझे नीचे रुकने लायक रक्खा और न ऊपर ही जाने लायक। मैं गड़बड़ा कर प्राण बचाने की खातिर सीढ़ियों पर उचक कर हो रहा और वहीं दबक कर खड़ा हो गया। इतने में वह कम्बख्त नोकरानी डण्डा लेकर मेरे सर पर पहुँच ही गई।

नौकरानी—"अरे! आप? कुत्ता कहाँ गया? क्या आपने मारा नहीं?"

मैं—"क्या? हाँ, मारा क्यों नहीं? खूब मारा।"

नौकरानी—"वाह! मारा क्या होगा? डण्डा लेकर तो आप उतरे ही नहीं। किधर गया, किधर?"

मैं—"नहीं, ठोकर से उस साले को ऐसा मारा कि साला लगढ़ाता हुआ एकदम दोमञ्जिले की छत पर भाग गया।"

नौकरानी—"तो क्या कुत्ता नहीं, बन्दर था?"



नौकरानी—"अरे! आप! कुत्ता कहाँ गया?
क्या आपने मारा नहीं?

[पृष्ठ ८२]

*

मैं—"हाँ-हाँ, ठीक कहा, बन्दर था बन्दर, और साला बड़ा मोटा-ताजा था।"

मैं किसी तरह जान छुड़ाकर जल्दी से बैठक में हो रहा। क्योंकि उसी वक्त ऊपर से किसी के आने की आहट मालूम हुई और नीचे भी कमरों के दरवाजे खुलने लगे थे।

दिन भर बन्दर के चर्चे का बाजार खूब गरम रहा। सास जो ने देवी-देवताओं को परसाद चढ़ाया और सत्यनारायण की कथा मानी, इसलिए कि ससुर जी बाल-बाल बच गए—बन्दर ने उनका रात को मुँह नहीं नोचा। और ससुर जी का क्या कहना था? जितनी दफे वह आँगन में आते थे, उतनी दफे सबको सुना-सुना कर सास जी से कहते थे—देखा, आखिर मेरी बात सच निकली न? मैंने झूठ थोड़े ही कहा था कि मुझ पर कोई आदमी चढ़ बैठा? अरे यह बन्दर साले आदमी के भी लकड़दादा कहलाते हैं।

खाना खाते वक्त भी ससुर जी ने यही बात कही। और मेरी तरफ देख कर बोले—"क्यों भइया, ठीक है न? तुमने तो डार्विन (Darwin) साहब की राय (Theory) पढ़ी होगी, जिसमें उन्होंने साबित कर दिया है कि आदमी बन्दर हो से पैदा हुए हैं।"

मैंने सर झुका कर धीरे कहा—"जी हाँ।"

ससुर जी—"तभी तो आदमी और बन्दर में तुम्हीं बताओ कोई फर्क मालूम होता है?"

मैं—"कुछ भी नहीं।"

ससुर जी—"और खासकर वह साला तो हूबहू आदमी के ऐसा था। था न? तुमने तो उसे जीने पर अच्छी तरह से देखा होगा?"

खाना खाना हराम हो गया। मैं बिना कुछ बोले-चाले चौके से उठ आया। ऐसी ससुराल की ऐसी-तैसी; जहाँ न पेट भर खाने को मिले, न रात भर सोने को। जहाँ आते ही नाक काटे जाने की फिक्र हो। उसके बाद, बिल्ली-बिल्ला और कुत्ता बन कर चैले से मार खाना

पड़े। और आखिर में बन्दर कहला कर खुद ही डार्विन साहब की राय से सहमत होने के लिए मजबूर भी किया जावे। वाह री यहाँ वालों की अक्ल! यह इन लोगों की खाली बेवकूफी ही नहीं, बल्कि सख्त बदतमीजी थी। फिर भी यह सब आफतें श्रीमती जी की खातिर बिना कुछ चीं-चपड़ किए मैं झेलने के लिए विवश था। नहीं तो हाँ.....!

७

अजब बांगडू मुल्क हिन्दुस्तान है, जहाँ ससुराल में दामाद से ठठोली करने के लिए ऐरी-गैरी पचकल्यानियां, महल्ले भर का तमाम कूड़ा-करकट तो फट पड़ें, मगर दामादिन साहिबा दिन में मसाल लेकर ढूँढ़ने पर भी कहीं दिखाई न दें। इस बीमारी से हमारी श्रीमती जी भी बची न थीं, तभी तो भाई, पड़ोसी, नौकर-चाकर, असियारा-घसियारा किसी से भी उनको भड़क न थी। और भड़क हुई भी तो किससे? सिर्फ अपने ही मर्द से; क्योंकि जब ही मैं आँगन में जाता था, तभी वह भाग कर कोठरी में हो रहती थीं। आखिर उनकी यह कौन सी बदतमीजी थी? मैं तो उन्हीं की खातिर, इतनी तैयारी के साथ आया और वह मुझसे यूं मुंह चुराएं कि सारा दिन सर पटकने पर एक बार भी उनकी परछाहीं तक न देख सका? हमारे ससुराल वाले भी ऐसे गावदी थे कि उनकी इस आदत को छुड़ाने की कोई फिक्र न की। जब उनको मुझसे इस तरह परहेज करना था, तो उन लोगों ने उनकी मुझसे शादी क्यों की? यह आज तक मेरी समझ में नहीं आया।

खुद तो ये लोग बेवकूफ थे ही, उस पर घर में नौकरानी भी रक्खी तो छांट कर अपनी ही तरह पल्ले सिरे की बेवकूफ। तभी तो जैसे ही मैं आठ बजे रात को खाना खाकर बनने-संवरने बैठक में आया, वैसे ही वह उल्लू की दुम मेरे सर पर सवार गई। बैठक में उस वक्त कोई नहीं था। मेरा सामान बैठक की बगल वाली



ससुर जी "और खास कर वह साला तो हूबहू
आदमी जैसा था—था न ?"

कोठरी में था। मैं उसी में बैठा हुआ अपना ट्रङ्क खोल कर श्रीमती जी से मिलने के मन्सूबों में अपने बनाव-चुनाव की फिक्र में था। क्योंकि अब तो मुझे मालूम ही हो गया था कि रात में वह कोठे पर रहती हैं और आज वहां जाने में किसी तरह की मुझे बाधा नहीं पड़ सकती। मगर वह कम्बख्त नौकरानी उस कमरे के द्वार पर खड़ी होकर भीतर चलने के लिए अभी से आफत मचाए हुए थी।

नौकरानी—"मैं कब तक आपके आसरे खड़ी रहूं। जल्दी चलिए!"

मैं—"तुम जाओ अपना काम करो। मैं थोड़ी देर में आता हूँ।"

नौकरानी—"यह चकमा रहने दीजिए। जैसे कल आप आँखों में धूल झोंक कर चुपके से ठेठर देखने निकल गए थे, वैसे ही आज फिर चल देंगे।"

मैं—"अरे! कल कौन थिएटर देखने गया था?"

नौकरानी—"बहाना न कीजिए। बच्ची से मुझे मालूम हो चुका है कि आप कल रात भर यहाँ नहीं थे। जब आप यहाँ नहीं थे, तब आप गए कहाँ होंगे? बस ठेठर ही देखने तो। उस बेचारी ने लाज के मारे किसी से कहा भी नहीं, नहीं तो बाबू जी! रात-रात भर घूमने का मजा मालूम होता। भला इस तरह से भी कोई चुपके से धोखा देकर रात में बाहर जाता है? दरवज्जा जरूर आप खुला छोड़ गए होंगे। आप ही ने आकर उसे बन्द भी किया होगा। इस बीच में कोई घुस कर घर लूट ले जाता, तब क्या होता.....?"

मैंने देखा कि मेरी कल रात की दुर्गत पर ईश्वर की दया से आप से आप एक पर्दा पड़ गया है तब तो उसे अच्छी तरह से ढकने के लिए मैं झट बोल उठा—"मगर मैं थिएटर नहीं सरकस देखने गया था। बड़ी लाजवाब कसरत का तमाशा था। और रात भर होता रहा।"

नौकरानी—"आग लगे ऐसे तमाशे में। अच्छा झटपट अब कमरे से निकलिए। मैं इसमें ताला लगाऊँगी।"

मैं—"क्यों? ताला क्यों लगाओगी?"

नौकरानी—"कहीं फिर न आप कोठे से चुपचाप उतरें और कपड़े पहन कर चलते बनें। आपका कौन ठीक ?"

मैंने लाख-लाख कहा कि आज मैं कहीं नहीं जाऊँगा, मगर उसने मेरी एक नहीं सुनीं। बल्कि मेरे हाथ से पतलून, टाई, कालर, टोप, जो मैं कोठे पर चल कर पहनने के लिए जा रहा था, छीन कर अलग फेंक दिया और मुझे बाहर करके उसने कमरे में ताला बन्द कर दिया। यही खैरियत हुई कि मैं कोट पहने हुए था, उसे उनसे नहीं उतरवाया, वरना दो एक बहुत ज़रूरी चीज़ें जो मैंने उसकी जेब में रख ली थीं, उनसे भी उस वक्त हाथ धोना पड़ता। मैंने कोठे पर पहुँच कर कहा—"मगर यहाँ तो वह नहीं है।"

नौकरानी—"वह कौन ?"

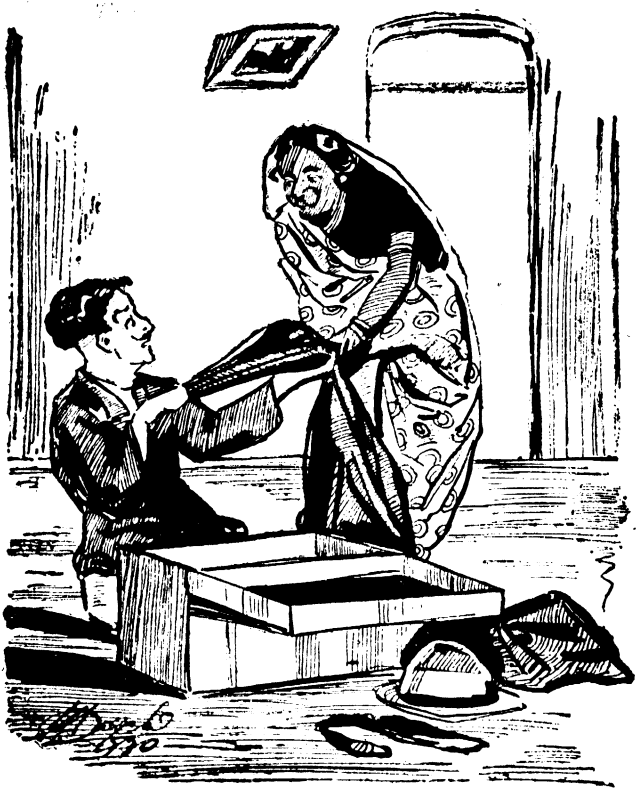
मैं—"अरे ! वही ! वही ! वही क्या नाम के....."

नौकरानी ने मुस्करा कर पूछा—"आप तो अच्छा बुझौवल बुझाने लगे। बच्ची को तो नहीं कहते हैं ?"

मैं—"हाँ-हाँ, उन्हीं को—उन्हीं को।"

नौकरानी—"तो अभी वह यहाँ कहाँ हो सकती हैं ? घर में और काम-धन्धा नहीं है ? क्या आपके यहाँ बहू-बेटी सवा-साँझ ही से घर में घुस के बैठ जाती हैं ? बाबू जी यहाँ, ऐसी उलटी चाल नहीं है कि घर के बड़े-बूढ़े जागते रहें और लड़कियाँ सोने चली जायँ। यह भलेमानुसों का घर है। आप घबड़ाये क्यों जाते हैं ? कल रात भर आपने उनको आसरा दिखाया था, आज कम से कम आधी राती तक आप भी तो उनका आसरा देखें।"

इतनी लेक्चर देकर वह भाग खड़ी हुई, नहीं तो मैं फौरन बहस करके साबित कर देता कि यह भलेमानुस नहीं, बल्कि बिलकुल बेहूदा घर है। जहाँ के लोगों को अपनी लड़कियों की तन्दुरुस्ती का भी ख्याल नहीं है, जो उन्हें आधी-आधी रात तक काम में फँसाए रखते हैं। अगर बड़े-बूढ़े रात भर न सोवें तो क्या उनके साथ बेचारी



नौकरानी ने मेरे हाथ से पतलून, टाई, कॉलर और टोप, जो
मैं कोठे पर चल कर पहनने के लिए ले जा रहा
था, छीन कर अलग फेंक दिए !

[पृष्ठ ८६]

लड़कियां भी जागती रहें ? पत्थर पड़े इन लोगों की इस उलटी समझ पर।

श्रीमती जी के कमरे की सजावट देख कर मैं कुछ बौखला सा गया। मैं सोचने लगा कि जिसका सोने का कमरा इतने ठाट-बाट का हो, वह खुद कितनी बड़ी शौकीन होगी। फिर ऐसी फैशनेबिल लेडी के सामने मैं खाली धोती और कोट पहने कितना गँवार मालूम होऊँगा। और इस धजा में मेरी कैसे जबान खुलेगी। कम्बख्त नोकरानी ने मुझे पतलून भी लाने नहीं दिया। वरना तब झट से मैं भी सूट, बूट और हैट लगा कर इस वक्त कुर्सी पर अकड़ कर बैठ जाता। क्योंकि भाई, पोशाक ही में अकड़ होती है। जहां साहबी पोशाक डाट लीजिए, तहां बदन में आप से आप ऐंठ आ जाती है। यहां तक कि बोली भी बदल जाती है। तभी तो लोग टोप लगाते ही 'तुम' के बदले 'टुम' कहने लगते हैं। मगर यहां अकड़ किस विरते पर होती ? अकड़ने वाली पोशाक तो बैठक वाली कोठरी ही में बन्द हो गई थी। इसलिए वहाँ बैठे-बैठे मेरी रही-सही हिम्मत पिघलने लगी। शीशी की 'ब्राण्डी' भी खतम हो चुकी थी, नहीं तो वही कुछ इसकी रोक-थाम करती। खैर ! उसकी जगह पर मैंने जेब में 'विवाहित पुरुष-जीवन' की एक डिब्बी रख ली थी। जब तबियत में बहुत हौलदिली सामने लगी, तब उसमें से एक गोली निकाल कर मैं निगल गया। क्योंकि मेरे विवाहित दोस्त लोग इस दवा को अक्सर मँगाते थे और तारीफ करते थे कि इसकी एक-एक गोली में एक-एक हाथी की ऐसी शक्ति होती है और इससे अक्ल दुरुस्त रहती है। इसलिए इसे हर विवाहित पुरुष को सेवन करना चाहिए। उन्हीं लोगों की देखा-देखी मैंने भी चुपके से इसकी एक डिब्बी मँगवाई थी। मगर भेजने वाले ने मेरी तकदीर से उसी दाम में एक के बदले दो डब्बियाँ भेज दी थीं। एक में तीस गोलियां थीं और दूसरे में चार। मैं छोटी डिब्बी इस वक्त अपने साथ लाया था, जिसमें चार गोलियाँ थीं। क्योंकि

मुझे हाथी बनना तो था नहीं, सिर्फ़ अपनी अक्ल जरा ठिकाने लगाना था और इसके लिए इतनी ही बहुत काफी समझी।

मैं समझे हुए था कि जैसे, 'ब्राण्डी' का घूँट पीते ही तबीयत मजे में आकर सारी घबड़ाहट दूर हो जाती है, वैसा ही कुछ असर इन गोलियों में भी होगा। मगर एक गोली से कुछ फायदा न जान पड़ा। मेरी तबियत ज्यों की त्यों मरी सी रही और मेरी घबड़ाहट वैसी ही बनी रही। तब दूसरी गोली मुँह में डाली, उसके बाद तीसरी और अन्त में चौथी भी गटक गया। मगर अफ़सोस! दिमाग में कुछ भी सरूर न गॅठा।

आखिर झख मार कर मैं पलंग पर लेट गया और तबीयत को और ढङ्ग से मजे में लाने की फिक्र की। इसके लिए श्रीमती जी से कहने के वास्ते एक से एक बढ़िया शेर सोचने लगा। ताकि मेरी पोशाक का भद्दापन मेरी रसीली बातों की खूबी से छिप कर उनकी निगाहों में न खटके और मैं भी शायराना ख्याल में ऐसा मस्त हो जाऊं कि झिझक और घबड़ाहट मेरे दिल से दूर हो जाए। एकाएक मौके का एक शेर याद आते ही मैं फड़क उठा—

मुफ्त में लिल्लाह अब तकरार रहने दीजिए!
हँस दिए, बस हो चुका, इनकार रहने दीजिए!!

आ हा हा! क्या बोल-चाल है! जिस समय श्रीमती जी मेरी ओर नखरे से कटाक्ष फेंक कर रूठेंगी और फिर आप ही मुस्कराती हुई शर्माएँगी, उस वक्त मेरे कहने के लिए यह कितना उम्दा शेर है। यही सोच सोच कर मेरी बाछें खिली पड़ती थीं और मैं बार बार इसी को पढ़-पढ़ कर मुग्ध हो रहा था कि एकाएक मेरा पेट बड़े जोरों से गड़बड़ा उठा। सब शायरी-वायरी भुस में मिल गई और मैं हड़-बड़ा कर नीचे भागा।

मैं नौकरानी के सामने से लालटेन लेकर भीतर के पाखाने में जाने लगा, त्यों ही वह बोल उठी—"क्या बाबू जी, आज आप बहुत खा गये?"



मगर अभी बूँद-बूँद पानी टपक रहा था, किसी तरह
घण्टों में जाकर कहीं लोटा भरा।

[पृष्ठ ८९]

जब तक मैं पाखाने में था, तब तक वह पास ही आँगन में बर्तन माँजती हुई, मुझ पर बराबर बोलियाँ कसती जाती थी। कभी कहती—"ससुरार का दाना मुस्किल से हजम होता है।" और कभी कहती—"अरे! हाँ, समझती हूँ, यह सब ठेठर जाने के लिए फरफन्द रचा जा रहा था। उतरे थे किसी और नियत से, मगर जब देखा कि देख लिए गए तो झट बाबू जी लोटा ले के गोल हो गए। ओ हो! इनकी माँ ने इन्हें कितना गुन सिखा दिया है।"

उसकी बड़बड़ाहट से मैं इतना परेशान हुआ कि उकता कर झट पाखाने से निकल पड़ा। इसीसे तबीयत साफ नहीं हुई, और जैसे ही कोठे पर आकर मैं पलँग पर बैठा, वैसे ही फिर मेरी वही हालत हो गई। खैरियत थी कि अभी तक श्रीमती जी ऊपर नहीं आई थीं। मगर नीचे नौकरानी की बड़बड़ाहट की डर से लालटेन लेने की इस दफे मेरी हिम्मत न पड़ी। इसलिए पाकेट में दिया सलाई रखकर दबे पैरों उतरा। छिप कर लोटा उठाया और नौकरानी की निगाह बचाता हुआ—क्योंकि यही अकेली आँगन में थी और घर वाले तो सब जाड़े के मारे कमरों में थे—मैं मर्दाने पाखाने में जाने के लिए चुपके से घर के बाहर हो गया।

मगर जब लौटा, तब घर का सदर दरवाजा बन्द मिला। बाहर खड़ा बड़ी देर तक सोचता रहा कि किसको पुकारूँ और किस तरह पुकारूँ। उस पर यह ख्याल और परेशान करने लगा कि मेरी बाहर आवाज सुनते ही नौकरानी सर पर आसमान उठा लेगी। इतने में मेरे पेट की गड़बड़ाहट फिर शुरू हुई। किसी तरह सब्र न हो सका, मैं दौड़ कर पानी की तलाश में सड़क पर बम्बे के पास गया। कम्बख्ती से दस बज चुके थे और वैसे ही नल बन्द हुआ था। मगर अभी बूंद-बूंद पानी टपक रहा था। किसी तरह घण्टों में जाकर कहीं लोटा भरा। उस वक्त मेरी ऐसी हालत हो रही थी कि अगर कोई मुझसे पूछता कि स्वर्ग कहाँ है, तो मैं बेधड़क कह देता—"बस पाखाने में, और कहीं भी नहीं।"

मैं पाखाने में बठा-बैठा सोच रहा था कि ससुरालवालों ने मुझे कौन सी ऐसी चीज खिला दी है, जो मेरे पेट में ऐसी बदहजमी मचाए हुए है। एकाएक ख्याल दवा की गोलियों पर गया। ट्रङ्क से उसकी डिब्बी निकालते वक्त उसके तरकीब इस्तेमाल का पर्चा भी जेब में रख लिया था। मगर उसको अब तक पढ़ा न था। क्योंकि गोली निगलने के लिए कौन सी बड़ी तरकीब जानने की जरूरत थी? खैर! अपने दिल के इतमीनान की खातिर दियासलाई जला-जलाकर उसे मैं पढ़ने लगाः—

".....यह बेइन्तहा ताकत की गोलियाँ हैं। इसलिए बहुत काबिज भी हैं। जो इनको रोजाना इस्तेमाल करे, उसको अपना मेदा साफ रखने के लिए हफ्ते में एक दफा जुलाब लेना जरूरी है। इसलिए जुलाब की चार गोलियाँ इस दवा के साथ अलग एक छोटी डिब्बी में भेजी जाती हैं, जो महीने भर के लिए काफी हैं—!"

इतना पढ़ते ही मेरे हाथ से कागज छूट गया और तब हाय! मैं कर्म ठोंक कर सारी रात वहीं का वहीं बैठा रह गया। क्योंकि एक नहीं, बाप रे बाप! चार चार जुलाब की गोलियाँ खाए था और पानी था मेरे पास सिर्फ एक ही लोटा, जिसका खर्च कर देना नल बन्द हो जाने के बाद अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारना था। ऐसी हालत में आप ही बताइए, पाखाने से मेरे लिए बाहर निकलना कितनी बड़ी बेवकूफी थी।

८

पाखाने से मैं सुबह को निकला, जब अच्छी तरह से इतमीनान हो गया कि बम्बे में अब पानी आ गया होगा; ताकि लोटे का पानी खर्च हो जाने के बाद पछता-पछता कर फिर मरना न पड़े। ईश्वर की दया से मेरा पेट अब ठीक हो गया था और मुझे फिर पानी की जरूरत न पड़ी। उस वक्त मकान का दरवाजा भी खुल चुका था और नौकरानी भीतर बरान्दे में झाड़ू दे रही थी। वह मुझे देख कर



नौकरानी चुपके से बोली—"क्यों बाबू जी, आज रात भर फिर आप ग़ायब रहे ?"

कुछ भी न बोली, क्योंकि वह यही समझी होगी कि दरवाजा खुलने पर बाबूजी बाहर गए होंगे। उसको इतनी अक्ल कहाँ थी जो मेरे हाथ में लोटा देखकर समझती कि हजरत रात के गये अब लौट रहे हैं ? तभी तो मैंने यह अक्लमन्दी की।

श्रीमती जी मेरी गैरहाजिरी की बात शायद सिर्फ नौकरानी ही से कहती थीं। इसलिए और तो घर में मुझसे किसी ने इस मामले पर पूछ-ताछ नहीं की। पर वह जब मुझे चाय देने आई तो चुपके से बोली—"क्यों बाबू जी, आज रात भर फिर आप गायब रहे ?"

मैं इसके लिए पहले ही से तैयार था, इसलिए मुँह फेर कर जवाब दिया—"कौन कहता है ?"

नौकरानी—"अभी बच्ची ही ने मुझ से बताया है।"

मैं—"झूठ कहती हो। वह हमारे मुँह पर कहें तब जानें।"

नौकरानी—"मैं काहे को झूठ कहूँगी। वही झूठ बोली होंगी। तभी तो मुझे विश्वास नहीं पड़ा था, क्योंकि आपके कपड़े तो मैं ही ताले में बन्द कर गई थी और वह अब तक बन्द हैं। आप रात में कहीं जाते तो कैसे जाते ? मगर जब वह किरिया खाने लगीं, तब तो मुझे बड़ा अचरज हुआ। इसलिए आप से पूछा।"

मैं—"अरे! औरतों की कसमों की भली कही। यह उल्लुओं ही को एतबार दिलाने के लिए होती हैं। अच्छा अब तो मेरे कमरे का ताला खोल दो।"

नौकरानी को विश्वास हो गया कि बच्ची ने झूठ बोलकर उसे उल्लू बनाया है। इसलिए वह ताला खोल कर बड़बड़ाती हुई चली गई कि वाह री बच्ची, मुझी से उड़ने लगीं ?

मगर अफसोस ! मेरी इस कूटनीति (Diplomacy) पर भी श्रीमती जी अपनी बात सच साबित करने के लिए न मेरे पास आईं और न मुझी को अपने पास बुलवाया। यहीं तक नहीं, बल्कि वह तो ऐसी जालिम निकलीं कि हाय ! मेरी तपस्या का भी कुछ ख्याल करके

दिन में एक बार भी मेरी निगाहों के सामने नहीं पड़ी। रात भर पाखाने में बैठा रहना, और जाड़े की रात में, ठट्ठा नहीं, पूरी तपस्या है जनाब ! और ऐसी कड़ी कि ऋषि-मुनियों ने भी मारे डर के कभी की न होगी। जो बात फरिश्ते तक नहीं कर सकते, वह भी तो मैंने उनके प्रेम में करके दिखला दी। फिर भी वह एक इञ्च भी न पिघलें तो मेरा क्या दोष ? उस दिन मैं दिन में भी हिम्मत करके एक दफे कोठे पर जाकर घण्टों बैठा रहा; इसी उम्मीद में कि यहाँ तो वह किसी न किसी काम से जरूर ही आएंगी और इस तरह उनके दर्शन मिल जायेंगे। मगर कम्बख्ती के मारे उसी दिन मेरा साला अपनी सबसे बड़ी बहिन को बिदा करा कर सुबह ही की गाड़ी से आ गया था। उन्हीं लोगों में श्रीमती जी ऐसी फंसी रहीं कि ऊपर झाँकने भी नहीं आईं। गाया वही लोग तो उनके सब कोई थे और मैं कोई भी नहीं।

रात को एक जगह दावत थी। मगर मैं चार ही बजे दिन को कोट-पतलून, चस्टर फील्ट और फेल्ट हैट पहन कर तैयार हो गया। दावात में जल्दी पहुँचने की खातिर नहीं, बल्कि श्रीमती जी को किसी तरह अपनी शान दिखाने के लिए। और शाम तक आँगन में एक न एक बहाना करके सैकड़ों चक्कर लगाता रहा, मगर उन्होंने किसी कमरे की खिड़की से भी मेरी तरफ एक दफा नहीं देखा। कितने अफसोस की बात है ?

साढ़े नौ बजे रात को जब मैं दावत से लौटा तो वैसे ही सीधे कोठे पर चला गया। ताकि वहीं नौकरानी से न मुठभेड़ हो जाय और वह हरामजादी मेरे कपड़े न उतरवा दे, और तब मेरी सारी अकड़ फिर ढीली हो जाय। उसी चुड़ैल के डर के मारे मैंने श्रीमती जी के कमरे का लम्प भी बुझा दिया। क्योंकि मुमकिन था कि वह कमरे में पानी वगैरह रखने के लिए आती और मुझे कपड़े पहने देख कर ऊधम मचाने लगती।

दो रातों का जगा था। दिन में भी सोने को नहीं मिला था, इसलिए कुर्सी पर बैठते ही मुझे झपकी आ गई। दावत में एक साहब ऐसे आए थे, जिनके यहाँ हाल ही में चोरों ने सेंध लगाई थी, मगर ईश्वर की दया से चोर मौके ही पर पकड़ लिए गए थे। उनसे इस घटना को सुन कर बड़ी देर तक वहां चोरों पर बात-चीत होती रही और उसी में कई आदमियों ने चोर पकड़ने की अपनी-अपनी बहादुरी भी बयान की थी। वही विषय इस समय मेरे दिमाग में गूँज रहा था और मुझे स्वप्न में हर तरफ चोर ही चोर दिखाई देने लगे। मुझे मालूम हुआ कि मैं अपने होस्टल के कमरे में पढ़ता-पढ़ता ऊँघ गया हूँ, सामने ही मेज पर मेरा चांदी का पानदान और सोने की घड़ी रक्खी है। इतने में चोर मुझे सोता हुआ जान कर मेरे कमरे में घुसा और चुपके से पानदान और घड़ी उठाई। मैंने लपक कर उसका हाथ पकड़ा। उसने झटक कर अपनी कलाई छुड़ा ली। इस झटके में मेरा हाथ लम्प से लगा। वह गिर कर बुझ गया.....।

मैं चौंक पड़ा। कुर्सी के साथ मेरे बदन के धक्के से छोटी मेज भी हिल गई। उस पर से लम्प के गिरने की आवाज झनाक से हुई। मेरी आँख खुल गई। मैं घबड़ा कर उठ खड़ा हुआ। अँधेरे में चोर पकड़ने की सारी बहादुरी रफूचक्कर हो गई। मेरे हवास गुम हो गए। मैं थर-थर काँपने लगा और किसी तरह प्राण लेकर उस अन्धकार-कूप से निकल भागने का इरादा किया। इतने में किसी से ठोकर लगी। कलेजा काँप गया। मगर जान पर खेल कर और जिन्दगी से हाथ धोकर उसको दोनों हाथों से गाँस लिया और उसे लिए-दिए धड़ाम से गिरा। वह मारा! कुछ झनकार सी हुई, जिससे पता चला कि चोर को मय माल के पकड़ लिया। फिर क्या था, झट मे उसकी छाती पर चढ़ बैठा और गला फाड़ कर एकबारगी चोर-चोर चिल्लाना शुरू कर दिया, ताकि जल्दी से मेरे साथी लोग आकर मेरी जवामर्दी का तमाशा देखें और चोर को पकड़ लें। मेरी चिल्लाहट पर एक

कोहराम मच गया। सब लोग लालटेन, लम्प, चिराग लिए बदहवास दौड़ पड़े और चारों तरफ से आकर मुझे घेर लिया। मैं मारे जोश के बकने लगा कि—"मैं नहीं छोड़ूँगा। छोड़ते ही साला भाग जायगा। पुलिस को बुलाओ, सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को लाओ।" इतने में किसी ने जबरदस्ती मुझे खींच कर उठाया। सब लोग चिल्ला उठे—"हाय! हाय! मार डाला।"

अरररर! गजब हो गया। मैं अपनी ही श्रीमती जी की छाती पर इतने लोगों के सामने चढ़ बैठा था और वह बेचारी नीचे बेहोश पड़ीं थीं। राम! राम!! मैं अपने स्वप्न की धुन में यह कौन सा अनर्थ कर बैठा?

मैं वहाँ से सर पर पाँव रख के भागा। मकान का दरवाजा खोल कर बाहर निकला तो कम्बख्त मुहल्ले वाले जो इस शोर-गुल से द्वार पर जुट गये थे, अँधेरे में मुझी को भागता हुआ चोर समझ कर मेरे पीछे शिकारी कुत्तों की तरह टूट पड़े। अगर मैं फुटबॉल का खिलाड़ी न होता और कोस भर तक बिना एक दफा भी पीछे देखे लगातार दौड़ न पाता, उस दिन डण्डों के नीचे मेरा प्राण जरूर निकल गया होता। वह तो खैरियत हुई कि उन लोगों के रास्ते ही में दम फूल गए और मैं अकेला स्टेशन पहुँचा। संयोग से कपड़े पहिले ही से पहने हुए था और जेब में 'पर्स' पड़ा था, इसलिए चट टिकट लेकर होस्टल के लिए रवाना हो गया। वहाँ मेरा सामान कब और कौन लाया, मुझे याद नहीं।

उस दिन से फिर कभी मैने ससुराल जाने का नाम नहीं लिया। वकालत का इम्तहान देकर घर आया और तब पिता जी ने श्रीमती जी को लाने के लिए ससुराल जाने को मुझसे बहुतेरा कहा भी, मगर मुझे फिर ऐसे बेवकूफी में जाकर अपनी खोपड़ी तुड़ाने का शौक ही न था, जो दामाद को मुहल्ले वालों से पिटवाने का बन्दोबस्त करें। इसलिए जाता तो कैसे जाता? रहा श्रीमती का प्रेम, उनके लिए तो—

"हर जा रह के बढ़ा सकते हैं—ठोकर खाकर सरका वकात।
सिजदे करेंगे नामों पर तेरे, दर पे न तेरे आएँगे॥"



"मैं नहीं छोड़ूँगा, पुलिस को बुलाओ, सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब को लाओ !"

[पृष्ठ ९४



शान की खातिर

"इञ्जीनियर साहब घर में हैं ?"

"कह नहीं सकता सरकार।"

"क्यों ? क्या तेरे मुँह में जबान नहीं है ?"

"है क्यों नहीं; मगर बिना जाने कैसे कह दूँ कि साहब भीतर हैं या बाहर ?"

"अजब कानूनी नौकर तू मालूम होता है। अबे घर में जाकर उन्हें देखेगा भी कि यहीं खड़ा-खड़ा बातें बनाएगा ?"

"तो क्या चाहते हैं आप ? आपकी बात का जवाब न दूँ ?"

"बस, बहस मत कर, भीतर जाकर देख—साहब हैं या नहीं ?"

"अगर नहीं ?"

"बदमाश, बेहूदा, पाजी कहीं का। जो मैं कहता हूं उसे तू सुनता क्यों नहीं ?"

"सुन तो रहा हूं सरकार ! बहरा मैं थोड़े ही हूं।"

"अबे बहरे के बच्चे, मैं कहता हूं कि साहब मकान में हैं या नहीं। सुना ?"

"सुन लिया सरकार।"

"हाय ! हाय ! सुन लिया तो उल्लू की तरह देख क्या रहा है ? जो पूछता हूं वह बताता क्यों नहीं ?"

"आप ही तो जवाब देने से खफा होते हैं तो कैसे कुछ कहूं।"

"दूर हो कमबख्त, नहीं बिना मारे छोड़ूँगा नहीं। मैं तो खुद ही इतनी देर हो जाने से परेशान हूँ और यह बेहूदा अपने गधेपन से मेरा सारा वक्त खराब किए दे रहा है।"

अब लीजिए वह नौकर सचमुच वहाँ से खिसक गया। मैं समझा, वह मकान के भीतर जायगा, मगर वह तो शागिर्दपेशे की तरफ चल दिया। न जाने ऐसे गधों को लोग क्यों नौकर रखते हैं? और इन बेवकूफों को नौकरी भी खूब मिल जाती है। मुल्क में पढ़े-लिखे बड़े बड़े बी० ए०, एम० ए० पास कचहरियों की सड़कों पर खाक उड़ा रहे हैं। हाकिमों के तलवों पर नाक रगड़ रहे हैं, मगर कोई उन बेचारों से बात तक नहीं पूछता। और इन बेपढ़े उल्लुओं को लोग खुशामदें करके बुलाते हैं, फिर भी इन बदमाशों के मिजाज ही नहीं मिलते। नौकरी तो सब एक-सी—चाहे छोटी हो या बड़ी। फिर यह बात क्यों है कि जो इसकी कदर करता है, उससे यह भागती है और बेकदरों के गले पड़ती फिरती है। कुछ नहीं, यह मुल्क ही बेवकूफ है। तभी तो यहाँ ऐसी धाँधली है, और हर बातों में। खैर नौकर तो चला गया, मगर अब मैं क्या करूँ? श्रीमती जी इसी गाड़ी से आ रही हैं। गाड़ी का वक्त भी हो गया और मैं अभी तक यहीं झख मार रहा हूँ। पाँच मील स्टेशन है। घोड़ा-गाड़ी मुझे अब किसी तरह वहाँ वक्त पर नहीं पहुँचा सकती—मोटर से ही मेरी पहुँच हो सकती है। मगर मोटर तो बड़ी चीज है। माँगने से भला काहे को कोई देने लगा? इसी के फेर में मैंने अपना सारा दिन भी खराब किया, क्योंकि मैं चाहता था कि श्रीमती जी को स्टेशन से लाऊँ तो खूब शान से; मगर मैं नहीं जानता था कि मेरी इस जरूरत के वक्त सभी मोटर वालों की मोटरें एक बारगी बिगड़ जायँगी। किसी का टायर फट गया है तो किसी का 'सेल्फस्टार्टर' काम नहीं देता। गरज इन सब में आज एक न एक ऐब ऐसा हो गया है, जिससे मोटर चल

नहीं सकती। तब हार कर 'मोटरबाइसिकिल' के लिए इञ्जीनियर साहब के पास दौड़ा, क्योंकि ठीक पाँच बजे स्टेशन पर गाड़ी आती है और इस वक्त पाँच बजने में सिर्फ चार ही मिनट बाकी हैं। अब तो शान से बढ़ कर जरूरत का सवाल पड़ गया। मगर क्या करूँ, इस कम्बख्त नौकर के मारे इञ्जीनियर साहब तक मेरी इत्तिला नहीं पहुँचती। मेरा स्टेशन पर वक्त से पहुँचना निहायत जरूरी है, क्यों कि धर्म, समाज और न्याय की दृष्टि में श्रीमती जी मेरी ही स्त्री हैं अवश्य—आज से नहीं, बल्कि बरसों से। मगर भाग्य की बलिहारी, आज तक उनसे मिलने के लिए तरसता ही रहा। मगर इस दफे उनसे जरूर-जरूर मुलाकात होगी; क्योंकि कई दिन से मेरी आँख फड़क रही है। दाहिनी या बाईं, यह तो नहीं कह सकता। क्योंकि उनसे मिलने के मन्सूबों में मुझे इस बात के जानने की अब तक फुरसत ही नहीं मिली। एक तो बड़ी मुश्किलों से ससुराल वालों ने बीबी साहिबा को इस दफे बिदा किया है, और मैं उनको लाने के लिए वहाँ गया भी नहीं; क्योंकि ससुराल में दामाद का बार-बार जाना ठीक नहीं होता। इसीलिए उनको बिदा कराने को मेरा एक चचेरा भाई भेजा गया था। अब अगर अपनी अर्द्धाङ्गिनी साहिबा की आगवानी के लिए स्टेशन पर भी मैं मौजूद न मिलूंगा तो बड़ी आफत हो जायगी। यों तो पालकी-वालकी लेकर और लोग वहाँ गये ही हैं. फिर भी मेरा वहाँ होना जरूरी है। वरना श्रीमती जी अवश्य रूठ जायँगी और तब मिलाप का सारा मजा किरकिरा हो जायगा। मगर जाऊँ तो कैसे जाऊँ? इञ्जीनियर साहब की मोटर-बाइसिकिल ही का बस एक आखिरी सहारा है। और उन तक मेरी कोई खबर पहुँचाने वाला नहीं। बड़े आदमियों के मकान पर जाकर बाहर से उनको पुकारने का फैशन नहीं है। अगर किसी तरह हिम्मत करके चिल्लाऊँ भी, तो वह जरूर ही बिगड़ जायँगे। उस वक्त मुझे उनसे घण्टों माफी माँगने में लग जायँगे, तब कहीं अपना इरादा कह पाऊँगा। मुमकिन है, उसे

वह मञ्जूर करें, या न करें, या मोटर वालों की तरह वह भी कोई बहाना कर दें। और यहाँ वक्त अब बिलकुल ही नहीं है।

इसलिए मैंने बेहतर यही समझा कि पूछ-ताछ के झगड़े में कौन पड़े। मोटर-बाइसिकिल बाहर 'पोर्टिको' में खड़ी है ही, चट जाकर सवार हो लूँ और स्टेशन चल दूं। गो मैंने मोटर बाइसिकिल कभी चलाई नहीं थी, तो भी इञ्जीनियर साहब के साथ कई दफे 'साइडकार' पर बैठ कर उनको चलाते देख चुका था। इसलिए मुझे इतमीनान था कि उसे चलाने में कोई दिक्कत न पड़ेगी। लौटकर उन्हें धन्यवाद-सहित बाइसिकिल वापस करते वक्त अपनी सख्त जरूरत और वक्त की तङ्गी का हाल और उनके नौकर की मूर्खता के कारण उनकी मोटर-साइकिल एस्तेमाल करने की इजाज़त न हासिल करने की मजबूरी कह सुनाऊँगा। तब वह मेरे इस छोटे से अपराध को अवश्य ही क्षमा कर देंगे। बस, यही दिल में ठान कर 'पोर्टिको' में गया। 'पेट्रोल' खोल कर बाइसिकिल पर चढ़ बैठा और 'पैडल' कस-कस के घुमाने लगा। फिर क्या था, 'पेट्रोल' के दगने के साथ एञ्जिन चलने लगा और 'फट-फट' करती हुई बाइसिकिल तीर की तरह हाते से बाहर हो गई। पीछे 'चोर-चोर' का हल्ला सुनकर घूम कर देखा तो वही कमबख्त नौकर गुल मचा रहा था। और मुझ अपनी तरफ ताकते हुए देख कर और जोर से चिल्ला उठा—"रोको रोको, फटफटिया बिगड़ी है।"

मगर अब मैं भला उसके चरखे में कहाँ आने वाला था? मैं अपने कान दबाए हवा से बातें कर रहा था कि इतने में मालूम हुआ कि मोटर-बाइसिकिल ज़मीन से डेढ़ फ़ीट ऊँची उछल कर झम से सड़क पर गिरी। उसके साथ बकरियों के चिल्लाने की आवाज, आदमियों का कोलाहल और गालियों की बौछार एक बारकी गूँज उठी। अब जाना कि उस कमबख्त नौकर की तरफ घूम कर ताकने में मेरा हाथ जरा बहक गया था, इसलिए बाइसिकिल सड़क से हट कर

पटरी पर गर्द उड़ाती हुई जा रही थी; और वहाँ चार-पाँच बकरियों पर, जो मजे में बैठी पागुर कर रही थीं, जाकर चढ़ बैठी। ईश्वर जाने, वे मरीं या उनकी पीठ या टाँगों की हड्डियाँ ही टूट कर रह गईं; क्योंकि मेरी बाइसिकिल उछल-फाँद करती हुई आगे भागती ही गई। मगर सड़क पर के चलने वाले कुछ ऐसे बदहवास होकर इधर-उधर दौड़े और कमबख्तों ने इतना शोर मचाया कि सामने की बैल गाड़ी के दोनों बैल भड़के और एक आती हुई फिटन घोड़े से लड़ गए। मैं तो बाल-बाल बचता हुआ तीर की तरह निकल गया, मगर फिटन और बैलगाड़ी दोनों वहीं लोट गईं। 'हाय बाप' मरे !' की चिल्ल-पों बड़ी देर तक सुनाई पड़ती रही। मगर बन्दे ने फिर पीछे घूम कर ताकने की मूर्खता नहीं की। और ताकने की जरूरत ही क्या थी ? मेरा अपराध तो कुछ था नहीं। बकरियाँ एक न एक दिन कसाई के छुरे के नीचे जाती हीं। वहाँ जाने के बदले मेरी बाइसिकिल के नीचे पड़ गईं। वह भी उस नौकर कमबख्त की गलती से, जिसने शोर मचा कर मेरा ध्यान गड़बड़ कर दिया था। तो इस बात पर राह चलने वालों को भला इतना बदहवास होने की क्या जरूरत थी ? अगर यह लोग अक्लमन्दी करते और चुपचाप अपनी राह चलते तो काहे को बैल भड़कते और काहे को गाड़ियाँ उलटतीं। सच पूछिए तो इन्हीं लोगों की मूर्खता के कारण मैं भी गाड़ी के नीचे आ गया होता। मगर तकदीर का धनी था, इससे बच गया।

अभी दो मील का भी सफर पूरा नहीं किया था कि चौराहा आ गया। इसी चौराहे की दाहिनी सड़क पर मुझे स्टेशन जाने के लिए मुड़ना था। मगर 'स्पीडोमीटर' पर जो नजर डाली तो देखा कि मेरी बाइसिकिल चालीस मील प्रति घण्टा के हिसाब से जा रही है। बाप रे बाप ! इतनी तेज चाल में साइकिल भला एकाएक किस तरह मोड़ी जा सकती थी। इसलिए मैंने झट दोनों 'ब्रेक' को दबा कर 'हैण्डिल' घुमाने की कोशिश की। मगर हाय ! हाय ! गजब हो गया। 'ब्रेक' ने

काम ही नहीं दिया। ईश्वर जाने, वह पहले से बिगड़ा हुआ था या बकरियों के ऊपर उछल-कूद में उसकी नस ढीली हो गई थी, या ब्रेक का कोई और पुर्जा था, मैं कह नहीं सकता। साइकिल तो स्टेशन वाली सड़क पर नहीं मुड़ी, बल्कि पटरी से भी नीचे उतर कर एक लम्बा चक्कर लगाती हुई फिर अपनी नाक की सीध वाली सड़क पर हो रही। ऐसा करने में पेड़ों के नीचे एक विलायती जोड़ा, जो एक दूसरे की कमर में हाथ डाले हुए आनन्द में मस्त, आपस में प्रेमालाप करता हुआ टहल रहा था एकदम उलट गया। यह उनकी बदमाशी की सजा मिली। इन कमबख्तों को प्रेम करने के लिए मकान में जगह नहीं थी, जो सड़कों पर बेहयाई करने चले थे। और अगर उन दोनों को इस तरह टहलना ही था तो रास्ते में इतने प्रेम में मस्त न रहते। जरा आगे पीछे देख कर चलते तो साहब और मिस साहब को इस वक्त जमीन पर औंधे होने की क्यों नौबत आती? और उस पर साथ ले चले थे कुत्ता। यह तमाशा तो देखिए! आखिर नतीजा वही हुआ जो होना था। कमबख्त भुक भुक करता हुआ रास्ते में अड़ गया और मेरे लाख बचाने पर भी वह पहियों के नीचे आकर 'पों' करता हुआ छटपटाने लगा। मैं क्या करता? आप ही सोचिए, इसमें भला मेरा क्या कसूर था? किसी तरह अपने को गिरने से बचाते हुए और बाइसिकिल को सँभालते हुए जब तक बीच सड़क पर आया, तब तक मैं स्टेशन वाली सड़क छोड़ कर दो मील और आगे बढ़ चुका था। यह तो बड़ी मुसीबत हुई। किस तरह बाइसिकिल को रोकूँ--'ब्रेक' काम नहीं देता। और न एञ्जिन बन्द करने की तरकीब ही मालूम थी और न चाल घटाने-बढ़ाने का ढङ्ग ही जानता था। किसी तरह पेट्रोल-कैन की एक हाथ से ढिबरी खोली तो पता चला कि लबालब भरा है। अगर मैं किसी उपाय से बाइसिकिल नहीं रोक सकूँगा तो इतना मसाला मुझे बात की बात में न जाने कहाँ से कहाँ पहुँचा देगा। उस पर गजब यह कि जितनी ही मैं इसे रोकने की कोशिश कर

रहा हूं, उतनी ही यह तेज होती जाती है। न जाने कौन सा पुर्जा मैंने धोखे में छू लिया कि अब इसकी चाल एकदम साठ मील फी घण्टा हो गई। हाय! हाय! मैं तो लुट गया। बर्बाद हो गया। श्रीमती जी से मिलने के सारे मन्सूबे खून हो गए। सोचे यह था कि श्रीमती जी मुझे अपनी आगवानी के लिए निहायत शान से 'फटफट' करता स्टेशन पर आया हुआ देख कर बहुत खुश होंगी। क्योंकि स्त्रियाँ शान शौकत, तड़क-भड़क और बनाव-सिङ्गार बहुत पसन्द करती हैं। और इसलिए मुझे विश्वास था कि वह मुझे इस शान से देखते ही मेरे अपराधों को भूलकर मुझ से झट चिमट जायँगी और पालकी पर बैठने के बदले मेरे साथ 'साइडकार' पर बैठ कर आएंगी। इस तरह रास्ते भर उनसे खूब मजे-मजे की बातें होंगी और घर आकर सीधे स्वर्ग ही में पहुँच जाऊँगा। मगर अब तो हाय! स्वर्ग के रास्ते से बहक कर जहन्नुम के रास्ते पर जा रहा हूँ। क्या करूं? कहाँ से इस मनहूस बाइसिकिल के पाले पड़ा? घर पर रहता तो भी गनीमत थी। श्रीमती जी से स्टेशन पर न सही तो घर पर तो मुलाकात होती। मगर अब तो हाय! न घर का रहा और न घाट का। इतनी देर में मैं दस मील से भी ज्यादा पहुँच गया। अब आप ही बताइए कि अगर किसी तरह यह कमबख्त मैशीन रुकी भी, तो घर लौटूँगा कैसे? हाय! हाय! रात के भी सभी मन्सूबे स्वप्न हो गए।

मैं अपनी तकदीर पर आँसू बहाता हुआ आँधी की तरह जा रहा था कि देखा, सड़क के किनारे एक बाग में किसी साहब का पड़ाव पड़ा हुआ है और उनकी आया सामने बीच सड़क पर 'पैराम्बुलेटर' (बच्चों की गाड़ी) में साहब के बच्चे टहला रही है। साथ में खानसामा भी था। सामने यह झमेला देखते ही मेरे और भी होश उड़ गए। भोंपू-वोंपू बहुत कुछ बजाया। सब तो खिसक कर पटरी पर हो गए, मगर आया मारे शेखी के टस से मस न हुई। इतने में

मेरी मोटर-बाइसिकिल झमझमाती हुई वहाँ पहुँच ही गई। बचाने को तो मैंने बहुत कुछ उसे बचाया, फिर भी मेरी साइडकार का अगला हिस्सा उस आया के पीछे दोनों टाँगों के बीच में इस जोर से लगा कि वह फुटबॉल की तरह ऊपर उछल पड़ी और उचक कर कमबख्त गिरी भी तो कहाँ? पीठ के बल मेरे साइडकार में, क्योंकि तब तक यह उसके पेंदे के नीचे पहुँच चुकी थी। फिर तो बाइसिकिल उसे भी साथ लेकर चली। पीछे खानसामा जोर से चिल्ला उठा—"अबे रोक हाय! हाय! मेरी औरत को कहाँ भगाए लिए जा रहा है" यह कह कर वह मेरे पीछे बदहवास दौड़ा और ढेला खींच-खींच कर मारने लगा। मगर तब तक मैं वहाँ से हवा हो गया।

हत् तेरी तकदीर की! श्रीमती जी को साथ ले आने के मन्सूबों में चूर होकर मैंने इस कम्बख्त बाइसिकिल पर कदम रक्खा था और कहाँ गले मढ़ गई यह हरामजादी चुड़ैल। कपड़े सफेद जरूर थे, मगर ईश्वर जाने भङ्गिन थी या चमारिन। उस पर आफत यह हुई कि जब उसकी बौखलाहट दूर हुई तब उसने एकदम गला फाड़ कर चिल्लाना शुरू कर दिया। इससे कुछ ज्यादा नुकसान न था; क्योंकि राहों और आस-पास के गाँव वाले उसकी चिल्लाहट पर कुछ तो भौंचक होकर खाली मुझे देख कर रह जाते थे और कुछ डण्डा लेकर गालियाँ देते हुए मेरे पीछे दौड़ते थे। तो भी मेरी गर्द तक भी नहीं पाते थे। मगर मेरी कम्बख्ती तब पूरी हुई, जब उसने देखा कि बाइसिकिल रुकती नहीं, बल्कि दनादन चलती ही जा रही है, तो उसने दोनों हाथों से मेरी पीठ में एक बारगी गदागद मारना शुरू कर दिया। और इसी तरह वह चुड़ैल लगातार घण्टा भर तक मुझे धुनती रही। अब आप ही बताइए, इस कुन्दी में मेरी बेचारी पीठ की क्या हालत हुई होगी? मगर मेरी इस मुसीबत को श्रीमती जी क्या जानें? वह तो इस वक्त मुँह फुलाए घर पर मुझे कोस रही होंगी।



फिर भी मेरा साइडकार का अगला हिस्सा उस आया के पीछे दोनों टाँगों के बीच में इस जोर से लगा कि वह फुटबॉल की तरह उछल पड़ी और उचक कर कमबख्त गिरी भी तो कहाँ ?

[पृष्ठ १०२]

२

रात एक घण्टा बीत गई। चाँदनी आसमान पर खूब अच्छी तरह से छिटक आई। इतने में बन्दूक की सी आवाज हुई, मालूम हुआ कि पिछला 'टायर' फट गया। फिर भी बाइसिकिल रुकी नहीं। 'आया' का हाथ अब मारने में काम नहीं देता था। गाली-गलौज और रोना-चिल्लाना भी बन्द हो गया था। ईश्वर जाने थक जाने के कारण या किसी और वजह से। इस वक्त हम ऐसी जगह थे, जहाँ सड़क के दोनों तरफ जङ्गल था। यहाँ पर यह कमबख्त बाइसिकिल फिसफिसा कर रुक गई। वैसे ही 'आया साहबा' चौंक कर बोलीं—"अरे! ऐसी डरावनी जगह पर क्यों रोका?"

मैं अपनी बदहवासी में चूर था, उसकी बात का भला क्या जवाब देता? इसलिए बिना कुछ बोले-चाले उतर कर जेब से दियासलाई निकाली और जला कर 'स्पीडोमीटर' में देखा तो पता चला कि इस वक्त हम मकान से १०७ मील फासले पर हैं। यह जानते ही कलेजा बैठ गया। जल्दी से 'पेटरोल कैन' खोल कर देखने लगा कि अगर कुछ 'पेटरोल' हो तो कुछ दूर लौटने की उम्मीद हो जाय। मगर यह न सोचा कि अगर उसमें कुछ 'पेटरोल' होता तो यह रुकती ही काहे को? अब किस तरह से इतना लम्बा सफर तय करके श्रीमती जी से मिलूँ? हाय! यह ख्याल आते ही मैं अधमरा-सा होकर सड़क पर बैठ गया!

'आया' कुछ देर तक न जाने क्या बड़बड़ाती रही। मगर जब उसने देखा कि यह मेरी बातों का कुछ भी जवाब नहीं देता, तो वह दन् से उचक कर मेरी बगल में हो रही। मैं बहुत घबराया कि कहीं यह फिर न मारना शुरू कर दे; क्योंकि मेरे सारे मन्सूबों पर एका-एक पहाड़ टूट पड़ने से इस वक्त मैं योंही बेदम हो रहा था। ऐसी हालत में अगर यह फिर मेरी पीठ की झाड़-पोछ करने लगी तो श्रीमती जी से भविष्य में भी मिलने की मेरी रही-सही उम्मीद पर

एकदम उल्टी झाड़ू फिर जायगी। मगर भाग्य की बलिहारी कि इसने बड़ी भलमनसाहत से पूछा—"क्यों जी बोलते क्यों नहीं ?"

मैं—"मारे डर के।"

आया—"वाह ! तुम तो बड़े जीवट के आदमी मालूम होते हो। तुम्हें भला डर किस बात का ?"

मैं—"मैं जीवट का आदमी ?"

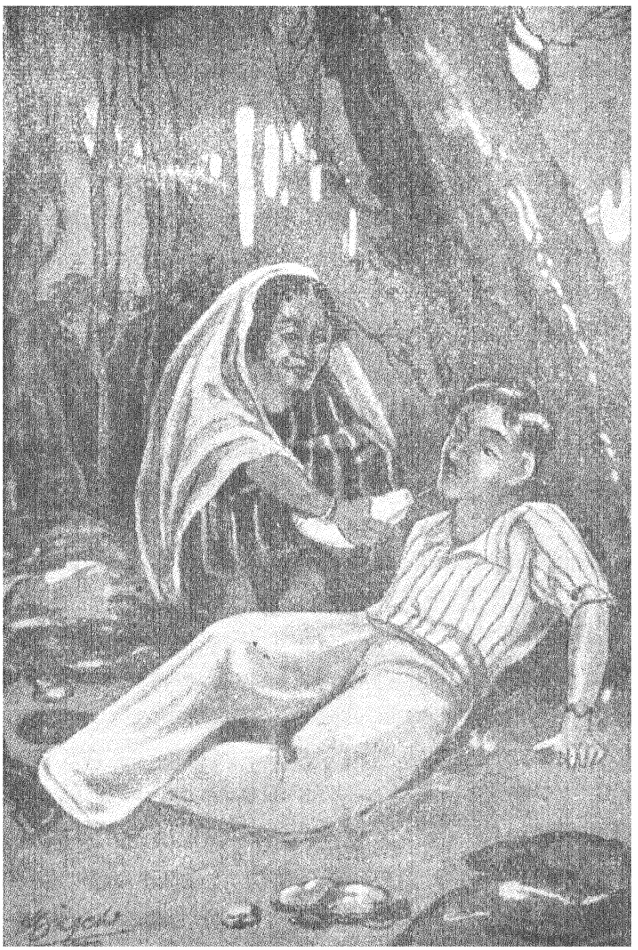
आया—'बेशक! तुम्हारे सिवाय कहीं और भी किसी की ऐसी हिम्मत हो सकती थी, जो मुझे अपने साथ इस तरह भगा लाता ? जरूर तुम मुझ पर पहले ही से आशिक रहे होंगे, तभी तो ऐसी दिलेरी की "

मैं—"नहीं-नहीं, तुम ग़लत करती हो। मैंने तुम्हें आज के पहले कभी नहीं देखा था और न मैं जान बूझ कर तुम्हें अपने साथ लाया हूँ। मैं कसम खाकर कहता हूँ मैंने किसी किस्म की दिलेरी नहीं की है। हाँ, मार खाने में मुझसे दिलेरी अलबत्ता हो गई है, वह भी मजबूरन, और किसी बात में नहीं।"

आया—'अल्लाह ! कुर्बान जाऊँ इस भोलेपन पर। ज़रा आँखें तो मिलाइए !"

हाय ! ग़जब हो गया। वह कमबख्त यह कह कर और भी नजदीक सरक आई और मेरी ठुड्ढी पकड़ कर मेरा मुँह अपनी तरफ घुमाने लगी। मैं पसीने-पसीने हो गया। जबान तालू से जा लगी और गला सूख गया। जितनी घबराहट उससे मुझे मार खाने में नहीं मालूम हुई थी, उससे कहीं ज्यादा मुझे उसकी छेड़-छाड़ से होने लगी। मैंने दोनों हाथ से अपना मुँह छिपा लिया और चिल्ला उठा–"पानी, पानी।"

आया—"पानी इस जङ्गल में कहाँ मिल सकता है ? अच्छा ठहरो। मेरी जेब में बच्चों के लिए कुछ बिस्कुट और दूध से भरी दूध पिलाने वाली शीशी थी। देखूँ है या नहीं। है ! है !! यह है !!! लो इसे जरा पी लो।" यह कह कर उसने अपनी जेब से बच्चों को धदू



उसने अपनी जेब से बच्चों को दूध पिलानेवाली शीशी निकाली और उसकी रबड़ की छच्छी मेरे मुँह में ठूँसने लगी। [पृष्ठ १०४–५]

पिलाने वाली शीशी निकाली और उसकी रबड़ की छुच्छी मेरे मुँह में ठूँसने लगी। अब तो मुझसे नहीं रहा गया। यह कमबख्त बच्चों की दाया, आया या माँ भले ही हो सकती थी, मगर मुझ ऐसे दाढ़ी-मूँछ वाले सवा पाँच फीट के आदमी को इसका अपनी गोद का दूध-पीना बच्चा बनाना आप ही सोचिए, कितनी बुरी बात थी! मैंने झट से उसका हाथ पकड़ा और झुझला कर अपने मुँह को दूर हटा लिया। मगर फिर भी मैं कुछ बोल न सका। न जाने क्यों मैं उससे इतना डर रहा था! मेरी-ऐसी हालत तो सुना था अक्सर औरतों ही की होती है, जब वे किसी ऐसे बदमाश के पाले अकेली पड़ जाती हैं, जिससे वे मारे घृणा के जान छुड़ा कर भागना चाहती हैं। मगर किसी मर्द को बदमाश से बदमाश औरत के सामने भी इतना घबड़ाते और बद-हवास होते न कभी देखा था, न सुना था और न कहीं पढ़ा था। इसलिए मैंने उसी वक्त समझ लिया कि ईश्वर ने मुझे मर्द का चोला देने में तो कोई भूल नहीं की है, फिर भी वह मुझे असल में मर्द बना नहीं सके। इस बात में वह जरूर कहीं न कहीं गलती कर गए हैं, वरना दुनिया में कौन ऐसा उल्लू मर्द होगा कि जिसकी किसी औरत के सामने ऐसी नानी मर जाय कि उससे घण्टों मार खाने पर भी कुछ न बोले और उसकी छेड़-छाड़ पर दुम दबा कर भागे। मगर भई, मैं करता तो क्या करता? वह औरत ही ऐसी थी। मारते वक्त आ गया बताल थी, तो इस वक्त ऐसी 'समुन्दर-सोख' हो रही थी कि बड़े-बड़े हिमालय पहाड़ों का कलेजा इस आँधी-पानी में काँप जाता, तो मैं भला किस खेत की मूली था?

वह मुझे अपना हाथ पकड़ते देख कर और भी नजदीक खिसक आई और बड़े तपाक से बोली "अच्छा, दूध न पियो तो एक पान ही खा लो—तुम्हारी प्यास बुझ जायगी। अरे! मेरी डिबिया में तो कुल एक ही पान है! कोई हर्ज नहीं; आधा मैं खाए लेती हूँ और आधा तुम खाओ!"

उसने सचमुच डिबिया से पान निकाल कर आधा खुद कुतर लिया और बाकी कुतरे हुए हिस्से को मेरे मुँह की तरफ बढ़ाया। मैं मारे गुस्से के जल मरा। मगर गुस्सा आया भी तो किस पर, ईश्वर पर; जिनकी मिन्नतें अपनी श्रीमती जी से मिलने के लिए मनाते-मनाते मैं मर मिटा और उन्होंने मेरी बिनती सुनी जरूर, मगर मिलाने में फिर भूल कर गए। उन्हें मिलाना चाहिए था मुझे मेरी हृदयेश्वरी से, मगर उन्होंने मुठभेड़ करा दिया मुझे इस चुड़ैल से। इसीलिए जिस जुलाहे का खेत उसके पड़ोसी की बकरी रोज चर जाया करती थी और उस बेचारे ने तङ्ग आकर रात भर दुआ माँगी कि या अल्ला मियाँ बकरी मर जाय, मगर सुबह को देखा कि खुद उसी का बैल मर गया। तब उसने ठीक ही कहा था कि, "अल्ला मियाँ तुम्हें इतने दिनों अल्लामियाँई करते हो गया, मगर अब तक तुम्हें बकरी और बैल की तमीज न हुई।" और अब मुझे भी कहना पड़ता है कि "ईश्वर, तुम खाकी जानवर ही नहीं पहचान पाते हो, बल्कि स्त्री-स्त्री में भी भेद नहीं जानते हो। क्या कहूँ, न हुआ स्वराज, वरना तुम ऐसे अनाड़ियों को ईश्वरगिरी हर्गिज न करने देता। तुम्हारे विरुद्ध मैं जरूर कोई नया 'कैण्डिडेट' खड़ा करके सारे देश का 'वोट' दिलवा देता। मगर आजकल तो तुम्हारा राज्य है जो चाहो धाँधली करो। जानते हो न, कि तुम्हारे आगे किसी की कुछ चल नहीं सकती? हाय! जो कहीं तुम मेरी प्राणेश्वरी से मुझे मिला देते तो उसका जूठन, उसके तलवे का धोवन भी एक साँस में गट से पी जाता। मगर इस मरखण्डी देवनी का जूठन किस तरह चाटूँ? न बाबा, यह मुझसे नहीं हो सकता। यह ख्याल आते ही आँते उल्टी पड़ती हैं। इसलिए मैंने जल्दी से अपना सिर झुका कर अपना मुँह जाङ्घों में छिपा लिया, और हाथ जोड़कर बोला—"मुझे माफ करो।"

अब क्या था। उसने मुझे हाथ जोड़ते देख कर झट से अपना हाथ मेरी गर्दन में बिना 'नोटिस' दिए डाल दिया। मेरे प्राण सूख

गए। ऐसा मालूम हुआ कि मेरे गले में फाँसी का फन्दा पड़ गया। वह मुझे अपनी तरफ खींचती हुई बोली—"अरे! वारी जाऊँ इन नखरों पर! क्या कहना है! तुमने तो गौने की दुल्हिन के भी कान काटे। अरे मियाँ, जरा सिर तो उठाओ - कुछ बातें करो। मर्द भी भला कहीं इतना झेंपते हैं?"

मैंने—"मगर....मैं....मैं....शायद मर्द नहीं हूँ।"

वह चौंक पड़ी और बड़े ताज्जुब में आकर उसने पूछा—"तो क्या मर्द की पोशाक में तुम कोई औरत हो?"

मैं—"नहीं, यह बात भी नहीं है।"

वह—"जब तुम न मर्द हो और न औरत ही हो, तब तुम हो क्या चीज? तुम पैदा होते ही क्यों न मर गए?"

यह कह कर, वह तन कर खड़ी हो गई और एकदम विराट रूप धारण कर लिया। मेरा दिल दहल गया। थोड़ी देर तक वह मुझे शेरनी की तरह घूरती रही। इसके बाद वह एकाएक उबल पड़ी और किटकिटा कर उसने दो लातें मेरी पीठ पर जमाईं और बोली—"ऐसे आदमी को चूल्हे में झोंक दूँ।"

मैंने रोआसा होकर जवाब दिया—"अभी नहीं, श्रीमती जी से मुझे मिल लेने दो तब"

३

कोई मुझ से पूछे कि दुनिया के विचित्र जीवों में सबसे अद्भुत क्या है, तो मैं बेखटके कह दूँगा कि स्त्री। बल्कि मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि इसके बराबर अजीब और बेढब जन्तु ब्रह्मा के अजायबखाने में भी नहीं है, तभी तो इसके आगे ईश्वर की भी अक्ल गुम हो जाती है, तो हम-आप भला क्या चीज हैं? जिस वक्त यह 'आया' बाइसिकिल पर मेरी कुन्दी कर रही थी, उस वक्त भला कोई

कह सकता था कि यही बाद को मुझे प्यार करना चाहेगी ? मगर नहीं. इन लोगों के लिए कोई भी बात असम्भव नहीं है। अभी किस तपाक से यह मुझे प्यार कर रही थी और अभी आप ही देखिए, किस मुस्तैदी से यह फिर मेरा लतमर्दन करने लगी, और उस पर तमाशा यह कि खुद ही कमबख्त मुँह फेर कर रोने भी लगी। चुपके-चुपके नहीं, बल्कि खूब चिल्ला कर—एकदम गला फाड़ कर, जैसे इसका बाप ही तो मर गया है। चोट लगी मुझे, आँसू निकले उसके, यह विचित्रता नहीं. तो है क्या ?

रो तो मैं भी रहा था, मगर दिल के भीतर। वह भी दर्द के मारे नहीं बल्कि अपनी श्रीमती जी से न मिल सकने की वजह से। यह मैं कैसे कहूँ कि चोट मुझे नहीं लगी ? ऊपर की धमक और सड़क की रगड़ से घुटने फूट गए, कुहनी छिल गई, नाक घिस गई और पदाघात से कमर की जो हालत हुई हो, वह तो कमर ही जाने। मैं क्या जानूँ ? मेरा मन तो श्रीमती जी के पास था—यहाँ तो खाली लोथ ही लोथ था। इसलिए मैं भी मुँह के बल सड़क पर बड़ी देर तक औंधा पड़ा रहा कि 'आया' साहबा का जितना जी चाहे. मुझे शौक से मारें। मगर जब देखा कि उन्हें अपने रोने से फुरसत नहीं मिलती, तो मै धीरे-धीरे उठ बैठा। जब से 'रेडियमडायल' वाली घड़ी निकाल कर देखा कि दस बज चुके हैं। इतनी रात को इस जङ्गल में मैं क्या करूँ ? कहाँ जाऊँ ? क्या खाऊँ ? कुछ समझ में नहीं आया। इधर यह भी डर लगा था कि अगर मैं यहीं चुपके बैठा रहा, तो यह पाजी औरत फिर न मेरे पास पहुँचे और मेरी कमबख्ती शुरू हो जाय। उधर पराई बाइसिकिल छाड़ कर यहाँ से खिसकते भी नहीं बन पड़ा। इसलिए ऐसे सङ्कट की घड़ी में बाइसिकिल के पुर्जों की जाँच-पड़ताल करना और फटे टायर बदलना ही मुनासिब समझा, ताकि किसी तरह रात तो कटे, ओर साथ ही मुझे काम में लगा हुआ देख कर यह हरामजादी मुझसे न बोले। यह सोच कर मैं बाइसिकिल के पास

गया, मगर मुझे वहाँ जाते ही वह कमबख्त आया भी मेरी तरफ लपकी और दोनों हाथों से मेरी कमर पकड़ कर चिल्ला पड़ी:—

"कहाँ चला, कहाँ ? क्या मुझे इस जङ्गल में छोड़ कर भागने का इरादा है ?"

मैं—"मैं भाग कर कैसे जा सकता हूँ ? बाइसिकिल में तो तेल ही नहीं है।"

आया—"तब इधर चुपके-चुपके क्यों आया ?"

मैं—"बाइसिकिल टूट गई है उसी को ठीक करने।"

आया—'आग लगे तेरी बाइसिकिल में। मुझे कुछ खाने-पीने को भी देगा या यहाँ लाकर तू भूखों मारेगा ? साथ में जो कुछ लाया है, उसे निकालता क्यों नहीं ?"

मैं—'बी साहबा, न साथ में खाना लाया हूँ और न तुम्हीं को मैं जान-बूझ कर यहाँ लाया हूँ। तुम खुद ही मेरी मुसीबत में फट पड़ी हो। मैं क्या करूँ ? यहाँ काई बाजार भी नहीं, वरना कुछ खाने-पीने का सामान ही खरीद लेता। रुपए तो मेरे पास काफी हैं, मगर यहाँ वह थोड़े ही कुछ काम दे सकते हैं ?"

रुपए का नाम सुनते ही एकाएक आया साहबा के गुस्से की आँधी ठण्ढी पड़ गई और वह शेरनी से एकदम भीगी बिल्ली बन गईं। फिर क्या था, अब लगीं नखरे से मुस्करा कर बोलने:—

"यह मैं जानती थी कि तुम खाली हाथ न चले होंगे। मगर यह तो बताओ कि तुम मुझे कब से जानते हो और पहले-पहल तुमने मुझे कहाँ देखा था ?"

उसने लगावट की बात फिर शुरू की, मगर रुपए की याद होते ही मेरी अधीरता कम पड़ गई थी। क्योंकि अब तक मुझे श्रीमती जी तक पहुँचने की कोई उम्मीद न थी, मगर यह ख्याल आते ही कि मेरा जेब में पचास रुपए के नोट हैं, जिनको मैंने जल्दी में घर से चलते वक्त इसलिए रख लिया था कि स्टेशन पर शायद उनकी कोई जरूरत

पड़ जाय, मेरे जी में जी आया। मैंने पहले दो ही चार रुपए कुली वगैरह के लिए ले चलने का इरादा किया था, मगर बॉक्स खोलते ही नोटों के एक बण्डल पर नजर पड़ी और वैसे ही मेरे दिल में शौक चर्राया कि कोई बढ़िया सी चीज खरीद कर आज श्रीमती जी को जैसे ही वह रेल से उतरें, उपहार-स्वरूप भेंट करूँगा। वही नोट मेरे पास मौजूद थे; क्योंकि मोटर की खोज में उपहार की चीज खरीदने के लिए बाजार जाने की नौबत ही नहीं आई थी। इन्हीं नोटों के बल पर मुझे घर पहुंचने की आशा हो गई। सोचा कि यहाँ से दो-चार कोस का दूरी पर कोई रेल का स्टेशन या शहर होगा ही। इसलिए वहाँ किसी तरह यह बाइसिकिल ले जाकर रेल द्वारा घर पहुँच सकता हूँ, या पेटरोल खरीद कर और किसी मोटर वाले से बाइसिकिल के कल-पुर्जे अच्छी तरह समझ कर और इसकी मरम्मत करा कर इसी पर रवाना हो सकता हूँ। यह सोचते ही मेरी बाछें खिल गईं और बुद्धि भी ठीक काम करने लगी। अब आया से मैं भला क्यों घबड़ाता? यह मैं जानता था कि रात मुझे यहीं काटनी होगी। सुबह को जब इधर कोई आदमी दिखाई देगा, तो उसकी मदद से मेरे मन्सूबे पूरे होंगे। जब हृदय में प्रबल आशा उभर उठती है, तो मनुष्य बड़ा मुस्तैदी से सब सङ्कट झेल लेता है। इसलिए आया साहबा से जी कड़ा करके बातें करना और सारी रात बाईसिकिल की देख-भाल में भूखे-प्यासे बिता देना अब कुछ मुश्किल नहीं मालूम हुआ।

मैंने बेधड़क आया को जवाब दिया—"देखा तो मैंने आपको आज ही।"

आया—"और देखते ही मुझ पर आशिक हो गए? तुम्हें मेरी कसम, सच बताना।"

सच कैसे बोलता? सच बोलता हूं तो बिना मार खाए नहीं बचता, इसलिए बहुत समझ-बूझ कर मैंने कहा—"यह तो समझने की बात है, पूछने की नहीं।"

आया—"ओहो ! दिल में चुटकियाँ भी लेना जानते हो और बनते हो इतने भोले। लिल्लाह ! जरा मुँह से भी कह दो। दिल की बात दिल ही में न रक्खो !"

अररर ! यह कमबख्त मेरी बात उलटी समझ गई। मैंने सर खुजलाते हुए अपनी सफाई में इस तरह जवाब दिया—"क्या करूँ, मुझे बात करना नहीं आता। मैं आज तक कभी किसी औरत के सामने कुछ बोल ही नहीं सका हूं "

आया—"तभी ? मगर मुझसे तो बोल रहे हो। आखिर क्यों ? यही बात तो पूछ रही हूँ।"

"यह खुद ही समझ जाओ—मुझसे न पूछो।" मैंने यह कह कर जान छुड़ानी चाही, मगर उसकी भी अजब औंधी खोपड़ी थी। समझने को क्या और समझ गई क्या ? इसलिए वह मेरी गर्दन में हाथ डाल कर बड़े तपाक से बोली—हाय-हाय ! तब तुम मेरा प्यार क्यों नहीं करते ? मुझे प्यार क्यों नहीं करने देते ?"

यहाँ बदहवासी फिर शुरू हो गई। मैं जल्दी से उसका हाथ हटाते हुए बौखला कर बोला—"मेरी तबीयत बहुत घबराई हुई है। यह कमबख्त बाइसिकिल ने ऐसी जगह दगा दी है कि अक्ल कुछ काम नहीं करती। अब जरा आप मुझे इसे ठीक कर लेने दीजिए, तब मुझे कुछ इतमीनान हो।"

आया—"यह बात है ? अच्छा ठीक करो। मगर देखो, तुम्हारे लिए मैंने अपना मर्द छोड़ा है। अब तुम मेरे साथ दगा न करना। बस, आज से तुम मेरे साहब हुए और मैं तुम्हारी मेम। इसे याद रखना !"

अरे बाप रे बाप ! यह सुनते ही मेरा तो कलेजा हिल गया। जिसके पास एक मिनट भी बैठने में दम घुटने लगे, उसको मैं भला किस तरह सारी जिन्दगी अपनी खोपड़ी पर लिए रहना गवारा कर सकता था ? जीते ही मर जाना और एकदम मर जाना लाख बार

स्वीकार हो सकता है, मगर विवाह करना और फिर ऐसी औरत के साथ ? ना बाबा ! मैं क्या, मेरे बाप की हिम्मत नहीं पड़ सकती। इसलिए मैं घबड़ा कर उसका मुँह निहारने लगा। इतनी देर के बाद इस दफे अलबत्ता उसका चेहरा देखा। मेमों की सङ्गत में रहने के कारण उसके कपड़े साफ-सुथरे जरूर थे, ढाँचा भी काम-काजू याने दुबला था, मगर सूरत बिलकुल कलूटी, उस पर अवस्था अधेड़। लीजिए, दिल के अटकने का यहाँ सब सहारा ही गायब। जी हाँ, "वह दिन हवा हुए. जब पसीना इत्र-वो-गुलाब था।" लड़कपन से इसे अगर कोई चाहता होता तो वह शायद अपना उस मुहब्बत के बल पर इस चिचोरी हुई हड्डी को बिना नमक मिर्च के निगलने का दम रख सकता है। क्योंकि शर्बत सभी शौक से पी लेते हैं, मगर सिरका पीने के लिए Acquired taste की जरूरत है। इसलिए आप ही कहिए, मैं उसकी बात का भला क्या उत्तर देता? 'हाँ' करता तो अपने हृदय का खून करता और 'नहीं' करता तो खोपड़ी तुड़वाता—दोनों ही मुश्किल ! इसलिए 'हाँ' 'नहीं' के झगड़े में पड़ने के बदले मैंने ताना मार कर बात के प्रसङ्ग को बदल देना ही मुनासिब समझा।

मैं—"क्या इसीलिये आप मुझे इतना ठोंक-बजा कर परख रही थीं ?"

आया—"नहीं जी, वह तो अपने मर्द को दिखाने के लिए था। क्योंकि वह बाइसिकल के पीछे-पीछे दौड़ा आ रहा था। अगर उस वक्त मैं तुम्हें न मारती, तो वह समझता कि यह राजी-खुशी से भागी जा रही है। मगर कुछ न जाऊँ तुम्हारे इस ताने पर। अलबत्ता अब मालूम हुआ कि तुम भी मुझे अपनी मेम समझते हो।"

हाय-हाय ! यह कमबख्त तो घूम कर फिर उसी जगह हो रही। मेरे रहे-सहे हवास जाते रहे। बड़ी देर तक मैं मुँह बाये खड़ा रहा। एकाएक याद आया कि इसे इसके मर्द की याद दिलाऊँ, तो यह शर्मा

कर मेरी जान जरूर छोड़ देगी। यह सोच कर मैं उसे इस दफे समझाने के ढङ्ग पर बोला—"भला आपको अपने मर्द का भी कुछ ख्याल है ? आपके भाग आने से वह क्या करेंगे ?"

आया—"इसके लिए तुम न डरो। वह क्या कर सकता है ? वह मूँड़ीकाटा तो साहब के भङ्गी की बीबी से खुद ही फँसा हुआ है। जो कुछ पाता है, वह हरामी सब उसी को दे आता है। तभी तो मैं उसके पास अब रहना नहीं चाहती। बहुत दिनों से म भागने की ताक में थी, अल्ला ने वह दिन मुझे आज दिखाया।"

मेरे सिर में चक्कर आ गया और धड़ाम से चारों खाने चित सड़क पर गिर गया।

आया—"क्या गर्मी चढ़ गई ? कपड़े उतार डालो। ओहो ! सचमुच बला की गर्मी है।"

यह कह कर उसने मेरे कोट, कमीज, बनियाइन, गरज कि पतलून छोड़ कर सभी कपड़े उतार दिए। इसके बाद उनकी जेबों में हाथ डाल कर मेरा रेशमी रूमाल, पचास रुपये के नोट और चाँदी का सिगरेट-केस निकाल कर बोली—"साहब लोगों के रुपये-पैसे उनकी मेमें अपने पास रखती हैं, इसलिए मेरे होते हुए इन चीजों को अपने पास रखने के हकदार तुम नहीं हो सकते—मैं रक्खूँगी।"

मैं कुछ नहीं बोल सका। चुपचाप उठ कर बाईसिकिल से खटपट करने लगा। बड़ी देर तक उसकी मैशीनरी को चाँद की रोशनी में और बीच-बीच में दियासलाई जला कर भी देखता-भालता रहा। अब मुझे अपनी गलतियाँ मालूम हुईं। जिस कल को मैं बाइसिकिल रोकने का ब्रेक समझे हुए था, वह असल में पेटरोल की धार घटाने-बढ़ाने का पुर्जा था। इसलिए जितना ही मैं उसको दबाता था, उतना ही यह तेज होती गई थी। रोकने का ब्रेक पायदान में था, जहाँ मेरा ख्याल गया ही नहीं। इस तरह दो घण्टे झख मारने के बाद मैं उसके सब पुर्जे समझ गया, यहाँ तक कि मुझे इतमीनान हो गया कि अब

मैं हर किस्म की मोटर-बाइसिकिल बिना कोई गलती किए चला सकता हूँ। यह जान कर मुझे बड़ी खुशी हुई। आया की तरफ देखा, वह अपनी जेब से बिस्कुट निकाल कर खा रही थी। मैं अब और इतमीनान से फटे हुए टायर की देख-भाल करने लगा। खुश-किस्मती से 'स्टेपनी' यानी एक फालतू पहिया ट्यूब-टायर से दुरुस्त साइडकार के पीछे लगा हुआ था, उसे निकाल लिया। मगर बाइसिकिल का पिछला पहिया निकालने में बड़ी देर लगी। इस काम में मैं इतना बझा हुआ था कि मुझे मालूम नहीं हुआ कि सारी रात इसी में गुजर गई। खैर, किसी तरह जब मुझे नया पहिया चढ़ाने में कामयाबी हुई, तो देखा कि सुबह की तारा निकल आयी है। बाइसिकिल कील-काँटे से दुरुस्त हो गई। अब क्या है, श्रीमती जी के पास पहुँचने का सामान ठीक हो गया। सिर्फ पेटरोल की कसर है। वह भी ईश्वर चाहेगा तो चार-पाँच कोस की इर्द-गिर्द में कहीं न कहीं मिल ही जायगा। यह सोच कर मेरे हृदय में फिर अपनी प्राणेश्वरी से मिलने की आशा उभर उठी और मेरे रोम-रोम में आनन्द की लहर दौड़ गई।

आया मेरे उतारे हुए कपड़ों का तकिया बना कर, उस पर अपना सर रक्खे हुए सड़क के किनारे खुर्राटे भर रही थी। मैंने उस आफत की पुड़िया को अभी जगाना ठीक न समझा। झुट-पुटा होने लगा था। मैंने सड़क पर से अपना टोप उठाया और सुबह की जरूरियात से फारिग होने के लिए जङ्गल में घुसा। भाग्य से थोड़ी दूर चलने पर एक गड्ढा मिला। उसमें कुछ पानी भी दिखाई दिया। इतने में मोटर की घड़घड़ाहट सुनाई पड़ी। मैं जल्दी से सड़क की तरफ दौड़ा। एक दरख्त की लटकती हुई डाल से मैं घबड़ाहट में टकरा गया। खोपड़ी में चोट इतने जोर से लगी कि चक्कर खाकर वहीं बैठ गया। यहाँ से मेरी बाइसिकिल और आया मुझे साफ दिखाई देती थीं। माटर का भोंपू सुनाई देने लगा। आया चौंक कर उठ

बैठी, और चारों तरफ देख कर बोली—"या अल्ला, वह हरामी कहाँ है।"

यह पदवी शायद उसने मुझी को दी। मोटर भों-भों करती हुई मेरी बाइसिकिल के पास रुक गई। उसमें से कई लाल पगड़ी और एक सफेद पगड़ी उतरी। सफेद पगड़ी उतरते ही आया की तरफ लपकी और चिल्ला कर बोली—"मिल गई! मिल गई! दरोगा जी, यही मेरी औरत है, जिसको वह शैतान इस बाइसिकिल पर भगा लाया है। गजब खुदा की, इतनी दूर के बाद मिली। मैं तो बिलकुल ना उम्मीद हो गया था।"

मैं सिकुड़ कर झाड़ी के और बीच में घुस गया और तेजी के साथ ईश्वर का नाम जपने लगा। सचमुच यह बोलने वाला उस आया का मर्द वही खानसामा था, जो रास्ते में मेरे पीछे ईंट फेकता हुआ दौड़ा था।

दारोगा—"वह भगाने वाला कहाँ है?"

खानसामा—"हाँ-हाँ, उसे ढूँढ़िए, मैं उसके कलेजे का खून पीऊँगा।"

आया—"चिड़िया तैर रही है। वह भैंसा आया। मरी, या अल्ला मैं मरी। आसमान से तारे टपक रहे हैं। ओहो! छछूँदर साँप को निगल गई। अहा-हा-हा!"

दारोगा—"अरे! यह पागल है क्या?"

खानसामा—"नहीं-नहीं, पागल नहीं थी। उसी हरामजादे ने इसे कुछ खिला कर पागल बना दिया। या अल्ला! अब क्या करूँ?"

पहला कॉन्स्टेबिल—"हुजूर, यहाँ ज्यादा देर तक ठहरना ठीक नहीं है। बड़ा डरावना जङ्गल है। यहाँ डाकुओं का अड्डा जरूर होगा, तभी वह इस औरत को यहाँ लाया है और इसे दीवानी बना कर खुद अड्डे पर गया होगा। अभी अपने गिरोह के साथ आता ही

होगा। और हम लोगों के पास इस वक्त मुकाबला करने के लिए काफी आदमी नहीं हैं।"

दूसरा कॉन्स्टेबिल—"जी बजा है, आजकल शरीफपोश, पढ़े-लिखे आदमी भी मुल्क के खैरख्वाह बन कर डकैती करते हैं। और इन लोगों से पार पाना बहुत मुश्किल है; क्योंकि इन्हें मरने-जीने का डर नहीं होता, और दूसरे यह लोग ज्यादातर दिमाग से ही काम लेते हैं।"

दारोगा—"हाँ, मुझे भी कुछ ऐसी ही बात मालूम होती है। बाइसिकिल को मोटर के पीछे बाँध दो। इसके जरिए से उसका पता मिल जायगा, और यह औरत भी अपने होश में आकर उसका बहुत-कुछ भेद बता सकती है।"

बाइसिकिल के हैण्डिल में रस्सी लगा कर मोटर के पीछे बाँध दी गई। आया साहबा अपने मर्द के कन्धे पर अपना सर झुकाए खड़ी थीं, या शायद हँसने के बाद बेहोश हो गई थीं, क्योंकि वह फिर बोलीं नहीं और लाद कर मोटर पर चढ़ाई गईं।

आध घण्टा बाद मैं डरते-डरते सड़क पर गया। सुबह हो गई थी, मैंने अपने कपड़ों को बहुतेरा ढूँढ़ा, मगर उनका कहीं पता न पाया। वह कमबख्त आया अपनी बेहोशी में भी मेरी बनियाइन तक नहीं छोड़ गई, जिससे मैं ऊपर का बदन तो ढँक लेता। हाय! बाइसिकिल ले गई, रुपए ले गई और मुझे नङ्गा करके इस जङ्गल में छोड़ गई। अरी मेरी श्रीमती जी! अब किस तरह १०७ मील का फासला तय करके तुमसे मिलूँ? हाय! मैं तो जीते ही मर गया। अब क्या करूँ? मैं वहीं बैठ कर बड़े इतमीनान से चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा; क्योंकि मेरे पास इसके सिवाय वहाँ और काम ही क्या था?

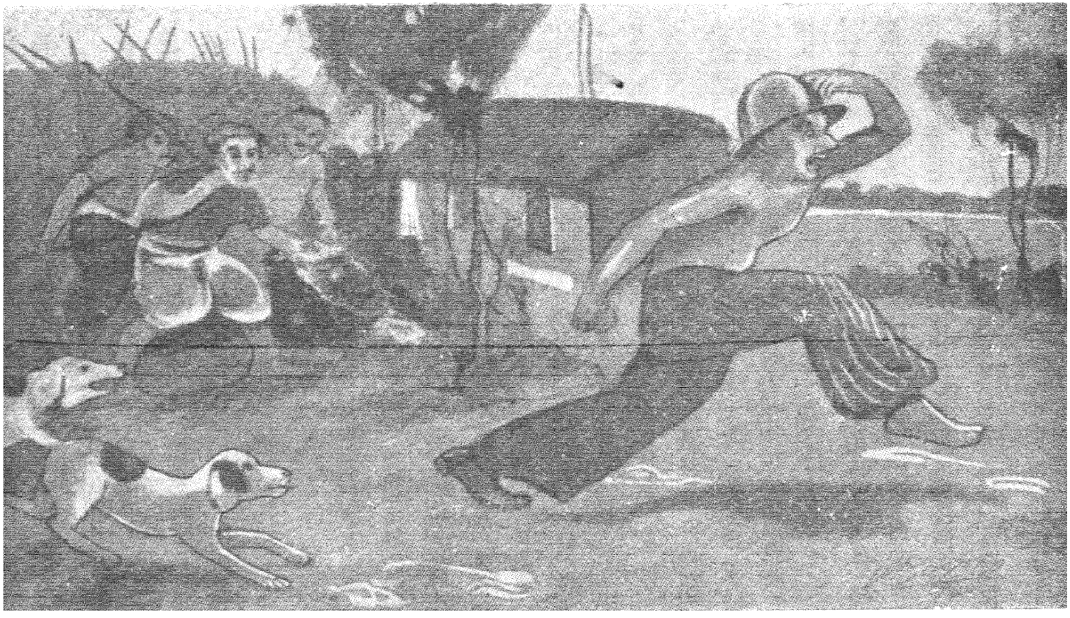
गिरगिट को भी रङ्ग बदलते कुछ देर लगती है, मगर औरतों को अपनी मुहब्बत बदलने में कितनी देर लगती है—शायद वह भी,

जिसने वक्त को घण्टा, मिनट और सेकेण्डों में बाँटा हैं, नहीं बता सकता। तभी तो आया साहब अपने मियाँ को देखते ही मुझे ऐसी भूलीं कि अपनी मुहब्बत के साथ दाम-दूकान, साज-सामान, सवारी-शिकारी—सभी बटोर ले गई और मैं हुक्के की तरह मुँह बाए खड़ा तमाशा देखता ही रह गया।

कमर तक पतलून और खोपड़ी पर टोप और बीच का मामला बिलकुल नङ्गधड़ङ्ग ! हुलिया यह, उस पर १०७ मील का सफर और श्रीमती जी से मिलने के मन्सूबे ! भला इस जन्म में अब कैसे पूरे हों ? बुरा हो इस कम्बख्त भलमनसाहत का, जिसने आदत तो ऐसी बिगाड़ रक्खी है कि बदन पर बिना एक कुर्ता डाले मैं अपने ही घर में नहीं रह सकता था और एक मील से ज्यादा कभी पॉवपैदल स्वप्न में भी नहीं चल सकता था; फिर इस धजा में इस मुसीबत को किस तरह पार करता ? मगर यह सोच सोच कर कहाँ तक रोता ? आखिर श्रीमती जी की याद ने बहुत हुरपेटा और मैं उन्हीं का नाम लेकर चल ही पड़ा।

चलते-चलते पसीने में नहा उठा। साँस धौंकनी की तरह चलने लगी। जबान तालू में सट गई। मारे प्यास के दम निकलने लगा। अब एक कदम भी चलना दूभर हो गया और मैं एक पेड़ के नीचे बैठ गया। बैठते ही नींद और थकावट ने ऐसा धावा किया कि मैं जमीन ही पर मुर्दों से बाजी लगाने लगा।

आँख खुली तो देखा कि कुछ देहाती लड़के चारों तरफ से घेरे हुए मुझे घूर रहे हैं। अन्धा चाहे दो आँखें, इसलिए मैंने उनको देखते ही पानी माँगा। एक लड़का वहाँ से तुरन्त, जिस तरफ सड़क से कुछ दूर पर दो-चार झोपड़ियाँ थीं, दौड़ा। उसकी देखा-देखी उसके पीछे दो-तीन और हो लिए। खेतों में के हलवाहे लड़कों को इस तरह गाँव की तरफ भागते हुए देख कर हल रोक कर खड़े हो गए और घबरा कर ताकने लगे। इस हुरदङ्गे में कुत्ते भी चौंक उठे



गाँव से कुछ लोग डण्डा लेकर निकल पड़े। इस भगदड़ में कुत्तों की गर्मी तेज हो गई और डण्डे वालों का सहारा पाते ही ये कमबख्त और आग बबूला होकर मेरी तरफ लपके।

तब तो मुझे सर पर पाँव रख कर भागते ही बना। [पृष्ठ ११८]

और भूँकते हुए गाँव के बाहर निकल आए। तब तो मुझे बड़ा गुस्सा चढ़ा। झट सर पर टोप लगाकर खड़ा हो गया और लड़कों को डाँटने लगा!

मैं—"तुम लोग बड़े बेहूदे मालूम होते हो जी! भला इस तरह कोई पानी लाने के लिए भदभद करता हुआ जाता है? देखो कुत्तों को भी बुरा मालूम हुआ। तभी तो इतना चिल्ल-पों मचाए हुए हैं। इनको अभी चुप कराओ, नहीं तो जो पानी लाने के लिए बदतमीजी से गए हैं, उनको तो मैं ठीक करूँगा ही, साथ ही तुम लोगों के भी कान उखाड़ लूँगा।"

जब तक मेरा लेक्चर खतम हो, तब तक वह लोग धीरे-धीरे वहाँ से खिसके और एकाएक यह चिल्लाते हुए भाग खड़े हुए कि—"जानो यही लकड़सुँघवा है। देखो टोपिया कस पहने है। अर! भागो, नाहीं पकड़ लेइ जाई।"

'लकड़सुँघवा' का नाम एक के मुँह से निकलते ही सभों की जबान पर आ गया। दूर खड़े हलवाहों ने भी इसे सुन कर दुहरा दिया। फिर क्या था, आसमान तक यह नाम गूँज उठा। गाँव से कुछ लोग डण्डा लेकर निकल पड़े। इस भगदड़ में कुत्तों की गर्मी तेज हो गई और डण्डे वालों का सहारा पाते ही यह कमबख्त और आग बबूला होकर मेरी तरफ लपके। तब तो मुझे सर पर पाँव रख कर भागते ही बना। क्या करता? ईश्वर भी दुष्टों से पनाह माँगते हैं।

रास्ते में टोप गिर गया। एक पाँव का जूता भी निकल गया, मगर मैं बिना पीछे मुड़ कर देखे हुए दौड़ता ही गया और एकदम डेढ़ मील पर जाकर एक सूखी झाड़ी में दम लिया। अब मालूम हुआ कि गाँव के लोग और कुत्ते शायद आधी ही दूर आकर लौट गए। क्योंकि अब उन लोगों की कुछ भी भनक नहीं मालूम पड़ती थी। तो भी दूध का जला मट्ठा फूँक-फूँक कर पीता है। इसलिए कि

कहीं कुत्तों की गिद्धवाली निगाह मुझे फिर न देख लें, मैं घनी झाड़ियों के बीच में घुस कर दबक गया।

अब फिक्र हुई कि खाली पतलून पहने कोई किस तरह सड़क पर निकल सकता है। इससे तो लँगोटी लाख दर्जे अच्छी थी। क्योंकि तब भिखमङ्गे की सूरत बन जाती सही, फिर भी एक तरह का आदमी तो मालूम पड़ता। मगर इस शकल में न तो मैं आदमी था और न हैवान ही। क्योंकि पागलों को भी किसी ने बदन भर में सिर्फ पतलून डाटे और एक पैर में जूता पहने सड़कों पर चलते न देखा होगा। इसलिए मुनासिब यही जान पड़ा कि किसी तरह से पतलून की टाँगें नोच कर उसे लँगोटीनुमा बना देना ही ठीक है। मगर उसे लँगोटी बनाता तो किस तरह बनाता? न छुरी थी और न कैंची। और कमबख्त मुँह के दाँत भी जभी काम देते, जब पतलून टाँगों से अलग होकर उनके सामने जाती। उफ! यह बात तो बड़ी ही मुश्किल थी, मगर मजबूरी अजब चीज है। आखिर झख मार कर वही करना पड़ा, जिसके कहने में मैं मारे शर्म के पसीने-पसीने हुआ जा रहा हूँ और आपको देखिए, आँखें खोले हुए हैं। हाय! हाय! आप यह क्या गजब कर रहे हैं? अजी लज्जा-निधान, ईश्वर के लिए जरा आँखें बन्द करके पढ़िये, क्यों मुझे आप इस तरह काँटों में घसीट रहे हैं?

पतलून की टाँगें मैंने बहुतेरा कुतरा और चबाया, मगर कमबख्त मोटे जीन का कपड़ा न फटा और न कटा। ईश्वर जाने, दाँत खट्टे हो गए या थकावट और प्यास के मारे ताकत ही नहीं लगती थी। आखिर हैरान होकर दम लेने लगा।

पतलून की जेब में सिगरेट और दिया सलाई थी। खाली वक्त को काटने के लिए तमाकू से बढ़ कर कोई चीज नहीं है, इसलिए मैंने भी अपनी परेशानी को सिगरेट से भगाना चाहा। इस दफे जेब में हाथ डालते ही सिगरेट और दियासलाई के साथ एक चवन्नी

भी हाथ आगई। इस वक्त चवन्नी का मिलना मुझे ऐसा मालूम हुआ. गोया हजार रुपए की थैली मिल गई। मुझे इसकी याद भी न थी कि इसे मैंने पतलून में कब रक्खी थी। दूसरी जेब में भी इसी उम्मीद में हाथ डाला कि शायद उसमें भी कुछ मिल जाय, मगर उसमें से निकला बस एक मैला रूमाल। रेशमी रूमाल तो महज दिखाने के लिए जैण्टिलमैन लोग कोट की जेब या आस्तीन में रखते हैं, मगर असली रूमाल, जिससे जूता और मुँह दोनों पोंछे जाते हैं, वह पतलून की जेब में छिपा रहता है। वही इस वक्त मिला। मैंने इसमें बड़े यत्न से चवन्नी बाँधी और फिर उसे अपने गले में लपेट कर एक गाँठ दे दी। क्या करता, रूमाल रखने का और कोई ठिकाना कहाँ था ?

कमबख्ती के मारे दियासलाई में एक ही बत्ती बची थी। मैं घबराया कि अगर यह न जली या जल कर बुत गई, तब तो सिगरेट पीने के मनसूबे भी खाक में मिल जायँगे। इसलिए थोड़े से सूखे पत्ते बटोर कर उसके नीचे बड़ी सावधानी से उसे जलाना चाहा, ताकि दियासलाई अगर बुत जाय तो कम से कम पत्ता तो कुछ देर जलता रहे। मगर मैं अभी सिगरेट भी जला नहीं सका था कि लपट बड़े जोरों से भड़क उठी।

मैं उचक कर कट लंगूर की तरह झाड़ी से निकला, वरना जीते ही मेरा दाह-कर्म हो जाता, क्योंकि वैसे ही वह सूखी झाड़ी जल उठी। हाय ! हाय ! उसी के साथ मेरी पतलून और एक पैर का जूता भी स्वाहा हो गया। और मैं चिल्ला-चिल्ला कर रोने लगा—"अरी श्रीमती जी, कहाँ हो ? जरा अपने 'उनकी' दशा तो देखो !"

५

बलिहारी है मेरे मैले रूमाल और मेरी चवन्नी को, जिनकी बदौलत किसी तरह आबरू बचाता और चने कुड़कुड़ाता इस लम्बे सफर को मैंने बहुत-कुछ तय कर डाला। रास्ते में कैसी-कैसी आफतें

झेलीं, पैरों में कितने-कितने बड़े फफोले पड़े—यह सब श्रीमती जी से मिलने के मनसूबों में मैं भूला हुआ था। क्योंकि पाँचवें दिन मैं उनसे सिर्फ चार ही कोस के फासले पर था। मगर भाई, पेट अजब चीज है, यह किसी तरह से भी नहीं भुलाया जा सकता। जब से चवन्नी खतम हो गई, तब से इस कमबख्त ने कदम-कदम पर नाक में दम कर दिया। सूरत भिखमङ्गे से भी बत्तर हो रही थी, क्योंकि बदन पर रूमाल की सिर्फ तीन अङ्गुल चौड़ी पट्टी के और कुछ भी न था। चेहरे पर भूख और थकावट से हवाइयाँ उड़ रही थीं। उस पर पाँच रोज की दाढ़ी ने उसे और भी खब्बीस बना के मुझे बिलकुल बनमानुष बना रक्खा था। भीख माँगने के लिए इससे बढ़ कर और धजा क्या हो सकती है? मगर माँगने का हुनर कहाँ? एकाध राही से मुठभेड़ हो जाती थी। वे लोग मुझे खूब घूर कर देखते थे। जी बहुत चाहता था कि इनसे एक पैसा माँग लूँ, मगर कलेजा मसोस कर आँखें नीची कर लेता था। अब मालूम हुआ कि इसके लिए भी बड़ी हिम्मत और योग्यता की दरकार है। हमारे नेताओं ने इस फन को जरूर ही खूब सीखा होगा, तभी यह लोग बात की बात में किसी न किसी बहाने हजारों रुपए इकट्ठा कर लेते हैं। मगर मैं बेवकूफ अपने पेट की खातिर एक पैसा भी किसी से नहीं माँग सका—महज अपने अनाड़ीपन की वजह से।

कुछ दूर और चलने के बाद देखा कि दो शिकारी सड़क के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठे, कटोरदान सामने रक्खे कुछ खा रहे हैं। मुल्की मामलात पर आपस में बड़े जोश के साथ बहस भी करते जाते हैं। मगर मेरा ध्यान उनकी बातों पर न था, यहाँ तो सारा बदन, आँख, नाक, कान—सभी अपना-अपना काम छोड़ कर पेट से जा मिले थे। उसी की हमदर्दी में लगे हुए थे। यहाँ तक कि खुद भी पेट ही पेट हो रहे थे। क्योंकि जब मैं चौबीस घण्टों का भूखा था, तो मैं किसी की बातें सुनने के लिए अपने किस अङ्ग से काम लेता? दिल में तो

बस यही था कि किसी तरह कटोरदान लेकर भाग चलूँ। चोरी या सीनाजोरी कभी नहीं की थी, मगर अब मुझे यकीन हो गया कि लोग चोरी क्यों करते हैं।

मैं चुपचाप उनके पास जाकर बैठ गया—फिर भी चोरी की नियत से नहीं। जब भीख माँगने में नानी मर रही थी तो भला चोरी करने के लिए इतना बड़ा कलेजा कहाँ से लाता? मैं तो सिर्फ़ पेट के हुरपेटने से वहाँ चला गया था। आदमी भलेमानुष मालूम होते थे, इसलिये समझता था कि तर्स खाकर कुछ न कुछ मुझको भी देंगे। मगर वे लोग अपनी धुन में ऐसे मस्त थे कि कमबख्तों ने आँख उठा कर भी नहीं देखा। खाना खतम भी हो चला। और किसी वक्त में अगर किसी ने मुझे जूठन खाने के लिए कहा होता तो उसे मैं बिना मारे न छोड़ता। मगर इस वक्त यही जूठन मुझे अमृत की तरह दिखाई दे रही थी।

आखिर कब तक सब्र करता? उधर फिक्र भी यह हुई कि खाना माँगूँ तो किस तरह से। पेट चिल्ला रहा था, मगर जबान तो तालू से सँटी हुई थी। बार-बार उसे हिलाने की कोशिश करता रहा, मगर कमबख्त अपनी जगह से टसकती ही न थी, बड़ी मुश्किलों से पेट पकड़ कर, कलेजा थाम कर, बहुत कुछ सोच-विचार कर मुँह खोला तो बड़े धीमें सुरों में लड़खड़ाता हुआ सिर्फ इतना ही बोल सका—"भाई साहब!"

दोनों शिकारियों का मिजाज बिगड़ गया। दोनों ही ने एक साँस में डाँट दिया। उसके बाद एक ने फटकारना भी शुरू किया—"क्यों बे गधे, तमीज से बातें नहीं करता? हम तेरे भाई होने लायक हैं? हरामजादे! यह सूरत और यह हौसला! भाग, नहीं मारते-मारते कचूमड़ निकाल दूँगा।"

अब ख्याल हुआ कि मेरी धजा भिखमङ्गों की सी है और मुझे भिखमङ्गों की तरह बातचीत करनी चाहिए। इसलिए अपनी गलती

सुधारता हुआ अपनी गरज यों जाहिर की; क्योंकि साफ-साफ शब्दों में बिना आदत के भीख माँगते किसी तरह भी नहीं बन पड़ता—चाहे आजमा के कोई देख ले।

मैं—"गरजमन्दा हूँ। अपनी गरज में अन्धा हो रहा हूँ। मैंने जान-बूझ कर आपका अपमान (Insult) नहीं किया। अपनी गलती की माफी चाहता हूँ। मैं रोजी की तलाश में हूँ। अगर आप मेहरबानी करके अपनी बन्दूक वगैरह ले चलने के लिए मुझे कुली बना लेंगे तो मैं अपने पेट की आग बुझा सकूँगा और आपको बड़ी दुआएँ दूँगा।"

दोनों चकरा कर मेरा मुँह देखते हुए जल्दी जल्दी अपना सामान बटोरने लगे।

एक ने घबड़ा कर कहा—"मैं पहचान गया जनाब आपको। मगर आप हम लोगों के पीछे नाहक पड़े। आप सी० आई० डी० के आदमी (जासूस) हैं, तो जाइए किसी चोर-बदमाश का पता लगाइए। देशभक्तों का पीछा करके क्यों अपनी औकात खराब करते हैं?"

दूसरा—"एक नसीहत मेरी भी सुन लीजिए! वह यह कि जब कभी आपको भिखमङ्गे का रूप धरना हो, तो खोपड़ी पर अङ्गरेजी बाल, उँगली में सोने की अँगूठी और जबान में शीनकाफ दुरस्त न रक्खा कीजिए, बरना इसी तरह हर जगह आपका भण्डा फूट जाया करेगा।"

इतना कह कर वे दोनों अपना सामान लादे तेजी के साथ चल दिए, और मैं अपना-सा मुँह लेकर रह गया। वही मसल हुई कि 'जहाँ जाय भूखा, वहीं पड़े सूखा।' मगर खैर, इस मुसीबत की अँधियारी में अँगूठी का ख्याल एकाएक उदय होकर मुझ मुर्दे को मरने से बचा लिया। इसको मुझे जरा भी याद न थी, वरना इसे औने-पौने दामों पर बेच कर इतनी मुसीबतें काहे को झेलता? खैर,

अब सही। गोकि अब मकान सिर्फ तीन ही कोस के फासले पर था, फिर भी अँगूठी बेचने का पक्का इरादा कर लिया; क्योंकि बिना कुछ खा-पीकर अपनी सूरत पर की फटकार दूर किए श्रीमती जी के सामने किस तरह जा सकता था? भला वह ऐसी शकल पर कब निगाह उठाना गवारा कर सकती थीं? उन्हें हमारी मुसीबतों से क्या मतलब? यही जो उन्हें ख्याल होता तो आज तक वह मिलने से परहेज करके मुझे यों कुत्ते की मौत मारतीं?

इतने में ही एक जवान अकड़ता हुआ उधर से निकला। दिल में समझ लिया कि आदमी है शौकीन और यह जरूर मेरी अँगूठी खरीद लेगा। इसलिए झट हाथ में अँगूठी लेकर मैं उसके पास गया।

मैं—"यह अँगूठी बिकाऊ है। बहुत सस्ते में दे दूँगा। लेना चाहो तो ले लो।"

जवान ने अँगूठी अपने हाथ में लेकर पूछा—"यह किसकी है?"

मैं—"मेरी है?"

उसने आव देखा न ताव, बस धड़ से एक तमाचा मेरे मुँह पर रशीद कर दिया।

जवान—"क्यों बे, यह तेरी है? तेरे बाप ने भी ऐसी अँगूठी कभी देखी थी? चोर कहीं का। तू पुलिस के आदमी को धोखा देता है? जानता नहीं, मैं पुलिस का हवलदार हूँ। चल थाने पर। अब तुझे मैं कहाँ छोड़ने का? आज ही तो बचा, चोरी करने का मजा पाओगे।"

हाय! बाप रे बाप! तमाचे से खाली गाल ही लाल हुए, मगर पुलिस का नाम सुनते ही मेरा सारा बदन काँप उठा, प्राण सूख गए; क्योंकि भाई यमराज से भी मैं उतना ही डरता हूँ, जितना पुलिस से। कोई मुझे डरपोक भले ही कहे, मगर भाई असल बात तो यह है कि अगर मेरे सगे बाप भी पुलिस के आदमी होते तो उनसे भी मैं इसी तरह डरता, बल्कि पैदा होते ही आँख बन्द करके फिर अल्ला

मियाँ के पास चल देता। क्योंकि यदि किसी वक्त अब्बा जान को कोई मामला न मिलता तो वे मुझे ही जेलखाने भिजवाने का इन्तजाम कर बैठते और कहते कि बेटा, मैं अपनी आदत से मजबूर हूँ। क्या करूँ? मेरे पास फाँसने के लिए हजारों दफाएँ हैं, मगर इस बक्त कोई कमबख्त चालान करने के लिए नहीं मिलता। इस आड़े वक्त तुम्हीं काम आ जाओ। तुमसे बढ़ कर मेरा कौन हो सकता है? इसीलिए यह मेहरबानी तुम पर कर रहा हूँ।

मैं पुलिस का नाम सुनते ही अँगूठी छोड़ छाड़, सर पर पाँव रख कर खेतों की ओर भागा। इस मरी हुई हालत पर भी मैं भागता ही गया और डेढ़ मील तक पीछे मुड़ कर देखने का नाम न लिया। मगर सड़क छूट जाने के कारण खेतों से शहर पहुँचने का रास्ता मालूम ही न था, और उस हवलदार के मारे सड़क पर जाने की हिम्मत नहीं पड़ती थी।

बड़ी देर तक इधर-उधर भटकता रहा। आखिर शाम हो चली। मैं बहुत घबड़ाया कि कहाँ जाऊँ, किससे राय पूछूँ। इतने में एक गाड़ीवान अपनी बैलगाड़ी खेतों में फंदाता हुआ, बैलों की पूँछ उमेठता हुआ, बड़ी तेजी से एक मोड़ पर से सामने आया। मैंने लपक कर उससे पूछा—"भाई, शहर अब कितनी दूर है?"

गाड़ीवान—"आँधर हो। वह देखो घण्टाघर दिखाई देत है। बस अब कोस भर होई, मुला एसाइत बोलो मत, हमार जान साँसत में पड़ा है।"

मैं—"वहाँ पहुँचने का रास्ता कौन है?"

गाड़ीवान—"तुरे रास्ता में आग लगे। हमारे मरेजिए पर लाग है, अउर तू रास्ता पूछत हो। काव कही, एक ससुर बदमास लरिका हमरे गाड़ी के सामने फाट पड़ा। तौ तनी चोटाय गा है। वही सार हुआँ पड़ा हल्ला मचाए है। अब्बै गउँवा वाले सुनिहें तो हमका मारिन डरिहैं। यही लिए हाली किए हन। कवनो जतन से यह आगे बाला

नारा पार कर लेई तौ हमरे जीव में जीव आवे और तूका तब रास्ता बताई।"

मैं—"अच्छा, तो भाई मुझे अपनी गाड़ी पर बैठाल लो। मैं पीछे देखता रहूंगा कि कोई आता तो नहीं है।"

गाड़ीवान—"भले कह्यो ! अच्छा आय जाव। जैसे कोई का आवत देख्यो वइसे बतायो।"

अन्धा चाहे दो आँखें। मारे थकावट के मैं योंही गिरा पड़ता था और उधर श्रीमती जी से मिलने के लिए अलग मरा जा रहा था। इसलिए गाड़ी पर बैठते ही निहाल हो गया। मैंने लम्बी तान दी और श्रीमती जी से मिलने के मनसूबे करने लगा। इसी तरह हम लोग नाले पर पहुँच गए। इतने में एका-एक बड़े जोर का शोर हुआ। गाड़ीवान कूद कर भाग खड़ा हुआ, बैल बौखला कर गाड़ी लिए नाले में घुसे। मैं आठ-दस आदमियों को लाठी लिये पीछे दौड़ते देख कर गाड़ी के पेंदे में और दबक गया। मगर गाड़ी कमबख्त बीच नाले में पहुँच कर एक गड्ढे में जा पड़ी, और मुझे लिये-दिये भचाक से एकदम उलट गई।

६

गिरता-पड़ता, मरता-खपता आखिर किसी न किसी तरह एक बजे रात को मैं अपने घर के दरवाजे के सामने जाकर खड़ा हुआ। तकदीर बहुत तेज थी, जो उल्टी हुई बैलगाड़ी के नीचे और पानी के भीतर से, घण्टों के बाद भी, मैं जिन्दा निकल आया था, वरना वहीं न ठण्ढा हो जाता ? यहाँ तक पहुँचने की नौबत ही काहे को आती ? खैर ! मकान पर आ तो गया, मगर यहाँ आके एक अजीब उलझन में जकड़ गया। इसलिए न तो अब मुझे दरवाजा खुलवा कर भीतर ही जाते बन पड़ा और न बाहर सोते हुए किसी नौकर को जगाते। धत् तेरे की ! इस रोग की पहले अगर कुछ भी भनक मालूम होती तो इतनी मुसाफिरत तय ही क्यों करता ? वहीं जङ्गल ही में मजे में



गाड़ी कमबख्त बीच नाले में पहुँच कर एक गड्ढे में जा पड़ी, और मुझे लिए-दिए भचाक से एकदम उलट गई। [पृष्ठ १२६]

बैठे-बैठे मलार गाता। क्योंकि जिस मनसूबे के बल पर यहाँ तक सैकड़ों मुसीबतें झेलता और सर पर पाँव रख कर दौड़ता हुआ आया था, वह कमबख्त मेरे पीछे अब दबक रहा और मैं अपने ही दरवाजे पर एक अजनबी, मुहताज और चोर की तरह थर-थर काँपने लगा! कुछ डर के मारे नहीं; मगर बात ही ऐसी थी, जिसमें मैं क्या, दुनिया के बड़े-बड़े बहादुरों के बाप की भी वीरता कुछ काम नहीं कर सकती। क्योंकि भला कौन ऐसा माई का लाल होगा, जो दो अङ्गुल की लँगोटी बाँधे. वह भी भींगी हुई, अपनी सबसे प्यारी, प्राणप्यारी, हृदयेश्वरी, दिलरुबा, सनम, जानेमन, वगैरा-वगैरा के सामने जाना पसन्द करेगा? जब शक्ल दिखाने काबिल होती है, तभी किसी को मुँह दिखाते भी बन पड़ता है। मगर यहाँ तो सूरत पर फटकार बरस रही थी; वह भी छाती फाड़ कर। कहाँ तो मैं उनकी एक झलक के लिए तरस रहा था, तड़प रहा था और बेमौत मर रहा था और कहाँ अब इस डर से मरने लगा कि कहीं उनकी नजर मुझ पर न पड़ जाय। वाह री मेरी कमबख्ती? जो न करे वह थोड़ा है।

इतने में कोठे पर मेरा कुत्ता 'जैक' भूँक उठा। चौंक कर जो मैंने ऊपर निगाह की तो देखा कि आप छज्जे पर से झाँक रहे हैं। पहले शायद उसने मुझे कोई पत्थर की मूर्ति समझा था, जो वह एक ही दफे भूँक कर रह गया। मगर अब मेरे चौंक कर ऊपर ताकने से मुझे हिलता-डुलता पाकर उस कमबख्त ने भूँक-भूँक कर आसमान सर पर उठा लिया। भीतर "कौन है, क्या है, बाहर जाकर देखो" की चिल्लाहट गूँज उठी और बाहर नौकर भी कुनमुना उठे। मैं इस सूरत में नौकरों के सामने किस तरह खड़ा रह सकता था? इसलिए हाय! मुझे वहाँ से सर पर पाँव रख कर अपनी आबरू बचानी ही पड़ी। तो भी कमबख्तों ने मेरा पीछा न छोड़ा। दौड़ कर इन हरामजादे नौकरों ने दो-एक डण्डों से मेरी पीठ पर वार कर ही तो दिया।

खैरियत हो गई कि मुझे उस वक्त घबड़ाहट में इसका पता न चला, वरना उसी वक्त उन सालों को 'डिसमिस' कर देता। क्योंकि मालिक पर इस तरह हाथ छोड़ना भला कितनी बड़ी बदतमीजी है, सोचने की बात है।

मैं सरपट भागा जाता था कि इतने में मेरे पीछे कुत्ते के भूँकने की आवाज सुनाई पड़ी। घूम कर देखा कि नौकर तो सब पीछे छूट गए, मगर 'जैक' मुझ पर हमला करने के लिए छलांगें मारता इस चाँदनी रात में दौड़ता आ रहा है। हाय! हाय! इस साले शिकारी कुत्ते को जो मैं जानता कि बड़ा होने पर मेरा ही शिकार करेगा तो भूल कर भी उसे न पालता। मगर तकदीर की दाँव-पेंच ही ऐसी होती है कि दिन बिगड़ते हैं तो अपने भी बेगाने हो जाते हैं। उस पर मुसीबत यह हुई कि मैं अपनी बदहवासी में अपने कुत्ते का नाम भी भूल गया। तब किस तरह उसे चुचकार-पुचकार कर अपनी जान बचाता? समझ लिया कि अब मेरा खात्मा हो गया। इसलिए श्रीमती जी का नाम लेकर मैंने किचकिचा कर आँखें बन्द कर लीं और सूखे लट्ठे की तरह खड़ा हो गया।

मगर भई, आदमियों से जानवर हजार गुने अच्छे होते हैं। क्योंकि इनमें अपने बेगाने और भले-बुरे को पहचानने की तमीज तो होती है, इसलिए जैक मेरे पास पहुँच कर बजाय काटने के, उछल-उछल कर मेरा मुँह चाटने लगा। उस वक्त मेरे जान में जान आई। मगर भूख और थकावट के मारे मैं खड़ा न रह सका। भद् से वहीं ढेर हो गया और रो-रोकर कुत्ते से मैं कहने लगा—"मेरे प्यारे जैक, मेरे अच्छे दोस्त, जाओ, घर पर से एक रोटी का टुकड़ा ले आओ। बला से तुम कुत्ते हो, मगर इस वक्त जात-पाँत गई भाँड़ में, मैं उसके पाखण्ड में पड़ कर भूखों मरना नहीं चाहता।"

मगर बेचारा जैक इसके जवाब में खाली दुम हिला कर कूँ-कूँ करने लगा। इसी बीच में थिएटर वाली सड़क से एक बाइसिकिल

आई। जैक एक प्यार के लहजे में उसके पीछे भूँकता हुआ दौड़ा। बाइसिकिल वाले ने चाल धीमी करके कहा—"अरे जैक ! तुम इतनी रात को घर के बाहर कैसे हो ? चला, मेरे पीछे पीछे चले आओ।"

मैंने आवाज से पहचान लिया कि यह तो मेरा चचेरा भाई मदन है, जो मेरी श्रीमती जी को ससुराल से बिदा कराने गया था। मालूम होता है, यह इस वक्त थिएटर देख कर लौटा है। मैंने बहुत-कुछ चाहा कि उसे पुकार कर अपना परिचय दूँ और अपने पास बुलाऊं; मगर मुँह से आवाज न निकली, और बाइसिकिल और कुत्ता दोनों दूर निकल गए। मगर थोड़ी ही देर के बाद जैक फिर लौट आया। मदन की सीटी पर तुरन्त पलट पड़ा। मगर वैसे ही फिर मेरे पास दौड़ आया। जब किसी तरह जैक मुझे छोड़ कर मकान अकेला न जा सका, तो मदन उसे मना ले जाने के लिए झख मार कर मेरे पास तक आया और उसने आते ही मुझे घुड़की बताई। मैंने जवाब में क्या कहा, यह तो याद नहीं, मगर इतना मालूम है कि उसने चौंक कर पूछा—"अरे ! श्याम दादा, आप हैं ? वाह ! आपने तो खूब स्वाँग बना रक्खा है कि पहचान ही नहीं पड़ते।"

मैं—"ले अब जले पर निमक न छिड़को। पहिले मुझे तुम कहीं से कुछ खाने को ला दो। मारे भूख के मर रहा हूँ. उठा नहीं जाता, और बदन ढँकने के लिए कुछ कपड़ा दो, ताकि मुँह तो किसी को दिखा सकूँ, तब बातचीत करना।"

उसने बहुत कुछ इधर-उधर की बातें करने की कोशिश की, मगर मैं अपनी जिद पर अड़ा ही रहा कि बिना कुछ खाए और कपड़े पहने मैं बोलूँगा नहीं और न यहाँ से एक इञ्च हटूँगा। तब वह बाइसिकिल पर थिएटर वाली सड़क पर लौट पड़ा। शायद कुछ नाश्ता-पानी लाने की नियत से, क्योंकि थिएटर के पास इस वक्त भी दूकानें खुली रहती हैं। आखिर यही बात निकली। क्योंकि थोड़ी देर में वह अपने

रूमाल में बाँधे पूड़ी, तरकारी, मिठाई और जेब में दो बोतल सोडा-वाटर के लेते आया। उफ! उस वक्त मैं खाने पर किस तरह झपटा हूँ कि क्या कोई मरभुक्खा कुत्ता झपटेगा।

मैं उन पूड़ियों के आगे दीन-दुनिया सब कुछ भूल गया। अगर कोई बात याद रही, तो सिर्फ यही कि बस अब थोड़ी ही देर में अपनी प्राण-प्यारी से नहा-धोकर और कपड़े पहिन कर मिलूँगा। जब जरा भूखे पेट में अनाज की कुछ गर्मी पहुँची और आँख उठा कर देखा मालूम हुआ कि मदन वहाँ पर नहीं है। अब तो उसके और अपने दोनों के ऊपर बड़ा गुस्सा मालूम हुआ; क्योंकि वह मुझे अकेला ही छोड़ कर चला गया। मुझे कपड़े पहना कर मकान ले चलने का उसने कुछ भी इन्तजाम नहीं किया। पेट की ज्वाला तो देखी, मगर कमबख्त ने मेरे हृदय की ज्वाला नहीं देखी—जो बिना श्रीमती जी से मिले भला कब शान्त हो सकती है? अपने ऊपर इसलिए बिगड़ रहा था कि मैंने उसका कोट क्यों नहीं ले लिया। न पूरा धड़ सही, कम से कम ऊपर का हिस्सा तो कुछ ढक जाता। तब किसी तरह अपने मकान के अन्दर घुसने की कुछ हिम्मत भी कर सकता था वरना इस सूरत में जहाँ दरवाजे के पास पहुँचा तहाँ फिर वही मुसीबत और डण्डेबाजी शुरू हो जायगी।

चलो बड़ी बात कि मकान की तरफ से बाइसिकिल आती दिखाई दी। मैं जल्दी से सोडा-वाटर से हाथ मुँह धोकर उठ खड़ा हुआ कि आनेवाला चाहे कोई भी हो, उसका कपड़ा बिना छीने उसे जाने न दूंगा। खैरियत हो गई कि वह मदन ही था। और वह अपने 'लगेज कैरियर' पर कपड़ों का बण्डल भी बाँधे था। उसमें अपने कपड़े देख कर मैं निहाल हो गया और दो ही मिनट में चट धोती, कमीज कोट वगैरह पहन कर मैं भलामानुस बन गया। अब क्या पूछना था? बाछें खिल गईं और मैं श्रीमती जी से मिलने के लिए बेताब हो गया, इसलिए मदन का हाथ पकड़कर मैं बड़ी तेजी से अपने मकान की

तरफ लपका। क्योंकि अब उनसे मिलने में भला क्या कसर थी ? नौकरों की ऐसी-तैसी, अब तो वह लोग मुझे पहचान कर अदब से अलग हट जायँगे और मैं झट अन्दर पहुँच कर पहले दाढ़ी बनाऊँगा। उसके बाद मुँह पर साबुन रगड़ रगड़ के खूब नहाऊँगा। फिर अपनी श्रीमती जी के चरणों पर नाक रगड़ूँगा। वाह रे मैं ! उफ ओह ! इतनी मुद्दतों के बाद जाकर तकदीर जगी ? इन मनसूबों में मैं अपना सारा दुखड़ा भूल गया। क्यों न हो भाई, प्रेयसी से मिलने की खुशी ऐसी ही होती है, और प्रेयसी भी कैसी, जिससे जिन्दगी भर अब तक मैं मिलने को तरसता ही रहा। मगर वैसे ही मदन ने मुझे रोक कर कहा—"अरे ! उधर कहाँ चले ? जरा बात तो सुनिए !"

मैं—"बात पीछे करना, पहले मकान तो चलने दे।"

मदन—"मकान ? क्या अपने साथ घर वालों पर भी आफत ढाइएगा ?"

मैं—"आफत कैसी ?"

मदन—"क्या आपको नहीं मालुम कि इञ्जीनियर साहब की मोटर-बाइसिकिल चोरी करने, सड़कों पर बकरियाँ कुचलने, एक गाड़ीवान को अधमरा कर देने, एक मेम साहब को बुरी तरह घायल कर देने और किसी औरत को भगा ले जाने की इल्लत में पुलिस आपको ढूँढ़ रही है ? घण्टे घण्टे बाद मकान पर आकर आपका पता पूछा करती है।"

मेरी हक्की बक्की बन्द हो गई और मैं घबड़ा कर उसका मुँह निहारने लगा। उसने फिर कहना शुरू किया—"सुनिए ! जैसे ही मोटर-बाइसिकिल की वारदात शहर भर में फैली, वैसे ही इञ्जीनियर साहब ने अपनी जान बचाने की गरज से चट थाने में रिपोर्ट कर दी कि मेरी बाइसिकिल कोई चुरा ले गया। उनकी बाइसिकिल तो न जाने कैसे उनके पास फिर पहुँच गई और वह इन वारदात की जिम्मेदारियों से अपने को बरी पाकर चुप हो गए, मगर पुलिसवालों

ने यह पता लगा लिया है कि चोर आप ही हैं और आप ही ने यह सब आफतें ढाई हैं, इसलिए घड़ी-घड़ी कॉन्स्टेबिल आकर आपकी खातिर सब घरवालों को तङ्ग किया करता है। चाचा जी इस मामले को दबा देने के लिए सैकड़ों खर्च कर चुके हैं और कर रहे हैं। बस वह गाड़ीवान, जिसकी गाड़ी फिटन से लड़ कर उलट जाने से बुरी तरह अधमरा हो गया है, अभी अस्पताल में कराह रहा है। अगर वह अच्छा हो गया और आपका पता पुलिस को कुछ दिनों बाद मिला, तब तो मामला रुपयों के जोर से दबा ले जाने की उम्मीद पाई जाती है। इसलिए ईश्वर से दुआ मनाइए कि वह अच्छा हो जाय और आप तब तक एकदम लापता हो जाइए। जब आप 'देशबन्धु' अखबार में मेरा यह विज्ञापन देखें कि मुझे एक अध्यापिका की जरूरत है, तब आप समझ जाइएगा। कि मामला दब गया और उस वक्त मजे से आप आइएगा। मगर अभी तो आप फौरन परदेश चले जाइए और वहाँ कुछ दिनों भेष बदल कर अपने को छिपाए रहिए। इसीलिए मैं चुपचाप चाची से एक सख्त जरूरत का बहाना करके आपके लिये ७०) लाया हूं। किसी तरह आप अपना इसमें गुजर-बसर कीजिये; क्योंकि घर में और ज्यादा रुपये हैं ही नहीं।"

मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मैंने लड़खड़ा कर कहा—"और मेरी श्रीमती जी ×××"

मदन—"उनका नाम न लो। मैंने घर में किसी से आपके आने का हाल नहीं बताया। सिर्फ उन्हीं से कहा। वह भी इस इरादे से कि शायद वह इस वक्त आपकी कुछ मदद करें, मगर कह कर पछताया।"

मैं—"हाँ-हाँ बताओ, उन्होंने मेरे बारे में तुमसे क्या पूछा? भई, हाथ जोड़ता हूँ, उनसे जरा मुलाकात को करा दो। चाहे जैसे बने। बाहर वाले पाखाने ही में मैं खड़े-खड़े उनसे दो बातें कर लूंगा।

किसी को कानों-कान खबर न होगी। मैं सैकड़ों मील से उन्हीं की खातिर पाँव पैदल हजारों मुसीबतें झेलता आ रहा हूँ ×××"

मदन—"देखिए, वक्त खराब न कीजिये। तीन बज चुके हैं। इसी तरह बातों में सुबह हो जायगी और आप पकड़ जाइएगा। इसलिए आप इस वक्त चुपके से चार बजे वाली गाड़ी से निकल जाइए। अभी वक्त है।"

मैं—"भई मुझे उनसे मिलने में कुछ ही मिनट लगेंगे। कसम खाकर कहता हूँ कि मैं बहुत ही छोटी मुलाकात करूँगा।"

मदन—"कहा था, मगर ×××"

मैं—"मगर क्या ? कहो-कहो भाई !"

मदन—"उनकी भौंहें सिकुड़ गईं। एकदम गर्म हो उठीं ×××"

मैं—'मेरा आना सुन कर ?"

मदन—"हाँ भाई !"

मैं—"अच्छा बोली क्या, यह तो बताओ।"

मदन—"यही की अपनी ऐसी-तैसी में जायँ। उसी के साथ जाकर रहें जिस नानी को अपने साथ भगा ले गए थे। मैं अब उनका मुह तक देखना नहीं चाहती।"

ऐसी आवभगत इतनी मुसीबतों के बाद ? उफ ! कलेजे में गोला चल गया। मैं वहीं अररररर धड़ाम से गिर पड़ा। अगर तकदीर रूठे तो आदमी रोकर दुखड़ा हल्का करे, मगर जब वही मार रही हैं, तब हाय ! मैं क्या करूँ ?



परदेस की लीला

जब मेरी हृदयेश्वरी ही ने मुझे धता बता दिया तो तकदीर बेचारी क्या करे? इसलिए तो मैं कहता हूँ कि तलवार का मारा बच भी सकता है, मगर भई, अपनी श्रीमती जी की बेमुरौवती का मारा नहीं। चाहे कोई कुछ करे। यही सोच कर मैं चुपके से परदेस के लिए रवाना हो गया। क्या करता? मदन ने माना ही नहीं। स्टेशन तक खुद ही गाड़ी में बिठाल गया। यह मैं कैसे कहूँ कि भाग्य में श्रीमती जी से मिलना नहीं बदा था। अजी मिलना तो खूब होता, मगर जब वह मिलना चाहतीं तब तो! इसलिए भाग्यको मुफ्त में क्यों दोष दूं? खैर! सौ सुनार की तो कभी तो एक लोहार की भी होगी। बस, इसी ख्याल से मैं कानपुर जाकर एक सराय में अपने दिन काटने लगा।

मगर हर वक्त मुझे यही फिक्र थी कि कहीं मैं पकड़ न जाऊँ। जहाँ कहीं भी लाल पगड़ी दिखाई देती थी, वहीं मेरे हाश उड़ जाते थे, और सर पाँव रख कर बदहवास भाग खड़ा होता था। उस पर मुसीबत यह थी कि इन लोगों से कोई भी रास्ता खाली नहीं दिखाई देता था। मेरा दिल इतना डरा हुआ था कि सिवाय औरतों के मुझे हर आदमी से खटका रहता था। क्योंकि मैं समझता था कि ऐसा

न हो कि उनमें कोई खुफिया पुलिस का आदमी मुझे पकड़ने के लिए बदले हुए भेष में हो। इसलिये रोज ही मैं अपनी सूरत बदल कर बाहर निकलता था। इस तरह सूरत बदलने में मैं उस्ताद भी हो गया था और सरायवाले मुझे बहुरूपिया जानते थे। फिर भी दिल को चैन न था। यहाँ तक कि मुझे हौलदिल हो गया और मैं अपनी ही घबराहट से मरने लगा।

मैं रोज ही 'देशबन्धु' अखबार में अपने घर बुलाने वाले विज्ञापन को ढूँढ़ता था मगर उसे भी मानों मेरी श्रीमती जी के मिजाज की हवा लग गई थी कि मेरी आँखें पथरा भी गईं, मगर वह विज्ञापन कम्बख्त दिखाई न पड़ा और न पढ़ा इसी तरह महीना भर से ऊपर हो गया। रुपए भी बहुत से निकल गए! और मैं भेष बदलते-बदलते तङ्ग आ गया। कहाँ तक रूप बदलता? कपड़े मेरे पास बस इने-गिने थे। फिर भी दाढ़ी-मूछों से जहाँ तक सूरत बदली जा सकती है, वह सब कुछ कर चुका। दूसरे अड़ोस-पड़ोस के लोग जब मुझे बहुरूपिया जान गए, तो अब भेष बदलने से कोई फायदा न था। इसलिये यह सोचा कि कुछ दिनों औरत बन कर किसी दूसरी जगह ठिकाना करूँ। और लोगों को धोखे में डालने के लिए पान-पत्ते की दूकान रख कर कुछ दिन निबाह करूँ। यह राय मेरे मन में बैठ गई। इसलिए गिलट के छड़े, कुछ चूड़ियाँ, नकली बाल, साड़ी वगैरह किसी तरह चुपके-चुपके खरीद लिए। दो बड़े-बड़े पिल-पिले रबड़ के गेंदों की भी जरूरत हुई। उन्हें मैं कई दिन तक खरीद न सका। क्योंकि जब-जब मैं इस नियत से बिसातियों की दूकान पर गया, तब या तो वैसे गंद उनके पास न थे या किसी के पास दो एक नाप के न मिले, या कभी वहाँ पर एक न एक पुलिस वाला दिखाई पड़ गया। इसलिए मैंने दो थैलों की एक चोली बनाई और थैलों में भेष बदलनेवाले बालों का ठूसकर गुम्बद की तरह फुला दिया और उसी में बाल-सफा और बाल चिपकाने के मसाले की शीशियाँ भी रख दीं,

ताकि गुम्बदों में नुकीलापन हर वक्त कायम रहे और बिगड़ कर बिलकुल गद्दे की तरह चिपटा न हो जाय। उन थैलों की जड़ों में एक चोर-जेब भी बनाई। उसमें एक जेबी आइना, अपना छोटा सा उस्तरा और रुपए-पैसे भी रख लिये। क्योंकि औरत के भेष में मैं इन जरूरी चीजों को और रख ही कहाँ सकता था? इधर मैं चुपके-चुपके यह कार्रवाई करता जाता था और उधर दो-चार दिनों से मैं एक बुढ़िया पान वाली की दूकान पर जाकर रोज पान खाता था। क्योंकि उसकी बातों से मुझे मालूम हो चुका था कि जब तक उसकी लड़की दूकान पर बैठती थी, तब तक खूब बिक्री होती थी। मगर जब से वह अपनी ससुराल चली गई, तब से कोई खरीदार उसकी दूकान पर झाँकता भी नहीं। यह जान कर मैंने उसे सलाह दी थी कि अपनी लड़की की तरह कोई दूसरी औरत रख क्यों नहीं लेती? उस पर उसने कहा था कि मुझे तो कोई मिलती नहीं। अगर आप किसी का रखा दें तो मैं उसे सर-आँखों पर रक्खूँगी और आपको रोज मुफ्त पान खिलाऊँगी। तभी से मुझे औरत बन कर उसके यहाँ कुछ दिन काटने का ख्याल पैदा हुआ दाढ़ी-मूछ तो नित्य नया भेष बदलने की खातिर पहले ही से सफाचट कर रक्खे थे। इसलिए औरत बनने के लिए अपनी सूरत की कोई फिक्र न थी। बस, चोली कस कर उस पर जनानी बनियाइन पहन लेने और नकली बाल लगा लेने से मेरा ढाँचा पुलिङ्ग से बिलकुल स्त्रीलिङ्ग हो गया। फिर तो सलूका, चूड़ी, साड़ी और दो-चार नकली जेवरों के सहारे मैं परीछम बन कर दस बजे रात को उस बुढ़िया के यहाँ जाने के लिए चुपचाप सराय से निकल आया।

मगर बुरा हो इस कम्बख्त मुल्क का, जहाँ किसी भी नौजवान औरत का घर से अकेली निकलना बवाले-जान है। विलायती क्या, देशी ईसाई की मेम भी जहाँ चाहे तहाँ बेखटके आजा सकती है। कोई भी उससे आँख तक मिलाने की हिम्मत नहीं करता। मगर

हिन्दुस्तानी औरतों की पोशाक में न जाने कौन सी बात है कि अगर उनके साथ कोई रखवार न हो, तो उन्हें यहाँ के लोग अपने बाप का माल समझ कर इस बुरी तरह उनके पीछे पड़ जाते हैं कि इनके आगे कातिक के कुत्तों की भी दुम दब जाती है। अगर इसका मुझे पहले से कुछ भी ख्याल होता तो बाबा मैं औरत बन कर भूल कर भी अपने सिर ऐसी आफत न ढाता। क्योंकि मर्द के भेष में रहने से पुलिस वालों से गिरफ्तार होकर खाली जेलखाने ही जाने का डर था, मगर औरत की शकल में लुङ्गाड़ों के हाथ पड़ कर न जाने कहाँ से कहाँ पहुँच जाने का अन्देशा हो गया। इसलिए मैं मारे डर के थर-थर काप रहा था और दिल से उन औरतों की बहादुरी की शाबाशी देता था, जो मेले-तमाशों में बन-ठन कर झुण्ड की झुण्ड सिर्फ दिखलाने के लिए एक अधमरे बूढ़े या बच्चे रखवारे को लेकर इन गुण्डों से मुकाबला करने के लिए जाती हैं। बेशक वे बड़ी हिम्मत रखती होंगी, और हमारे यहाँ के मर्दों को बहादुरी की शिक्षा उन्हीं से सीखना चाहिए। मैंने भी अपने दिल को बहुतेरा समझाया कि जब वे औरतें ऐसे मौकों पर जरा नहीं घबड़ातीं, तब तुम्हारी क्यों नानी मरी जाती है। मगर भई, मेरी फिलॉसफी एक न काम आई और मैं सिर पर पाँव रख कर कभी इस गली में, कभी उस गली में अपनी जान बचाने लगा। मगर 'भेड़ जहाँ जाय वहीं मूड़ी जाए' की गति मेरी थी; क्योंकि जिधर ही जाता था उधर ही जिस तरह से मीठे पर मक्खियाँ भिनभिनाती हुई टूट पड़ती हैं, उसी तरह मेरी झाँझ की झनकार सुनते ही न जाने कहाँ से दस-बीस तमाशबीन पैदा हो ही जाते थे। कोई बोलियाँ कसता था, कोई तान उड़ाता था, तो कोई पीछा करता था. और कोई रास्ता चलते धक्के देता था। यहाँ तक कि इन लोगों की ज्यादतियों से मैं इतना परेशान हुआ कि दिल में ठान लिया कि अगर कोई अँधेरी गली मिली तो मैं फौरन इस औरत की पोशाक को खोल कर फेंक दूंगा और दिगम्बर होकर

खड़ा हूँगा। बला से मैं पकड़ा जाऊँ और मुझे जेलखाना जाना पड़े। इसकी कुछ परवा नहीं। क्योंकि इस मुसीबत से वह मुसीबत लाख दर्जे अच्छी था।

आखिर एक तङ्ग गली मिल ही गई, और वह अँधेरी भी थी। क्योंकि इसमें शायद दूकानें न थीं या होंगी भी तो बन्द हो चुकी थीं। मैं खुद ही इसमें मुड़ने वाला था। उस पर तमाशबीनों ने मुझे इस जगह इस तरह घेरा कि मुझे झख मार कर इसी में भागना पड़ा। मैं इसी फिक्र में था कि जरा यह लोग पीछे पड़ जायँ, तो मैं अपनी साड़ी उतार कर बगल में दबाऊँ, मगर इतने ही में दो आदमी दौड़ कर मेरे आगे हो गए और दो पीछे। इसके बाद मुझे पीछे एक इक्का आने की आवाज मालूम हुई। उस पर से एक आदमी कूदा और उसने चट मुझे गोद में उठा लिया। मेरा सिर चकरा गया। उस वक्त मैं इतना बदहवास हो रहा था कि मुझे कुछ भी पता न चला कि मेरे साथ क्या कारेवाई हो रही है। हाँ, कुछ देर के बाद अलबत्ता जान सका कि इक्के पर एक आदमी मुझे अपनी गोद में कसे हुए है। चारों ओर पर्दा पड़ा हुआ है और पर्दे के बाहर एक-एक आदमी इधर उधर बैठे हुए हैं। उस वक्त मेरे होश उड़ गए और मैं दिल ही दिल प्रार्थना करने लगा कि या ईश्वर, मुझे इस मुसीबत से उबारो। मैं औरत बनने का मज़ा अच्छी तरह से पा गया। यह औरतों ही को मुबारक रहे। मैं अब भूल कर भी उनका हक कभी छीनने का कोशिश नहीं करूँगा।

२

द्रौपदी ने भी अपना लाज की रक्षा के लिए कृष्ण जी को इतनी जल्दी-जल्दी और इतनी बार न पुकरा होगा, जितनी शीघ्रता से और जितनी दफे गुण्डों के बीच में इक्के पर बैठा हुआ मैं ईश्वर की गुहार लगा रहा था। इस मामले में मैं बिलकुल हिसाब की लिखावट के कायदे पर चल रहा था। क्योंकि अगर एक दफे दहाई के स्थान

पर उनका नाम लेता था तो दूसरी बार सिफर की जगह पर उन्हें याद करता था। इस तरह से दो दफे में दस तो तीन दफे में पूरे एक सैकड़े पर छलाँग मार देता था। तभी उन्होंने मेरी विनती भी इतनी जल्दी सुन ली और मेरे उद्धार के लिए झट एक कण्ठीधारी वृद्ध धर्मात्मा मेरे रास्ते में न जाने कहाँ से टपका दिया। उसने आते ही इक्केवान को डाँट बताई और गुण्डे इक्के पर से कूद-कूद कर एकदम हुर्रे हो गए।

मैं मूछों पर ताव देता हुआ—नहीं-नहीं घूँघट सँभालता हुआ—उतरा और ईश्वर को बड़ा लम्बा-चौड़ा धन्यवाद दिया—इसलिए कि उन्होंने बुड्ढों को पैदा करके दुनिया का सचमुच बड़ा उपकार किया, वरना जवानों के मारे यह न बचती। ये लोग कभी के इसे चर गए होते। इसीलिए तो जवानी दीवानी कही जाती है।

वृद्ध महाशय पग-पग पर 'सीताराम सीताराम' करते चले और मैं भी जिस तरह से विलायती पिल्ला देशी कुत्तों के डर के मारे दुम सिकोड़े अपने मालिक के कदमों से मिला चलता है, उसी तरह उनके पीछे हो लिया। फिर तो वह मेरे धर्म-पिता और मैं उनकी धर्म-पुत्री बन गया। और मैं उन्हें 'बाबा' और वह मुझे बड़े दुलार से 'बेटी' कहने लगे।

वह एक मकान के तीसरे मञ्जिल पर रहते थे। इसलिए वहीं जाकर मुझको भी रहना पड़ा। ऐसे वृद्ध और भलेमानुस रक्षक पाकर मैं भला उनका साथ किस तरह छोड़ सकता था? अगर वह मुझे अपने मकान में आश्रय न भी देते, तो भी मैं उनके पैरों पर रो-रोकर उनकी शरण में रहने को कहता। मगर सौभाग्य से इस बात की नौबत ही नहीं आई। वह बेचारे खुद ही मुझे बड़े आग्रह से अपनी रक्षा में रखने को तत्पर हो गए। क्यों न हों? दुनिया खराब होने पर भी परोपकारी लोग मिल ही जाते हैं। वरना दुखियों का बेड़ा कौन पार लगावे, इसलिए उनकी शरण पाकर मैं निहाल हो गया।

उस मञ्जिल में रहने के लिए सिर्फ एक ही कमरा था। उसके आगे एक छोटा-सा बराम्दा था, जिसमें चूल्हा देख कर जाना कि यह रसोई घर का काम देता है। उसके बाद थोड़ी सी खुली जगह थी। उसी में दो छोटी-छोटी कोठरियाँ थीं; जिसमें से एक गुसल-खाना और दूसरा टट्टी घर ऐसा दिखलाई पड़ा। मुझे दाढ़ी बनाने और रूप सँवारने के लिए रोज ही एकान्त की जरूरत थी, जिसके लिए गुसलखाना बहुत ही ठीक मालूम हुआ। यह सब देख-भाल कर मैंने दिल में ठान लिया कि मेरे बाबा अब अगर मुझे निकालेंगे भी तो मैं यहाँ से न निकलूँगा।

कमरे में दो चारपाइयाँ थीं। एक पर तो थकावट के मारे मैं खूब सिकुड़ कर सो गया। मेरे बाबा बड़े धर्मात्मा और पुजारी थे। बिना साढ़े पन्द्रह हजार राम-नाम जपे सोते न थे। इसलिए वह बड़ी सी माला लेकर आँख बन्द किए हरिनाम भजने लगे। मेरी चारपाई न जाने क्यों चरमरा उठी और मेरी आँख खुल गई। देखा कि मेरे बाबा मेरे पायताने बैठे हैं। मने तुरन्त अपनी टाँगें खींच लीं।

बाबा—"काहे बिटिया? नींद नहीं पड़ती? सो रहो मुन्ना!"

मैं—'मगर आप तो जाग रहे हैं।"

बाबा—"यह बात है? अच्छा, तो लो मैं भी सोए जाता हूँ।"

यह कह कर वह मेरे ही बगल में लुढ़क गए। अब मुझे मालूम हुआ कि यह चारपाई उनकी थी और इस पर गलती से मैं लेट गया था। इसी गलती को बेचारे ने मुझे इस सुन्दर तरकीब से जतलाई। वरना वह मेरा हाथ खींच के उठा सकते थे और हुक्म देते कि जा उस पर लेट। मगर नहीं, वह तो करुणा के रूप थे। भला उनसे कहीं ऐसा बेतुकापन हो सकता था?

मैं एक ही छलाँग में चारपाई के नीचे आ गया। वैसे ही वे भी हड़बड़ा के उठ बैठे और घबडा कर बोले—"अरे! क्या हुआ, क्या?"

मैं—"कछ नहीं।"

बाबा—"तब कहाँ जाती हो ?"

मैं—"माफ कीजिए, मुझे मालूम न था कि आप इस चारपाई पर सो जाते हैं। मैं उस पर जाता—अरे! जाता हूं।"

बाबा—"मगर-मगर-मगर उसमें बहुत खटमल हैं। इसी पर सो रहो बेटी।"

जब तक वह 'मगर-मगर' करते रहे, तब तक मैं दूसरी चारपाई पर लेट गया। पर उनकी परोपकारी आत्मा की सच्चे दिल से मैं तारीफ करने लगा; क्योंकि बेचारे मुझे खटमलों की तकलीफ से बचाने की खातिर अपने साथ सुलाने का कष्ट तक गवारा करने को तैयार हो गए। क्यों न हो, अगर कोई किसी पर भलाई करे तो इस तरह करे। ईश्वर ऐसे पुण्यात्माओं को स्वर्ग में फस्ट क्लास कम्पाटमेण्ट दे।

मेरी तकलीफ का अनुमान करके उन्हें नींद न पड़ी। इसलिए वह खुद उठ कर मेरे पास आए और बड़े लाड़-प्यार से बोले—"बेटी, तुम तो नाहक जिद करती हो। भला खटमल के मारे तुम्हें नींद कैसे पड़ेगी ? अच्छा, ठहरो मैं तुम्हारे पैर दाब दूं। ताकि किसी तरह तुम्हारी आँख तो लगे। नहीं तो मुझे चैन न आएगा।"

यह कह कर वह मेरी टाँगें दबाने लगे। मैंने उनका हाथ पकड़ कर मना किया—"राम ! राम ! आप यह क्या कर रहे हैं ?"

बाबा"बेटी ! अतिथि की सेवा करना परम धर्म है। धर्म पालन करने का ऐसा सुअवसर पाकर छोड़ दूंगा तो नरक में भी मुझे स्थान न मिलेगा।"

उफ ओ ! धर्म का इतना ख्याल भला इस कलजुग के जमाने में किस मर्दूद को हो सकता है ? यह मेरी तकदीर की खूबी थी, जो मुझे यह सज्जन मिले। आदमी काहे को—वह मुझे साक्षात् देवता जान पड़े। फिर ऐसे धर्मात्मा से पैर दबवाना मुझे कैसे अच्छा मालूम हो सकता था ? उस पर डर यह भी तो था कि उनके पास

ज्यादा देर तक रहने से कहीं मेरा भण्डा न फूट जाय। इसलिए मैं जल्दी से दूर खिसका, और हाथ जोड़ कर बोला—"मगर आप ऐसे बुजुर्ग से पैर दबवा कर मैं तो नरक में चली जाऊँगी।"

बाबा—"नहीं बेटो, तुम ऐसी सुन्दरियाँ वहाँ नहीं जा सकतीं। अगर जाने लगें तो वह नरक ही फिर काहे को रहे, स्वर्ग न हो जाय। इसलिए हाथ जोड़ता हूँ, मुझे अतिथि-सेवा करने दो। अब बुढ़ापे में मेरा धर्म न बिगाड़ो।"

बड़े धपले में जान पड़ गई। चौंक कर खिसकने में मेरा नकली बाल जरा सरक गया। मेरे प्राण सूख गए। जल्दी से घूँघट काढ़ के म चारपाई पर से कूदा। इस उचक-फाँद में कम्बख्त चोली भी ढीली हो गई। अब भला मैं उन्हें धर्म-पालन करने का अवसर किस तरह दे सकता था? इसके लिए उनके नरक जाने का मुझे अफसोस तो जरूर था—मगर करता क्या? विवश होकर मुझे उनके पास से दूर भागना पड़ा। इस भगदड़ में ताक मे चिराग गिर पड़ा और कमरा बिलकुल अन्धकारमय हो गया।

३

हमारे बाबा अधेरे में रात भर इधर-उधर टटोलते ही रहे। ईश्वर जाने मुझें ढूँढ़ रहे थे या दियासलाई! खैर, दियासलाई का हाल वह जानें, मगर कम से कम मैं तो उन्हें नहीं मिला। क्योंकि मैं निहायत इतमीनान से चारपाई के नीचे लेटा हुआ था, जहाँ उनकी या उनकी अक्ल किसी की भी पहुँच नहीं हुई। और इसी तरह पड़े-पड़े कुछ-कुछ सो भी गया।

कब तक सोया, यह पता नहीं। आँख खुली तो मालूम हुआ कि वह सचमुच मुझी को ढूँढ़ रहे हैं। मगर क्यों, इसका समझना जरा टेढ़ी खीर थी। क्योंकि अव्वल तो वह धर्मात्मा, दूसरे वृद्ध, तीसरे मेरे धर्म-पिता, चौथे वह खुद मुझे पुत्री कह चुके हैं और पांचवे मैं

असलियत में औरत जात भी नहीं। खैर कुछ भी हो, वह अब भी कमरे के भीतर कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाते थे और मेरे लिए आसमान-जमीन एक किए देते थे। खैरियत इतनी ही थी कि दिया-सलाई का ख्याल उन्हें सूझा ही नहीं। बस वह हाथ फैलाए हुए कभी किसी चीज से टकरा कर 'हाय बाप !' करते और कभी मुझे न पाकर 'हाय प्यारी !' के शब्द से प्यारी का दम सूखा जा रहा था। क्योंकि बकरी की माँ बेचारी कब तक खैर मनाए ?

"कहाँ हो, किधर हो, जरा बोल दो, तुम्हें मेरी कसम, कुछ तो जबान हिलाओ, कल तुम्हें लड्डू खिलाऊँगा, रेशम की साड़ी ला दूंगा, पैर के पाजेब बनवा दूंगा, मेरी लाड़ो, अब तो बोलो, देखो बहुत परेशान न करो, नहीं तो हाँ, धत्तेरे की, यह किस चीज की ठोकर लगी। हाय बाप रे बाप !" ऐसे ही जुमलों की अमृत-वर्षा होने लगी। मैंने झट अपने कानों में उँगली डाल ली, ताकि कहीं ऐसा न हो कि इसकी बौछार से मेरे स्त्रीपन का सतीत्व पिघल जाय। क्योंकि यह होती ही है ऐसी नाजुक चीज; न जाने किस वक्त और किसके सामने यह दगा दे जाय, कुछ ठीक नहीं है। यद्यपि मेरी श्रीमती जी ने इसका लोहा मनाने में कोई कसर उठा नहीं रक्खी है। यहाँ तक कि मेरे सब्र तक के छक्के छुड़ा दिए और इस बदनसीब दिल के तो अञ्जर-पञ्जर ही सब ढीले कर दिए। फिर भी मैं इस पाखण्ड को पाखण्ड ही कहूँगा। क्योंकि जो जिसको जितना ज्यादा मानता है, उसी पर उसकी शान उतनी ही ज्यादा बघारी जाती है। स्त्रियाँ अपने पतिगीरी के गुलाम बस इसीलिए तो रखती ही हैं कि उन पर वह इसकी धाक खूब जमा सकें। अगर हमारी श्रीमती जी इस मामले में दो-चार हाथ सभों से बढ़ गईं तो क्या ? यह मेरी जरूरत से ज्यादा उन्हें प्यार करने की सजा है। वह जिन्दगी भर मेरे तड़पने का तमाशा देखना चाहती हैं, और कोई बात नहीं है। तभी उनकी यह धाँधली है—वह भी सिर्फ मेरे ही लिए, क्याकि बेचारे

मर्द अपनी औरतों की निगाहों में जसे होते हैं, वही लोग जानती होंगी। खरी बात कहने से क्या फायदा ? मगर कम से कम मैं अपने बारे में खुद ही खूब जानता हूँ और दावे से कह सकता हूँ कि मैं अपनी श्रीमती जी की निगाहों में सब से छोटा नहीं, सब से बड़ा उल्लू हूँ। तब क्यों न वह मुझे जिन्दगी भर उल्लू बनाती रहें, दूसरा कोई उनकी गलियों पर नाचने वाला मुझ सा बढ़ कर कहाँ मिल सकता है ? इसीलिए भई, किसी के लाख समझाने पर भी मैं राई को पर्वत नहीं समझ सकता। मैं तो इस ढकोसले को काँच की चिमनी ही कहूँगा। देखने में सख्त जरूर, पर चिटख जाने का हरदम अन्देशा, चाहे श्रीमती जी या उनकी बिरादरी वाली सब मेरी इस बात से बिगड़ ही क्यों न जायँ। इसीलिए मैंने अपने स्त्रीपन के सतीत्व की मजबूती पर एतबार न करके, अपने कान और कसके बन्द कर लिए, ताकि पेट के भीतर गरमी पहुँच जाने से यह ताब न खा जाय। फिर तो जिस तरह श्रीमती जी मेरे रोने-चिल्लाने, तड़पने और छटपटाने पर कुछ भी पसीजना नहीं जानतीं, उसी तरह मैंने भी बूढ़े महाशय के 'लाड़ा-दुलारा' पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया और चुपचाप दम साधे पड़ा रहा।

एकाएक बूढ़े को दियासलाई की याद आई, क्योंकि मेरी उँगलियाँ जरा ढीली होते ही दियासलाई का शब्द उसकी बड़-बड़ाहट में मुझे सुनाई पड़ा। मेरे हाथ-पाँव फूल गए। मगर इस ख्याल से जरा मुझे तसल्ली हुई कि सवा पाँच फिट का मैं उन्हें नहीं मिल सका तो डेढ़ इञ्च की दियासलाई उन्हें इस अंधेरे में भला कब मिल सकती है ? मगर वह टटोलते हुए सीढ़ी के दरवाजे पर पहुँचे और उसे खोल कर चट सीढ़ियों पर हो रहे। मैं समझ गया कि हजरत बाहर से कहीं रोशनी का बन्दोबस्त करने गए हैं। मैं मारे घबड़ाहट के चारपाई के नीचे सिकुड़ गया। आखिर अल्ल ने मेरी मदद की और मैं भी वहाँ से निकल भागने के इरादे से दरवाजे पर पहुँचा। मगर हाय ! हाय !

सब मनसूबे चौपट हो गए। दरवाजा बाहर से बन्द मिला। मैं चकरा कर वहीं बैठ गया!

बाहर दो आदमियों की कनफुसकियाँ सुनाई पड़ीं। मेरे कान खड़े हो गए! रात की गहराई में उनकी बात-चीत धीमी होने पर भी कानों में घुसने लगी। उनमें से एक मेरे धर्म-पिता की आवाज थी।

"कैसे नहीं काबू में आती? नए आदमी के सामने औरतों में थोड़ी बहुत झिझक तो होती ही है। भला यह भी कोई घबड़ाने की बात है?"

"नहीं भाई, यह बात नहीं है। चिराग बुझ जाने से उसे छिप जाने का मौका मिल गया।"

"और जब तक आप ढूँढ़ते ही रहे? वाह रे उल्लू! यार तुम बुड्ढे हो गए, मगर अब तक तुम्हें अक्ल न आई। आखिर हो तो बाम्हन। तुम्हारे बुढ़ापे की आड़ में शिकार फँसाने के लिए हम लोगों ने तुम्हें अपने कामों में शरीक कर लिया था, मगर यह नहीं मालूम था कि इतने दिनों साथ रहकर भी तुम निरे गावदी के गावदी रहोगे।"

"गावदी कैसे कहते हो? तुम लोग जिस वक्त उसे इक्के पर बिठाले ला रहे थे, उस वक्त क्या मैंने कड़क कर तुम लोगों को नहीं डाँटा था और इस तरह उस पर एतबार जमा कर अपने साथ उसे यहाँ नहीं ले आया?"

"यह तो तुम कई दफे हम लोगों के सिखाने-पढ़ाने पर कर चुके हो, जिसमें मुहल्ले वालों को खबर न हो। इसलिए इस दफे भी किया तो कौन सा बड़ा कमाल किया? मगर असल मौके पर तो गधापन करके उसे भड़का दिया। अब कई दिन लगेंगे तो कहीं वह रास्ते पर आएगी। मैं सोचे हुए था कि आज ही उसे अपनों में मिला कर कल से गाहकों के सामने पेश करूँगा। दोनों औरतें, जो नीचे वाली कोठरी में हैं, अब पुरानी पड़ गईं। गाहक उनको पूछते तक नहीं। जो आता है वह नई ही की तलाश में और इधर सेवा-समिति वालों के मारे

ऐसा नाक में दम है कि शिकार फँसने नहीं पाता। मुद्दतों के बाद ईश्वर ने एक नई चिड़िया भेजी भी, तो तुमने अपने उल्लूपन से सब चौपट कर दिया। अब दो-तीन दिन तक क्या खाक फाँकोगे? आमदनी का तो देख रहे हो क्या हाल है। उस पर मकान का किराया अलग चढ़ा हुआ है।"

'तो खफा क्यों होते हो? मैंने उसे भगा तो दिया ही नहीं। वह अब भी पिंजड़े में बन्द है।"

"भगाया नहीं, न सही। मगर भड़का तो दिया, यह क्या कम बेवकूफी हुई? अब वह चौकन्नी हो गई। नाकों चने चबवाएगी। बहुत मुमकिन है कि तुम्हें देखते ही वह अब चिल्ला पड़े, फिर न जाने कौन सी आफत आए। क्योंकि मुहल्ले वाले भी हम लोगों के गुप्त पेशे की कुछ कुछ भनक पा गए हैं। इसीलिए हमारे उस्ताद कहा करते थे कि बेटा, औरत पर जब वार करे तब चूके नहीं, चाहे जो हो; वरना फिर वह हमेशा के लिए उसके साथ से गई।"

"मैं भी तो उसके चिल्लाने के ही डर से मुलायमियत से उससे पेश आ रहा था। बीच ही में चिराग बुझ जाय तो इसमें मेरा क्या कसूर?"

"वाह बे बुड्ढे। जा चूड़ियाँ पहन ले। इतनी उमर हो गई और तुझे इतना भी नहीं मालूम कि सुपारी चुटकियों से चूर होती है या हथौड़े से। औरत भी कहीं मुलायमियत से काबू में आती है। चले थे साले मुलायमियत से पेश आने। रह गये अपना सा मुँह लेकर और रोजगार बिगाड़ा अलग। यहाँ एक से एक बदमाश और पाजी औरतों से पाला पड़ चुका है, जो पहले शेर की तरह गुर्राती थीं। यहीं तक नहीं, बल्कि मेरे बाजू और उँगलियाँ दाँतों से एकदम चबा तक डाले हैं। मगर बाद को वही ऐसी भीगी बिल्ली बन गईं कि मेरे तलवे चाटने लगीं। उनसे हजारों रुपए कमाए और उनसे पिण्ड छुड़ाना मुश्किल हो गया। और क्या? ये लोग भी तो उसी से राजी

होती हैं, जो उन्हें राजी करने का ढङ्ग जानता है और हिम्मत रखता है × × × ।"

इतना सुनते-सुनते मेरा तो समूचा दम निकल गया। आगे कुछ सुनने की ताब ही न रही। मैं बीच ही में "हाय! बाप रे बाप" कहने के बदले "हाय! श्रीमती जी! हाय! श्रीमती जी!" करके चिल्लाने लगा और ढाढें मार-मार कर रोने लगा। क्योंकि दिमाग में तो हर वक्त श्रीमती जी बसी रहती हैं और जबान की नोक पर सदा उन्हीं का नाम धरा रहता है, तब भला 'बाप' का नाम किस तरह मुंह से निकले?

४

बड़ी खैरियत हो गई कि दरवाजे में किसी वक्त मेरा धक्का अनजाने लग जाने से नीचे की सिटकिनी आप से आप गिर गई थी, वरना यह बात घबड़ाहट में मुझे कभी सूझती ही नहीं और यह दोनों शिकारी कुत्ते मुझे उसी वक्त सफाचट कर जाते। मेरा रोना-धोना, चिल्लाना, गला फाड़ना एक न काम आता। क्योंकि इतना सर पीटा, इतना आसमान सर पर उठाया, मगर मुहल्ले वाले कमबख्त एक न चौंके। यह मुल्क ही ऐसा है, जहाँ औरतों के लिए रोना एक फैशन समझा जाता है। जिधर देखिए, उधर ही चिल्ल-पों की आवाज सुनाई देती है। कोई रास्ते ही में पैर पकड़ कर पें-पें कर रही है, कोई पालकी पर चढ़ते वक्त हाय-तोबा मचा रही है, कोई सास-जेठानी या ननद से लड़ कर पेंपियाती हुई नइहर भागती है, कोई मियाँ के डण्डों के नीचे उनके पुरखों को याद कर रही है। और इन मामलों में जब किसी के बाप की मजाल नहीं है कि वह जरा-सा भी चूँ कर सके, तब किसे पड़ी है कि किसी का रोना सुन कर पहले इसकी जाँच करे कि यह रोना जरूरतन् है या फ़ैशनेबुल, तब सोचे कि इसमें हाथ डालना चाहिये या नहीं? अगर उसमें किसी के बीच में पड़ने की जरूरत समझी भी जाय, तो भी हिन्दू-धर्म में ऐसी दुःखिनियों के

सर पर हाथ रखना नहीं, महापाप है। वह महापुरुष, जो चुपके-चुपके घर ही में सौतेली माँ-बेटी तक हजम कर जाते हैं और डकार भी नहीं लेते, वह भी ऐसे मामलों के नजदीक नहीं खड़े हो सकते। क्योंकि उनके पुण्यमय चरित्र पर इसमें कलङ्क लग जाने का बड़ा डर होता है; उस पर हिन्दू औरतें अबला कही ही जाती हैं, तब हिन्दू लोग उनकी मदद करके भला कैसे सबला बना सकते हैं? नीति-विरुद्ध बात है कि नहीं? यह हिन्दुओं का देश है, कोई म्लेच्छों का नहीं कि जहाँ किसी नारी का अपमान एक बदमाश भी नहीं देख सकता। यों स्त्री अपने मन से जो चाहे करे; मगर उसकी मर्जी के खिलाफ किसी प्रकार के अत्याचार की खबर पाते ही वहाँ सारी जाति बदला लेने के लिए उबल पड़ती है। मगर हमारी जाति ऐसी बेवकूफ नहीं है। यह तो इसके पुरस्कार में उस स्त्री ही को दान कर देती है। ऐसी उदारता? और क्या? औरतें बदमाशों ही के लिये तो बनी हैं। फिर यह कैसे उनका हक मारें? इसीलिए यहाँ मौके पर टुकुर-टुकुर "दीदम दम न कशीदम" का मन्त्र पढ़ा जाता है। तब भला मेरी पुकार पर वहाँ कौन दौड़ता? आखिर रो-धोकर चुप हो जाना ही मुनासिब मालूम हुआ।

"रो चुकी?"—मेरे चुप होते ही ऐंठूमल ने पूछा।

मैंने बौखला कर उत्तर दिया—"नहीं, अभी थोड़ा और बाकी है।"

इस पर मेरे बाबा की मधुर वाणी सुनाई पड़ी—"अच्छा बिटिया, चुपके-चुपके रो लो। चिल्लाने से क्या फायदा? तुम्हारा ही तो सर दुखेगा।"

ऐंठूमल यह सुनते ही ऐंठ गए। लगे बाहर ही मेरे बाबा को गाली देने—"अबे यह तेरी नानी है कि दादी, जो साले इस तरह में-में करने चला है? चल हट!"

बाबा—"भइया, मैं क्या करूं। यह बिटिया तो मेरे चित्त को भाय गई है। इससे कोई कड़ी बात कहना मैं महापाप समझता हूँ।"

ऐंठूमल ने फिर डपट बताई—"चुप रहोगे कि ढकेल दूं यहाँ से। सर पर चढ़ाने का नतीजा तो आँखें फाड़कर देख रहे हो, और अब भी तुम्हारा जी नहीं भरा ? उल्लू कहीं के, दूर हो सामने से !"

एकाएक मुझे हिचकी आने लगी। मैं समझ गया कि मेरी श्रीमती जी ने मुझे याद किया। चाहे वह स्वप्न में भी मेरा कुछ ख्याल न करती हों, मगर मैं अपने बेहया दिल को क्या करूँ। देखिए इतनी मुसीबतों पर भी यह कम्बख्त दौड़ कर उन्हीं चरणों में लिपटा है, जिनसे यह बार-बार रौंदा, कुचला और दुतकारा जाता है। धत् तेरे दिल को ऐसी तैसी !! बहुत रोका, बहुत थामा, फिर भी जी भर आया, बाँध टूट गया, आँखें डबडबा आईं और मैं इस दफे आप से आप सचमुच रोने लगा। और मेरे रोने की आवाज कुछ ऊँची भी हो गई।

ऐंठूमल—"अरे ! अरे ! यह तो फिर रोने लगी। चुप रह हरामजादी, कब तक रोएगी ?"

मैं—"सुबह तक।"

ऐंठूमल—"उसके बाद ?"

मैंने दिल में कहा कि श्रीमती जी का ध्यान करूँगा, मगर खैरियत हो गई कि मुँह से निकला कि—"ध्यान करूँगी।"

ऐंठूमल—"तब ?"

मैं—"तब इस घर में आग लगा दूंगी।"

मैंने यह कुछ सोच कर नहीं कहा था। योंही कह दिया था। मगर इसने मन्त्र सा अपना असर दिखाया। बड़े मियाँ की तो घिग्घी बँध गई और छोटे मियाँ की भी ऐंठ बिलकुल जाती रही। औरतों को काबू में लाने के उनके सारे हथकण्डे एकदम चूल्हे में चले गए। लगे हजरत दुम हिला-हिला कर खुशामदें करने कि ऐसा न करना। मगर ज्यों-ज्यों वे नरम पड़ने लगे, त्यों-त्यों मेरी जिद गर्म होने लगी। यहाँ तक कि मैं उसी वक्त आग लगाने के लिए सचमुच तैयार

हो गया और अपनी कुर्ती से दियासलाई निकाल कर बिछावन की चादर जला दी। आग की लपट दरवाजे की दरारों से देखते ही दोनों के होश उड़ गए मेरे बाबा सर पीटने लगे—"हाय बाप! मेरा नया कुर्ता खूँटी पर टँगा है।" एंठूमल के तो बदन का खून ही जम गया। भर्राई हुई आवाज में झुँझला कर बोले—"अबे साले, तुझे कुर्ते की पड़ी है और यह खबर नहीं कि पुलिस वाले कमरे में जली हुई लाश पाकर हम लोगों को बिना फाँसी पर लटकाए न मानेंगे। हाय! हाय! अब क्या करूँ?"

बाबा—"आयँ! फाँसी पर भी लटकाना पड़ेगा? तब भाई बाज आया मैं इस काम से। मेरा कुर्ता दिलवा दो, मैं अपने देश भाग जाऊँगा।"

बाहर तड़ से चपत की आवाज आई। मालूम हुआ दोनों आपस ही में मार-पीट करने लगे। उसके बाद फिर मेरी खुशामदें शुरू हुईं। हाथ जोड़े जाने लगे। कसमा-कसमी हुई, दोनों ने ईमान-धर्म, बाप-दादे, जोरू-अम्मा, बेटा-बेटी, सबकी कसमें खाकर कहा कि तुम इत्मीनान से रहो। अब हम दोनों में से कोई भी कमरे के भीतर कदम न रक्खेगें। सुबह को औरतों के जरिये से सीधा-पानी आ जायगा। मजेसे पका-पकाकर खाना। इसके बदले में मैंने कसम खाई कि "बेहतर है, तुम दोनों के अलावा चाहे जो यहाँ आए, मुझे परवाह नहीं है। मैं कुछ न बोलूँगी। मगर हाय! उस वक्त मुझे यह नहीं मालूम था कि इन दोनों को रोक देने से मेरी जान बची रहेगी या नहीं।

मेरे बाबा चलते-चलते इतना फिर ताकीद कर गए कि—"बिटिया मेरे कुर्ते को बहुत हिफाजत से रखना, भूलना मत।" इन कम्बख्तों से छुट्टी पाकर इतमिनान तो हुआ, फिर भी नींद नहीं आई। बार-बार यही ख्याल आता था कि देखो औरतें किन-किन तरकीबों से फँसाई जाती हैं। इन लोगों के साथ कैसे-कैसे दगाबाजी के बरताव और और अत्याचार किए जाते हैं, तब जाकर ये काबू में आती हैं। इन्हीं लोगों के लिए ईश्वर ने इतनी दगाबाजी दुनियाँ में दे रक्खी है, वरना

इसकी जरूरत ही क्या थी ? अगर ये लोग खुद सच्ची होतीं और इन्हें सच्चाई पसन्द होती, तो शायद इन्हें धोखा देने की किसी की भी हिम्मत नहीं पड़ सकती थी। अगर कोई इन्हें धोखा देता भी तो ये लोग धोखा खाकर कभी उसके तलवे नहीं चाट सकती थीं, बल्कि मौका पाते ही उसका सर लड़ा देतीं। जहाँ दो एक बार ऐसी घटनाएँ होतीं, तहाँ दुनिया से चालबाजी और अत्याचार का नामोनिशान आपसे आप मिट जाता। तब आज के दिन हमारे बाबा बिटिया-बिटिया कह कर अपनी जोरू बनाने के लिए यहाँ न लाते, क्योंकि दिल में उनके यह खटका लगा रहता कि बाद को मुझे अपनी जान से हाथ धोना पड़ेगा। वह मेरे ही साथ क्यों, बल्कि किसी की औरत के साथ ऐसा विश्वासघात नहीं कर सकते थे। वह साफ-साफ पहले ही अपनी नीयत उससे बता देते। अगर उसकी खुशी होती, इनका साथ देती, वरना अपना रास्ता लेती। मगर औरतें तो सीधी राह पसन्द ही नहीं करतीं। इसीलिए बेचारे मुझसे भी टेढ़ी चाल चले। मगर अफसोस, दूध के धोखे कपास खा गए। क्योंकि मुझे यह पाखण्ड कब पसन्द आ सकता था ? मैं कोई औरत तो था ही नहीं। अगर होता तो बात और थी। क्यों साहब ?

५

आँख खुली तो देखा कि खूब अच्छी तरह से धूप निकल आई है। तिमञ्जिले के आँगन में बम्बा लगा ही था, मजे से खूब हाथ-मुँह धोया। सीढ़ी पर का दरवाजा रात ही से बन्द था। मगर जब गुसलखाने में बैठा मूँछ-दाढ़ी बना रहा था, तो मुझे एकाएक हँसी की आवाज सुनाई दी। मैं भौंचक होकर चारों तरफ देखने लगा, पर कोई नजर न आया। बहुत कान लगाने पर कई आदमियों की बातचीत की भनक भी जान पड़ी। मगर समझ में न आया कि यह आवाज कहाँ से आती है। एकाएक मेरी नजर नीचे के कमरे में धुआँ निकलनेवाले गुम्बद पर पड़ी, जो उसी गुसलखाने के एक कोने में था।

मालूम हुआ यह गुसलखाना बाद को बना है। क्योंकि गुम्बद के चारों ओर की झंझरियाँ पानी छींटे जाने के कारण ईंट से बन्द कर दी गई थीं। मगर ऊपर की पलस्तर टूटी हुई थी और वहाँ की ईंटें भी अपनी जगह से कुछ खिसक गई थीं, जिसके कारण ऊपर की की दरारों में आँख लगाने से मुझे नीचे का कमरा साफ दिखाई दिया। वहाँ हमारे बाबा एक भद्दी शकल वाले नाटे और गठीले आदमी के साथ बैठे हुए थे। उस जगह दो गोरे रङ्ग की जवान औरतें भी थीं। पहला झलक में ये कुछ खूबसूरत जरूर जान पड़ीं, मगर गौर करने पर बहुत ही रौंदी-गौंजी मालूम हुईं। सूखे ओर पिचके गालों पर नित्य के व्यभिचार की फटकार बरस रही थी। एक और उस नाटे आदमी की गोद में सर रक्खे लेटी थी। दूसरी हमारे बाबा की मूँछें पकड़े कमरे में उन्हें चारों तरफ घुमा रही थी। आपस में हँसी दिल्लगी के साथ गाली-गलौज से भरी गन्दी बातें होती जाती थीं। अब जाना कि इन लोगों के बातचीत की भनक हो न हो इसी दरार से इस गुसलखाने में आ रही है। इसलिए मैं उस सूराख पर अपना एक कान चिपका कर बैठ गया और बीच-बीच में दरार से झाँकने भी लगा।

वाह री मुन्नी. वाह! उखाड़ ले साले की मूँछें। एक बाल न बचे। यह इसी काबिल है।'—यह आवाज रात के ऐंठूमल की सी थी, जिससे मालूम हुआ कि वह नाटा आदमी ऐंठूमल है।

"तू ही कौन बड़ा काबिल है। देख ली हेंकड़ी। पड़ गया जरा करारी से पाला, बस नानी मर गई। धत् तेरे की।'—यह गोदवाली औरत बोली।

"अरी रानी, तुम तो ऐसा न कहो। क्या वह दिन भूल गई, जब तुमने अपने दातों से मेरी बाँह का गोश्त साफ उड़ा लिया था? देखो, अब तक निशान बना हुआ है। और आज कैसी भीगी बिल्ली बनी मेरी गोद में लेटी हो। अगर मुझमें काबिलियत न होती तो तुम मेरे पास रहतीं और मेरे इशारों पर नाचतीं?"

"ले रहने दे, बहुत न बन। यह मुझे गोद में लेटाएँगे! हरामी कहीं का! जा अपनी अम्माँ को लेटा।"—यह कहती हुई गोदवाली इस तरह भड़क कर उठ बैठी मानों इसने कभी किसी मर्द का मुँह ही नहीं देखा है। उधर हमारे बाबा की मूँछें ज्यादा चरचराने लगीं, तो उन्होंने भी मुन्नी के सर के बाल पकड़े, मगर बेचारे न जाने कैसे गिर पड़े। फिर क्या था, मुन्नी उनकी छाती पर चढ़ बैठी और उनकी नाक पकड़ कर दनादन झटका देने लगी।

ऐंठूमल—"कहो बेटा, फूल झड़ रहे हैं?"

बाबा ने भी पिनपिना कर कहा—"और तुम कहो भतीजे, क्या अपनी अम्माँ का दूध पी रहे हो?"

गोदवाली—"अबे तू क्यों तरस रहा है? तेरी भी अम्माँ तो पास ही है। मार मुँह देखता क्या है? बुढ़ापे में फिर एक दफे जवानी आ जायगी।"

मुन्नी—"क्या कहा तूने हरामजादी?"

गोदवाली—"ए बहुत न दीदा दिखाओ, नहीं आँख फोड़ ही दूंगी।"

मुन्नी—"चल चल चुड़ैल, भला तू क्या बोलने को मरती है।"

गोदवाली—"अरी वाहरी अपने बाप की जोरू! उई! उई!

मुन्नी—"चुप छिनाल!"

गोदवाली—"चुप हरजाई!"

मुन्नी—"दुर लुच्ची!"

गोदवाली—"दुर कुत्ती!"

बस दोनों में जूती-पैजार हो गई। मगर बीच पड़ गए मेरे बाबा, इसलिए वार का झोंका इन्हीं पर पड़ा और मामला बड़ी जल्दी ठण्ढा पड़ गया।

ऐंठूमल ने इस झगड़े में कुछ भी चीं-चपड़ नहीं की। वह मजे से बीड़ी जला कर पीते रहे। कुछ देर के बाद अँगड़ाई लेकर बोले—

'देख बे बुड्ढे, अब तो मैं जाता हूं अपने काम पर, मगर अभी फिर जरा देर में देख-भाल जाऊँगा, जब तब तू इन औरतों को सीधा-पानी और बेहोशी की दवा देकर तिमञ्जिले पर भेज देना। वहीं ये लोग खाना बनाकर उसे खिलाएँगी। दोपहर को मुझे बेहोश जरूर मिलनी चाहिए—समझे! और आज रात को तुझे इन दोनों औरतों का अन्धा और बहरा बाप बनना पड़ेगा और मैं तेरा नौकर बनूँगा। मैंने एक महाजन के छोकडे को फाँसा है। वह ठीक आठ बजे यहा आयेगा। तू उससे अपने आँख की दवा ही की बातें करना और मुन्नी तथा रानी को पान-पत्ते से उसकी खातिर करने को कहना। उस वक्त तुम दोनों पहले ताक-झाँक, फिर हँसी-मुस्कराहट, उसके बाद चुहल और छेड़छाड़ से काम लेना। मगर बात-बात में शर्माना; लजाना, झिझकना और घबराहट दिखाना, जिससे उसे मालूम हो कि तुम लोग उसे दिल से चाहने लगी, मगर बाप के डर के मारे तुम्हारा वश नहीं चलता। इस तरह अपनी मुहब्बत के जाल में उसे खूब जकड़ना, ताकि वह भी बेताब होकर उसमें उलझ जाय। इशारों में बातचीत हो, सीढ़ियों पर छिप कर कनफुसकियाँ हों, जिसमें वह बावला होकर जो कुछ उसके पास हो, सब तुम्हारे कदमों पर आप से आप रख दे और आगे का भी सिलसिला जग जाए, × × × ।"

यहाँ की लीला देखकर मेरे होश उड़ गए। मुझसे अब वहाँ बैठ न रहा गया। घबड़ा कर उठा और कमरे में जाकर चारपाई पर गिर पड़ा। उफ! ओह! दुनिया में कैसी-कैसी चालबाजियाँ होती हैं—मैं यही सोचता रहा। एकाएक मुझे याद आया कि मुझे बेहोश करने की आज तकबीर की जायगी मैं भड़क कर उठा और निकल भागने के लिए दरवाजे की सिटकिनी खोली। वैसे ही रानी और मुन्नी खूब बनी-ठनी छमाछम करती, थालियों में खाना बनाने का सामान लिए कमरे में फट पड़ीं। मैं चिल्लाकर भीतर भागा। और कोने में दबक

गया। दोनों ठहाका मार कर हँसी और उसके बाद हाथ नचा-नचा कर लगीं एक से एक बेहूदे ताने कसनेः—

'अरी वाह री तेरी भड़क !"

"नई-नवेली है भाई !"

"बड़ी भोली हैं। खाली सत्तर घड़े का पानी पिये हैं।"

"तीन-पाँच कुछ नहीं जानतीं।"

"हाँ-हाँ तभी तो घूँघट के भीतर देखो कैसा आँखें चमक रही हैं। छिनालों का दीदा कहीं छिपता थोड़े ही है ? सत्तर चूहे खाकर बीबी हज को चली हैं।"

"पावें तो राह चलते अठारह मर्द कर लें। मगर बनती कैसी।"

"दिखाती है कि अभी दूध के दाँत नहीं टूटे। तेरे छिनालकी ! दाई से पेट छिपाने चली हैं।"

"हरजाइयों के कोई दुम-पोंछ थोड़े ही लगी होती है। बस, यही ढङ्ग होता है। यह न नखरा तिल्ला करेंगी तो क्या हमसे-तुमसे होगा। न बाबा !"

"ऐ बीबी जान; सुनती हो ! यह हाथ भर का घूँघट लटका के मर्दों ही के आगे अपना छिनरपन दिखाना ! हमारे आगे तुम्हारा यह गुन काम न करेगा। चलो इधर, लो चावल बीनो। सेंत-मेत ठूँसने नहीं आई हो, कुछ काम करो !"

"और नहीं तो क्या ? तुम्हीं नहीं कोई जग की अनोखी हो। हम लोग भी अपने माँ बाप की बड़ी दुलारी रह चुकी हैं। लो इसे पछोरो तब तक हम लोग जरा नहा लें।"

"अरी रानी, भले यह साबुन की बट्टी भी मिल गई। चलो आज खूब सर मल-मल के नहाएँ।"

"ठहरो, इनके विष के दाँत तो तोड़ती चलें।"—यह कहकर उसने एक तिपाई उठाई और उसके पाए से दरवाजे के नीचे और

ऊपर की सिटकिनियों के हुड़कों पर इस जोर के हूरे लगाए कि वे दोनों टेढे हो गए।

इसके बाद वह मुझे अँगूठा दिखाकर बोली—"एक तुम्हीं नहीं बहुत पढ़ी हो बीबी जान. यह इलिम मैं भी जानती हूँ। सलाम!"

दोनों नहाने के लिए बम्बे के पास चलीं गई। इन हरामजादियों की बात सुनकर मेरे प्राण यों ही ऊब-डूब रहे थे। उस पर भीतर से दरवाजा बन्द करने की सिटकिनी बेकार हो जाने से मेरे हाथ-पाँव फूल गए। सोचा कि जब तक ये चुड़ैलें नहा रही हैं, तब तक यहाँ से निकल जाऊँ, मैदान खाली है। मगर ज्यों ही दरवाजा खोला, त्यों ही देखा कि हमारे बाबा सीढ़ी पर सन्तरी की तरह अड़े खड़े हैं। वह मुझ देखते ही अपने झरोखेदार दाँत निकाल कर बोले—"कहो बिटिया, मिजाज अच्छा है न?"

मैं—"सब आपहीकी कृपा है महाराज, दण्डवत्!"

बाबा—"ओहो धन्यभाग्य! तब तो अब हम भी भीतर आते हैं।"

मैं—"काहे के लिए?"

बाबा—"तुम बड़ी सुन्दरी हो। तुम्हारा बड़ा प्यार मालूम होता है"

मैं—"अच्छी बात है—आइए! मगर जरा मैं आपका कुर्त्ता जला दूं तब।"

बाबा—"नहीं-नहीं, ऐसा गजब न करना। मैं हाथ जोड़ता हूँ, सवा रुपया गज की डोरिया है।"

मैं—"दो चाजों का प्यार दिल में एक साथ रह नहीं सकता, इसलिए चाहे आप अपने कुर्त्ते को प्यार करें या मुझे।"

बाबा—'तो भीतर आने की मुझे जरूरत नहीं है-मैं यहीं रहूँगा।"

इतने में बम्बे पर दोनों औरतें इस जोर से छाती पीट-पीट कर चिल्लाने लगीं, मानों उन पर एकाएक आसमान फट पड़ा। मैंने लपक कर देखा तो एकदम आवाक् होकर रह गया। दोनों औरतें जो पहले

कुछ खूबसूरत सी जान पड़ती थीं, अब भुतनी से भी बत्तर नजर आईं। उनके सर पर एक बाल न था। खोपड़ी एकदम बेल की तरह सफाचट होगई थी। भवों और पलकों पर के भी बाल सफा हो गये थे। दोनों की सूरतें एक अजीब जानवर सी बन गई थीं। दोनों पागल हो रही थीं। एका-एक बदहवास होकर अपने मुँह छिपाए वहाँ से भागीं। उसी वक्त ऊपर चिल्लाहट सुन कर न जाने कहाँ से ऐंठूमल जीने के दरवाजे तक पहुँचे ही थे कि यह दोनों भद-भद भागती हुई उन्हीं पर फट पड़ीं। वह उलट गए और बाप-बाप करते हुए तिमञ्जिले से एकदम नीचे तक जीने पर लुढ़कते चले गये। हमारे बाबा ने भी उनका कुछ दूर तक साथ दिया, क्योंकि झोंके में वह भी आ गए थे। लौटकर बम्बे पर गया तो मालूम हुआ कि मेरी 'बाल सफा' की टिकिया, जो रात की उछल-कूद में मेरी चोली से गिर पड़ी थी, उसी को उन हरामजादियों ने साबुन समझ कर अपने सर और मुँह पर खूब रगड़ा है। तब तो मैं मारे हँसी के वहीं लोट पोट गया। भई वाह! ईश्वर भी बड़े मसखरे हैं।

६

ईश्वर जाने हमारे बाबा और ऐंठूमल मरे या नहीं। मगर इतना इतमिनान तो मुझे जरूर हो गया कि अभी न भी मरे होंगे तो मरने की तैयारी करते ही होंगे। क्योंकि सीढ़ियों पर इतनी दूर तक लुढ़कने के बाद कोई हयादार भलामानुष जीता रहना गवारा नहीं कर सकता। उन दोनों औरतों से भी अब मुझे खटका न रहा। क्योंकि जब उनकी हुलिया बिगड़ गई तो वह कोने सा मुँह लेकर मेरे सामने या किसी के सामने आ सकती थीं? वहाँ से भागने का इतना अच्छा मौका पाकर भला अब उस जगह रुक सकता था? भूल कर भी नहीं। मगर एकाएक ख्याल आया कि मैं तो औरत के भेष में हूँ। रात में इस शक्ल से निकला था तो इस मुसीबत में फँसा और दिन

में इस पोशाक में बाहर जाऊँगा तो न जाने कौन सी आफत आए। उसपर खाने का सामान देखकर कम्बख्त भूख ने भी इसी घड़ी अपनी टाँगे फैलाईं। सब सहा जा सकता है मगर भई पेट की ज्वाला नहीं! इसकी अग्निवर्षा का ताप मैं एक दफे खूब उठा चुका था। अब दुबारा इसकी आँच में पड़ने का मुझे जीते जी शौक न था। बला से आबरू रहती या जाती। पेट बड़ा या आबरू? जब जान ही न रही तो आबरू लेकर कोई क्या करेगा? इसलिए भागने का ख्याल छोड़, बन्दा खाना बनाने की तैयारी करने लगा। और मजे से गर्म-गर्म खिचड़ी डट कर उड़ाई। मगर जब वहाँ से निकल भागने को तैयार हुआ, तब सब खाना-पीना हराम हो गया। क्योंकि उस वक्त जीने का दरवाजा बाहर से बन्द मिला। अपना सा मुँह लेकर रह गया इस नरक-कुण्ड में अभी बहुत कुछ भुगतना बाकी था। इतनी जल्दी भला किस तरह छुटकारा मिलता?

तकदीर ठोंक कर बैठ गया। मगर बैठे-बैठे तबीयत उकता गई। तब गुसलखाने की दरार से नीचे झाँकने लगा। ऐंटूमल जमीन पर चित्त पड़े कराह रहे थे। उनकी छोपड़ी और दोनों हाथों में हल्दी छोपी जा रही थी। मगर हल्दी लगाने वाला एक नया आदमी था। इसकी अब तक कुछ भी भनक नहीं मालूम हुई थी। आखिर यह एकाएक कहाँ से पैदा हो गया, कुछ समझ में नहीं आया। इतने में काँख-कूँख कर ऐंटूमल बोले—"भाई बैजनाथ, जान किसी तरह बची। मगर हाय! दोनों पैर से लुञ्ज हो गया। उठने-बैठने तक से लाचार हूँ। बुढ़ऊ की भी हालत देख ही रहे हो। यह कुछ चल-फिर सकते हैं, फिर भी अकेले इनके किए-धरे कुछ नहीं हो सकता। अब ऐसे वक्त तुम यहाँ आकर न रहोगे तो कैसे काम चलेगा?"

बैजनाथ—"भाई रहना तो मुश्किल है। दलालों का काम एक जगह अटकने से कही थोड़े ही चल सकता है? देखो जिस वक्त से इक्के पर से कूद कर गया हूं, तब से अब तक पांच रुपये बनाये।

क्योंकि रण्डियाँ देती हैं रुपये में चार आने और तुम लोग दो ही आने पर टकराते हो। तब तुम्हीं बताओ खाली तुम्हारे आसरे पर हाथ-पैर बाँध कर किस तरह रह सकता हूँ ?"

बाबा भी कराह कर धीरे-धीरे बोले—"भैया, तुम तो बस चवन्नी और दुवन्नी को देखते हो। मगर यह नहीं देखते कि बाजार में जिस चीज की ज्यादा माँग होती है, उस पर थोड़ा ही मुनाफा रक्खा जाता है। आजकल खानगी के आगे रण्डियों की पूछ कुछ भी नहीं है। तब वह लोग चरन्नी क्या, झख मार कर तुम्हें अठन्नी भी दे सकती हैं। मगर उससे तुम्हारा पेट थोड़े ही भर सकता है ? चलते हुए कारबार में एक पाई का भी मुनाफा बहुत होता है भैया।"

बैजनाथ—"रहने दो महाजन, तुम्हारी खाली चिकनी-चुपड़ी बातों से भी पेट नहीं भर सकता। हम लोग ढूँढ़-ढूँढ़ के गाहक न लाएँ तो तुम्हारे चलते हुए कारबार मालूम हो जाय।"

ऐंठूमल ने बाबा को चुप रहने के लिए घुड़का। मगर गुस्से में न जाने टाँगें हिल गईं या खोपड़ी कि बेचारे घण्टा भर तक आह! ऊह! करते रहे। उसके बाद धीमे स्वरों में बैजनाथ से कहने लगे—"भाई, सच कहते हो। तुम्हारी ही बदौलत रोटियाँ चलती हैं। इसीलिए तो इस वक्त तुम्हारी मदद का और भी मुहताज हूँ। मैं कहीं आ-जा नहीं सकता। वह दोनों औरतें न जाने कहाँ भाग गईं। खैर, अच्छा हुआ चली गईं, क्योंकि वह अब किसी काम की न थीं। मुझे खुद ही उन्हें निकालना पड़ता। मगर जो नई फँसी है, वह कम्बख्त पुट्ठे पर हाथ नहीं रखने देती। उस पर डर यह है कि यह न जाने किस वक्त यहाँ से चल दे। कोई रोकने वाला नहीं है। इसीलिए कहता हूँ कि भाई, तुम्हारा यहाँ रहना बहुत जरूरी है। क्योंकि जब तक कोई दूसरी नहीं मिलती, तब तक बस यही सहारा है। यह भी अगर हाथ से निकल गई तब कैसे काम चलेगा ?"

बैजनाथ—"वाह! इस ख्याल से मुझे रहने के लिए कहना बिल-

कुल बेकार है। क्योंकि हिन्दू-औरत और वह भी पर्दे वाली हम लोगों के चङ्गुल में फँस कर फिर कहीं जा नहीं सकती। ईश्वर भला करे इस हिन्दू-जाति का, जिसकी बदौलत हम लोगों के रोजगार में कभी बट्टा लग ही नहीं सकता। हिन्दू-औरत ने जहाँ एक दफा घर के बाहर कदम रक्खा, तहाँ वह लौट कर न नइहर जा सकती हैं और न ससुराल; और न उसका किसी भले मनुष्य के यहाँ ठिकाना ही लग सकता है। बड़े से बड़े हिन्दुओं में इतना दम ही नहीं कि वह किसी भागी हुई औरत को शरण दे सके। यह हमी लोगों का जिगरा है, जो ऐसी औरतों को खातिर से रखते हैं और ये झख मार कर हमारे साथ रहती भी हैं। न रहें तो करें क्या? इस मुल्क में आजाद रहकर इन लोगों के पेट पालने का कोई सहारा भी हो? तब तब यह भाग कर कहाँ जायँगी, यह तो सोचो? हाँ, अलबत्ता इन लोगों का मुसलमानों के यहाँ ठिकाना लग सकता है। मगर जवानी उतरने पर वहाँ से भी दुतकारी जाकर आखिर में इन्हे लकड़ी ही बेचनी पड़ती हैं। इसलिए खातिर जमा रक्खो, यह कहीं जा नहीं सकती।"

अरे! यह तो सभों का गुरूघण्टाल निकला। अब तो मेरे दिल में भी इसकी बात बैठ गई। बेशक इसने बिल्कुल सच' कहा। लोग नाहक स्त्रियों को दोष देते हैं और गुण्डों और बदमाशों को कोसते हैं! जब हम अपना धन खुद लुटावें तो उसको ग्रहण करने में लुटेरों का अपराध क्या? जब हमारी जाति ने स्त्रियों का स्थान समाज में भेड़ बकरी से भी बदतर दे रक्खा है, वह जिधर चाहें उधर हाँकी जा सकती हैं। जिस खूँटे में चाहें उसी में बाँध दी जा सकती हैं, जहाँ जरा यह बहकीं या खूंटे का बन्धन ढीला हुआ, तहाँ यह काँजीहाउस ही में जाकर दम लेने के लिए मजबूर की जाती हैं। क्योंकि मुल्क या समाज में इन लोगों के लिए कहीं भी तो खड़े होने तक का ठिकाना नहीं है। आज अगर मैं भी औरत होता तो मुझे भी झख मार कर

यहीं रहना पड़ता। इस कम्बख्त पेट की खातिर जो कुछ भी दुर्दशा झेलनी पड़ती, सब झेलता ही। इसके सिवाय और चारा ही क्या था ?

ऐंठूमल कुछ देर सोच कर बोले—"मगर भई, यह औरत अजीब ढङ्ग की है। कम्बख्त पास नहीं फटकने देती। और उस पर ऐसी भड़कती है कि इससे हर वक्त होशियार रहने ही में भलाई है।"

बैजनाथ—"अजी जाओ भी। यह तो उसका चोंचला है, और वह भी तुम लोगों की बेवकूफी की वजह से। अरे! जब यह लोग ससुराल जाती हैं तब तो हाय-तोबा मचाती ही हैं और ऐसा मालूम होता है कि इनका वश चले तो वहाँ कभी न जायँ। जब पहले पहल खुद अपने खसम से मिलती हैं, तो कैसी ऐंठती और अकड़ती हैं, मानों ये कभी जिन्दगी में उससे बोल ही नहीं सकतीं, मगर धीरे-धीरे वही ससुराल ही उनका अपना घर हो जाता है और वही खसम मियाँ-मिठ्ठू! इसलिए शुरू-शुरू में भड़कना तो इन लोगों का स्वभाव ही है। इसका कभी ख्याल ही न करना चाहिए। अभी तो यह तुम लोगों से ऐंठेगी, भड़केगी, हजार नखरे दिखलाएगी ही। आखिर यह लोग भी आदमी परखना चाहें इसी तरह परखती हैं। जो इनकी भड़क में आ गया उसको यह निकम्मा जानकर धता बता देती हैं और जिसका लोहा मान जाती हैं, बस उसके आगे सर झुका देती हैं, फिर उसके इशारों पर नाचती हैं। जब जङ्गली जानवर पालतू बना लिए जाते हैं, तब यह कौन खेत की मूली है? जरा सब्र से काम लो। जल्दीबाजी ठीक नहीं। आप से आप राह पर आ जायगी।

इसकी बातें सुन कर एकाएक जी में आया कि इससे चिल्ला कर पूछूँ कि हमारी श्रीमती भी कभी मुझसे नर्म पड़ेंगी? क्योंकि इसकी बेढब जानकारी देख कर मैं जान गया कि बस यही उनका ठीक-ठीक हाल बता सकता है और किसी के बाबा में दम नहीं है कि उसकी नस पहचान सके। मगर मुँह की बात मुँह ही में रही, तब तक

ऐंठूमल झुँझला कर बोल उठे—"मुझे उनसे प्यार या मुहब्बत नहीं करना है कि उसके नखरे उठाता जाऊँ और सब्र से काम लूँ। ऐसे उल्लू दूसरे होंगे। मुझे टके कमाना है। इसलिए मैं वक्त खराब करके अपना घाटा नहीं कर सकता। अगर तुम समझते हो कि यह पालतू बनाई जा सकती है, तो भाई तुम्हीं उसके पास जाकर उसे किसी तरह राह पर लाओ। यहाँ नहीं रह सकते तो कम से कम इतना ही काम करते जाओ।"

बैजनाथ—"नहीं भाई, मुझे माफ करो।"

ऐंठूमल—"क्यों?"

बैजनाथ—"मैं उसके सामने जाना नहीं चाहता।"

बाबा का चेहरा कुछ खिल गया। सर उठा कर पूछा—"काहे भया, कुछ कहो तो।"

बैजनाथ—"ऐसे ही।"

ऐंठूमल—"बस, दूसरों ही को राह बताना जानते हो?"

बाबा—"मुझको तो बहुत बुरा-भला कहते थे, अपनी बेर नानी क्यों मरने लगी—बोलो भया!"

बैजनाथ—"भई, मैं दुनिया में किसी चीज से घबड़ाता हूँ तो बस जादू-टोना से, क्योंकि मुझ पर इसका बड़ी जल्दी असर होता है, इसीलिए मैं टोना मारने वाली औरतों से हमेशा दूर रहता हूँ।"

बाबा-"अरे! तो क्या यह जादू जानती है? तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

बैजनाथ—"सुना है उन दोनों औरतों की एकाएक खोपड़ी सफाचट हो गई। और अब भी पूछते हो कि वह जादू जानती है? अजी यह जादू नहीं तो है क्या? इस वक्त वह बिगड़ी हुई है ही। कहीं मैं सामने पड़ जाऊँ और वह टोना मार दे तब क्या हो?"

बाबा ने बड़ी गम्भीरता से उत्तर दिया—"बेशक, यह जादू ही की करामात थी। हो न हो, वह जरूर जादू जानती है। बाप रे बाप बहुत बचा। मगर हाय! कहीं वह मेरे कुर्ते पर न फूक मार दे?"

ऐंठूमल—"रहने दो। जरा उठ-बैठ सकता तो उसका जादू-फादू सब निकाल देता, मगर अब क्या करूँ ? तुम्हारा भरोसा था। लेकिन तुम भी मुँह चुराने लगे। कम्बख्त मिली भी तो ऐसी आफती। जी चाहता है कि हरामजादी को अभी कच्चा चबा जाऊँ। हाय बाप! जान निकल गई। उफ ओ! मर गया।"

बाबा—"लो, और उसे हरामजादी कहो। उसने बैठे ही बैठे देखो ऊपर से मन्त्र पढ़ दिया और यहाँ मिजाज ठिकाने हो गया।"

बैजनाथ—"जब साँप ऐसे जहरीले जीव को पाल कर लोग पैसा पैदा कर ही लेते हैं, तो जादू-टोने वाली औरत को मुट्ठी में कर लेना कोई बड़ी बात नहीं। मगर हाँ, इसके लिए वक्त चाहिए। अगर इतना सब्र नहीं कर सकते हो तो कहो इसे किसी पच्छाहीं रँडुए के हाथ बिकवा दूं। क्योंकि उधर औरतों की शायद कमी की वजह से इन लोगों की जोरू बड़ी मुश्किल से नसीब होती है। बालू से तेल तो मैं निकाल लेता हूँ तो क्या इससे रकम नहीं पैदा कर सकता ? उस तरह न सही, इस तरह सही। मगर आधे का साझीदार बनाओ तब।"

ऐंठूमल—"मञ्जूर है। यही करो। किसी तरह मिहनत तो सफल हो।"

बैजनाथ—"अच्छी बात है। आज ही लो।"

७

मैं अपनी बिक्री का हाल सुन कर काँप उठा—या ईश्वर, क्या यहाँ यह भी होता है ? उफ ओ! इस समाज में चुपके-चुपके जो न होता हो वही थोड़ा है। औरतों को अगर समाज ने कुछ भी आदर का स्थान दिया होता तो भला ये इस तरह भेड़-बकरी की तरह बेची जा सकती थीं या इनके रूप की इतनी दूकानें खुलीं होतीं ? जानवर तक भी कोई ऐसा भी कोई काम अपने आप नहीं कर सकते, जिसके करने के लिए उनका दिल गवारा नहीं करता। फिर औरत तो

आदमी है—एक समझदार प्राणी हैं। मगर अफसोस, इस अभागिनी को अपने पेट की खातिर अपने दिल का खून करके सब कुछ करना पड़ता है। क्यों ? इसीलिये कि हमारे अन्धे समाज ने इसे बिलकुल मुहताज बना रक्खा है। इसे कोई भी अधिकार या किसी तरह की स्वतन्त्रता नहीं दी है।

बैजनाथ के जाने के बाद ऐंठूमल ने बाबा को पास बुलाकर कहा—"देखो अगर तीर लग गया तो पौ-बारह है। आज सौ-पचास रुपये हाथ लग ही जायँगे। इसकी बिक्री की बातचीत के वक्त मैं राजी हो जाऊँगा। मगर तुम न राजी होना, ताकि दाम बढ़े। पहिले खरीदार को भाँप लेना कि वह किस किस्म का आदमी है, तब वैसी बातचीत करना। बिना समझे-बूझे उल्लू की तरह कुछ बक-बक न करने लगना।"

बाबा—"मैं उल्लू की तरह कब बक-बक करता हूँ।"

ऐंठूमल—"यही तो तुम्हारा गधापन है। जो कहता हूँ, उसे सुनते नहीं। पहले उसे ऊपर ले जाकर इस औरत को दिखाना।"

बाबा—"नहीं, नहीं, मैं वहाँ नहीं जा सकता। कहीं टोना मार दे ?"

ऐंठूमल—"उल्लू हो। बुड्ढों को टोना नहीं लगता ! तुम्हें वहाँ जाना पड़ेगा। नहीं तो एक कोड़ी न दूंगा।"

बाबा—"मगर.....मगर—वह मुझे देख कर और भड़केगी।"

ऐंठूमल—"यही तो मैं चाहता हूं। खरीदार उसका भड़कना देखकर उसे और भी खरा और नया माल समझेगा। अनाड़ियों पर औरतों के चोचले अपना खूब रङ्ग जमाते हैं ?"

बाबा—"मगर कोई महाजन का छोकड़ा भी तो आज आने वाला है ?"

ऐंठूमल—"हाँ, यह तो मैं भूल ही गया था। अगर वह पहले आ गया तो उससे भी कुछ न कुछ ले मरना जरूरी है। मगर अब

मुहब्बत के जाल में उसे फँसाना बेकार है। क्योंकि अव्वल तो इस औरत पर कोई बस नहीं है और न यह उस रङ्ग पर चढ़ेगी, और दूसरे शायद आज ही यह चली जाय। इसलिए उस छोकड़े को ठगने का दूसरा उपाय करना चाहिए। तुम पहिले छिप जाना। मैं उसे ऊपर जाने के लिए इशारा कर दूंगा। जैसे ही वह कुण्डी खोल कर भीतर जाय वैसे ही तुम डण्डा लेकर भीतर घुसो और उसे खूब धमकाओ कि मेरी लड़की के पास क्यों आया। उस वक्त डर में आकर तुम जो कुछ कहोगे वह अपनी जान छुड़ाने के लिए मान लेगा। तुम उसके सब कपड़े उतरवा, उसे एक लंगोटी पहिना कर निकाल देना। इस तरह उसकी सोने की जञ्जीर और नकदी रकम जो कुछ उसके पास होगा, सब हाथ लग जायगा।"

बाबा—"मगर वह जादू जानती है।"

ऐंठूमल—"तुम्हारी ऐसी तैसी। फिर वही बात? हाय! जो कहीं मैं जरा उठ पाता तो तुम्हें बताता—उल्लू कहीं के! हाय! बाप रे बाप, बहुत दर्द करने लगा। आह!"

उफ! ऐसी धोखेबाजी और दगाबाजी की बातें सुन कर मेरा तो दम सूख गया। मनुष्य कहाँ तक नीच, मक्कार, पापी और बदमाश हो सकता है? अपने मतलब के लिए क्या नहीं यह कर सकता? हाय! सब कुछ उस नरक-कुण्ड में पड़कर देखा। अब यहाँ की लीला और अधिक देखने का मुझमें दम न रहा। मेरा सर चकरा उठा और मेरी आँखों के सामने अँधेरा छा गया। मैं वहीं जमीन ही पर पड़े-पड़े सो गया।

आँख खुली तो देखा कि शाम की अँधियारी गहरा गई है। मैं उठ कर कमरे में गया। देखा वहाँ लालटेन जल रही है। मगर बाहर का दरवाजा फिर बन्द मिला। मैंने अपने बाबा का प्यारा कुर्ता ढूँढ़ा तो उसे गायब पाया। समझ गया कि यह कारस्तानी हमारे बाबा की है। डर के मारे हजरत सामने तो न आये, मगर लालटेन

रख कर कुर्ता ले गए। चलो जादू के धौंस ने मेरा बडा उपकार किया, वरना ईश्वर जाने मुझ पर इस वक्त कौन सी आफत आती !

मैं ईश्वर से मनाने लगा कि बैजनाथ के आने के पहले वह महाजन का छोकड़ा आ जाय। क्योंकि मैं दिल में ठान चुका था कि जैसे वह अपने कपड़े उतार कर यहाँ से जाय वैसे ही मैं उसे लेकर भागूँ। क्योंकि उस वक्त दरवाजा भी खुला होगा और हमारे अधमरे बाबा में इतना बूता ही नहीं है कि मुझे रोक सकें। उस पर बाहर जाकर चट मर्दानी पोशाक पहन लूँगा। बस, यह एक अड़चन मेरे भागने में थी। क्योंकि औरत बनने का काफी मजा उठा लेने के बाद अब जीते जी फिर इसका कभी शौक नहीं कर सकता था—चाहे इसके लिए फाँसी ही क्यों न हो जाय ?

घण्टा भर तक पड़े-पड़े मैं अपने भागने ही का उपाय सोचता रहा। इतने में सीढ़ियों पर किसी के आने की आहट मालूम हुई। मैंने लालटेन को जरा मद्धिम करके ऊँचे पर रख दिया और खुद चारपाई के नीचे दबक गया।

दरवाजा खुला। एक नौजवान और खूबसूरत छैला वार्निश का पम्प, रेशमी किनारे की लम्बी धोती, काशी-सिल्क का बङ्गाली कुर्ता पहने, गले में चादर डाले, बीच में ऐंठनदार माँग काढ़े, मुंह में गिलौरियाँ दबाए भीतर आया। कमरा ऑटो दिलबहार की खुशबू से महक उठा। उसने आकर चारों तरफ आँखें फाड़-फाड़ कर देखा उसके बाद एक बारगी बोल उठा—"अरे ! यहाँतो कोईभी नहीं है।"

वैसे ही सीढ़ियों पर से आवाज आई—"मैं तो हूँ।" और इसके साथ ही हमारे बाबा डण्डा टेकते चौखट पर दिखाई दिए।

छैला हक्का-बक्का होकर उनकी तरफ देखने लगा। उन्होंने अपने हिसाब बहुत डपट कर पूछना चाहा, मगर कन्धे की चोट के कारण या जादू के ख्याल से आवाज मरी बिल्ली सी निकली—"क्यों जी, तुम कौन हो ?"

मगर इतने ही में छला की घिग्घी बँध गई, वह खाली "मैं-मैं-मैं" करके रह गया।

बाबा कुछ ताव में आ गए। जरा और जोर लगा कर बोले—"अबे बकरी की तरह मेंमियाता क्यों है? साफ बोलता क्यों नहीं?"

छैला बेचारा बोले क्या? उसकी तो हालत बस यही हो रही थी कि—

पतलून धो रहे हैं वह तलवार देख कर।
क्या हाल होगा अब्बए खमदार देखकर?

बाबा—"अबे तू यहाँ क्या करने आया?"

छैलाराम इतनी देर में सँभल गए। निहायत सोच-समझ कर जवाब दिया—"मैं अपने एक दोस्त से मिलने आया था। मगर मालूम होता है कि मैं धोखे से किसी गलत मकान में चला आया। खैर माफ कीजिएगा—आदाबअर्ज!"

बाबा—"तेरे आदाबअर्ज की ऐसी-तैसी। चले कहाँ हजरत, अभी तशरीफ रखिए।"

छैला—"क्यों?"

बाबा—"पहले अपनी बदमाशी का तो मजा चखते जाओ। उतारो अपने सब कपड़े। नहीं तो बुलाता हूँ पुलिस को।"

छैला—"बदमाशी कैसी?"

बाबा—"मैं खूब जानता हूँ, तू मेरी लड़की के पास आया था।"

छैले के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। बौखला कर बोला—"लड़की? कहाँ है लड़की? × × ×"

इतने में सीढ़ियों पर से आवाज आई—"अजी गुरु जी, कहाँ आज छिपे हो भाई?"

बाबा मुँह फेर के पीछे देखने लगे। और छैलाराम यह आवाज सुनते ही ऐसे बदहवास हुए कि घबड़ा कर उसी चारपाई के नीचे घुस आए, जिसके नीचे मैं छिपा हुआ था। वह मुझे वहाँ पाकर पहले तो

चकराया, मगर बाद को वह मेरी आड़ में इस तरह दबकने लगा कि वह मेरे पेट के नीचे घुस जायगा। मेरी तरफ हाथ जोड़ कर उसने मेरे कान में चुपके से कहा—"ईश्वर के लिए मेरी जान बचाओ—मेरे चचा आ रहे हैं।"

मैंने दिल में कहा—"सीताराम कहो! अब मजा आया।"

एक मोटे तगड़े नाटे डील के महापुरुष कमरे में आ धमके। मगर हमारे बाबा अपनी जगह से तिल भर न हटे। इनके मुँह से खाली "जय हो सेठ जी" के सिवा और कुछ न निकला, क्योंकि इसके चेहरे पर न जाने क्यों एकाएक अजीब बदहवासी छा गई।

सेठ जी कमरे में आकर इस तरह खड़े हो गए कि मानो उन्हीं के बाप का मकान है। हजरत कोने में पान की पीक थूक कर बड़े तपाक से बोले—"कहो भाई गुरु जी, अच्छी तरह! कल शम्बुल बाई के यहाँ रात ही मैं बैजनाथ से सुना कि आपके यहाँ कोई नया माल आया है। मैंने भी कहा कि चलो आज बानगी तो देखते आएँ। कैसा है, दिखाओ तो सही। हाँ लाओ जरा बोहनी करें।"

वाह री आपकी बोहनी! क्यों न हो? वेश्यागमन की लीला कितनी अपरम्पार है, अब जाना। उसी औरत को बाप भी गले लगाये और बेटा भी! बलिहारी है ऐसे मनुष्यत्व की! तकदीर में यह भी देखना बदा था। खैर! यही बड़ी खैरियत थी कि मैं औरत न था, वरना मुझे भी पारापारी कभी कुछ और कभी कुछ बनना ही पड़ता—क्यों साहब?

हमारे बाबा के मुँह से बोल न फूटा। शायद लड़की वाली उनकी धौंस का भण्डा फूट जाने से वह बौखला कर बगलें झाँकने लगे। मगर सेठ जी निहायत बेतकल्लुफी से उसी चारपाई पर अल्दायन की तरफ लद से बैठ गए, जिसके नीचे हम लोग थे। उनका भारी बोझ बेचारी अल्दायन की पतली और पुरानी रस्सियाँ सँभाल न सकीं। दो-चार तड़ातड़ टूट ही गईं। कम्बख्ती के मारे ठीक उनके नीचे



मैंने चारपाई किसी तरह खड़ी करके उनके पीछे कस के एक लात जमा दी। यह युक्ति काम कर गई। फिर क्या था, हजरत मुँह के बल

चकराया, मगर बाद को वह मेरी आड़ में इस तरह दबकने लगा कि वह मेरे पेट के नीचे घुस जायगा। मेरी तरफ हाथ जोड़ कर उसने मेरे कान में चुपके से कहा—"ईश्वर के लिए मेरी जान बचाओ—मेरे चचा आ रहे हैं।"

मैंने दिल में कहा—"सीताराम कहो! अब मजा आया।"

एक मोटे तगड़े नाटे डील के महापुरुष कमरे में आ धमके। मगर हमारे बाबा अपनी जगह से तिल भर न हटे। इनके मुँह से खाली "जय हो सेठ जी" के सिवा और कुछ न निकला, क्योंकि इसके चेहरे पर न जाने क्यों एकाएक अजीब बदहवासी छा गई।

सेठ जी कमरे में आकर इस तरह खड़े हो गए कि मानो उन्हीं के बाप का मकान है। हजरत कोने में पान की पीक थूक कर बड़े तपाक से बोले—"कहो भाई गुरु जी, अच्छी तरह! कल शम्बुल बाई के यहाँ रात ही मैं बैजनाथ से सुना कि आपके यहाँ कोई नया माल आया है। मैंने भी कहा कि चलो आज बानगी तो देखते आएँ। कैसा हैं, दिखाओ तो सही। हाँ लाओ जरा बोहनी करें।"

वाह री आपकी बोहनी! क्यों न हो? वेश्यागमन की लीला कितनी अपरम्पार है, अब जाना। उसी औरत को बाप भी गले लगाये और बेटा भी! बलिहारी है ऐसे मनुष्यत्व की! तकदीर में यह भी देखना बदा था। खैर! यही बड़ी खैरियत थी कि मैं औरत न था, वरना मुझे भी पारापारी कभी कुछ और कभी कुछ बनना ही पड़ता—क्यों साहब?

हमारे बाबा के मुँह से बोल न फूटा। शायद लड़की वाली उनकी धौंस का भण्डा फूट जाने से वह बौखला कर बगलें झाँकने लगे। मगर सेठ जी निहायत बेतकल्लुफी से उसी चारपाई पर अल्दायन की तरफ लद से बैठ गए, जिसके नीचे हम लोग थे। उनका भारी बोझ बेचारी अल्दायन की पतली और पुरानी रस्सियाँ सँभाल न सकीं। दो-चार तड़ातड़ टूट ही गईं। कम्बख्ती के मारे ठीक उनके नीचे

उसके लाड़ले भतीजे उकड़ू सिकुड़े हुए थे इसलिये सेठ जी का पूरा आसन चारपाई में घुस कर छैलाराम की पीठ पर गचाक से बैठ गया। फिर क्या था, ऊपर चचा जान चारपाई में अँड़स कर अपनी दोनों टाँगें आसमान की ओर उठाए अपने पुरुखों के नाम ले-लेकर रोने लगे और नीचे भतीजे साहब शिकञ्जे में पिसे हुए बाप-बाप करके चिल्ला उठे। इस आफत के कोहराम में मैं बिलाबिला कर चारपाई के नीचे से निकल पड़ा।

८

इस अण्डस-पिचक में मैं कुछ ऐसा घबड़ा गया कि मुझे ख्याल ही न रहा कि मैं इस जगह औरत हूँ। इसलिए लपक कर मैंने सेठजी की टाँगें पकड़ी और उन्हें खींच कर चारपाई के बन्धन से अलग करने लगा। क्योंकि हमारे बाबा तो दरवाजे के बाहर खड़े हुए मुँह बाए, आँखें फाड़े उल्लू की तरह दूर ही से खाली तमाशा देख रहे थे और मुझमें इतनी कठोरता न थी कि किसी को मुसीबत में फँसा देख कर चुप रहता। मगर ईश्वर जाने अल्दायन का फन्दा जरूरत से ज्यादा कस गया था या सेठ जी के पर्दे में सीसा भरा था; या उनकी लोथ ही भैंसासुरी थी कि मैं हाँफ गया, मगर मेरे हुमासे वह जरा भी नहीं टसके। तब मैंने चिल्लाकर छैला से कहा—"अबे ओ छैला की दुम, सेठ जी के नीचे चुटकी काट चुटकी, ताकि यह अपने आप कुछ फुदकें तो।"

सेठ जी घबड़ा कर बोले—"अरे! नहीं-नहीं, ऐसा मत करना। मुझे बड़ी गुदगुदी लगती है। कशमशा कर मर ही जाऊँगा।"

जब तक छैले ने भी काँख-कूँख कर चिल्लाया—"अरे जल्दी से चारपाई खड़ी करो, नहीं तो अब दम निकल जायगा।"

बात मेरी समझ में आ गई। इसलिए सेठ जी के लाख मना करने, गिड़गिड़ाने और दुहाई मचाने पर भी मैंने चारपाई किसी तरह खड़ी करके उनके पीछे कस के एक लात जमा दी। यह युक्ति

काम कर गई। क्योंकि इस तरह उनका आसन कुछ खिसका—कुछ तो ठोकर की धमक से और कुछ उनके चौंकने से। जब तक पृथ्वी की आकर्षण शक्ति ने भी भरपूर मदद दे दी। फिर क्या था, हजरत मुँह के बल लद् से जमीन पर टपक पड़े। हाँ जरा ठुड्डी और घुटने फूट गए। मगर उन्हीं के वोझ से।

लेकिन कहाँ राम-राम और कहाँ टें-टें। क्योंकि कहाँ तो अभी सेठ जी मुँह के बल पड़े हुए अपने कर्मों को रो रहे थे और कहाँ वह अपने लाड़ले भतीजे को पहचानते ही एकाएक मेंढक की तरह उछल कर उस पर फट ही तो पड़े और लगे एक सांस में गाली और लेक्चर दोनों साथ ही झाड़ने। मानो वह खुद तो बड़े धर्मात्मा थे। क्यों न हो, आदमी को कभी अपना बुराइयां नहीं दिखाई पड़तीं। वह बस दूसरों ही को दूसना जानता है।

उनका ताव गर्म होते देख मुझसे नहीं रहा गया। मेरी बेबाकी पहले ही खुल चुकी थी इसलिए मै धड़ से बोल उठा—"आप नाहक ही बिगड़ रहे हैं। आखिर यह आप ही के तो भतीजे हैं। 'बापे-पूत परापत घोड़ा, कुछ नहीं तो थोड़मथोड़ा।"

सेठ जी मेरी बात अनसुनी किए उसी तरह गरजने लगे—"हरामजादे, बदजात, सूअर का बच्चा। घर का रुपया तू इस तरह रण्डीबाजी में उड़ाता है। साले खाल खींच लूंगा। बोल कमबख्त, जब घर में जोरू मौजूद है तब तुझे ऐसी जगह आने की क्या जरूरत थी?"

मैंने सेठ जी को हिलाकर पूछा—"और आपकी क्या मर गई है?"

छैला न जाने अबतक शर्म, डर या घबराहट के मारे हक-बकाया सा था। मगर मेरी इस बात से उसके होश कुछ ठिकाने आए और उसने जवाब दिया—"नहीं, वह तो मेरी बीवी से भी जवान है। अभी पार ही साल तो इन्होंने फिर शादी की है।"

सेठ जी के मुँह से मारे गुस्से के आवाज नहीं निकलती थी। बड़ी मुश्किलों से हाँफते-हाँफते किटकिटा कर इतना कहा—"चल हरामजादे घर, तेरे बाप से कहता हूँ।"

मैंने लपक कर छैले से कहा—"अबे तू क्या खड़ा देखता है? तू जाकर इनकी बीबी से कह दे। आखिर यह भी तो यहाँ बोहनी करने आये थे। तूने खुद ही अपने कानों से सुना है।"

एकाएक सेठ जी की गर्मी ठूमन्तर हो गई। सिटपिटा कर बगलें झाँकने लगे। इनकी यह रङ्गत ताड़ते ही छैल की जान में जान आई।

छैल—"बस-बस ठीक है। अभी जाकर कहता हूँ।" यह कहकर वह सचमुच कमरे से बाहर हो गया।

हमारे बाबा के मानों काठ मार गया। क्योंकि इस दफे उसे बाहर निकलते देख उसे रोकने के लिए उन्होंने न मुँह ही से कुछ कहा और न हाथ ही बढ़ाया।

इधर सेठ जी की नानी मर गई। गरजना, बमकना, टर्राना, सब भूल गए। ऐसा मालूम हुआ कि उनपर सैकड़ों जूते पड़ गए। लगे दुम हिला-हिला कर गिड़गिड़ाने—"हाय हाय! कहीं ऐसा गजब भी न करना। अरे! आजकल की औरतें योंही आफत हाती हैं, उस पर यह सुनकर वह तो कच्चा ही मुझे चबा जायगी। ऐ भइया रामजियावन सुनो तो। तुम्हारे बाबा से कुछ भी न कहूंगा। जरा बात सुन लो। तुम्हें हाथ जोड़ता हूं। चलो, तुम्हें मिठाई खिलाऊँ×"

सेठ जी इसी तरह उसे पुचकारते और अपनी पगड़ी और धोती सँभालते उसके पीछे तेजी से लपके। घबराहट में बेचारे एक पैर का जूता भी भूल गए। हमारे बाबा अब तक कठपुतली बने थे। मगर इन दोनों के बाहर निकलते ही न जाने उनमें कहाँ से इतनी फुर्ती आ गई कि मैं खड़ा मुँह देखता ही रह गया और उन्होंने भड़ से दरवाजा बन्द करके बाहर से कुण्डी चढ़ा दी। धत् तेरी की। इस भगदड़ में अगर मैं भी निकल गया होता, तो मजे में इस वक्त नरक-कुण्ड से

बाहर होता। बला से पोशाक जनानी थी तो क्या ? इससे भी बढ़कर भला किसी दूसरी मुसीबत में फँस सकता था ? मगर क्या करूँ, इस कम्बख्त तकदीर को ! वक्त ही पर दगा देती है।

जिस तरह से कोई जङ्गली जानवर एकाएक अपने को कटघरे में बन्द पाकर छटपटाने लगता है या कोई प्यासा तालाब को निरा बालू का मैदान देखकर तड़प उठता है, उसी तरह उस वक्त मेरे भागने की सारी उम्मीदों पर पानी फिर जाने से मेरी हालत हो गई। मैं घबड़ा कर कमरे में कभी इधर दौड़ता था और कभी उधर। कभी दरवाजा पकड़ कर खींचता था, कभी दीवाल से सर फोड़ता था। मगर इससे क्या होता ? "औसर चूकि पछताने क्या" वाला मजमून था। इसी बौखलाहट में गुसलखाने की दरारों के पास भी पहुँचा। मगर नीचे अन्धकारकूप था। कुछ दिखाई न पड़ा। हाँ, आदमियों की झायँ-झायँ अलबत्ता सुनाई पड़ी।

बड़ी देर तक कान लगाने पर पता मिला कि ऐंठूमल हमारे बाबा को फटकार रहे हैं, मगर हमारे बाबा भी इस समय ऐंठकर ऐंठूमल हो रहे थे। बड़े ताव से कह रहे थे कि–"सारा दोष तुम्हारा है। अगर सेठ जी का यहीं रोक लेते तो काहे को इस वक्त पछताना पड़ता ?"

इस पर ऐंठूमल किटकिटा कर बोले—"जब कोई मेरे पास आता तब तो रोकता। चिराग की बत्ती बिना उसकाये तू तो चल दिया। वह तेल में डूब कर बुझ गई। फिर कोई आनेवाला कैसे इधर रुख करता ? वह खामखाह ही एक दम ऊपर जाया चाहे तुझे खुद ऐसे वक्त हिकमत से काम लेना चाहिए था। अगर तुझमें कुछ भी अकल होती तो यह दोनों शिकार इतनी सफाई से निकल जाते ? और हमारा किया-धरा तेरी बेवकूफी से इस तरह चौपट होता ? मगर × × ×"

कहते-कहते न जाने क्यों ऐंठूमल रुक गये। हमारे बाबा ने चुप्पी साध ली। मैंने समझा कि शायद बाबा वहाँ से हट गये। मगर हट कर जायँगे कहाँ ? ऊपर ही आएँगे। और अकेले होंगे, क्यों कि

ऐंठूमल उठ नहीं सकते। ऐसे वक्त अगर मैं अपने बाबा को द्वार खोलते ही दबोच दूं, तो मजे से निकल कर भाग सकता हूँ। इस वक्त उन्हें दबोचना आसान है, क्योंकि एक तो बेचारे बुड्ढे, उस पर काफी चोट भी खाये हुए हैं। एक ही ठसके में अररर धड़ाम हो जायँगे। यही मनसूबा गांठ कर मैं जीने के दरवाजे के पास गया और वहाँ दबक कर खड़ा हो गया। मगर हाय! आध घण्टा हो गया और हजरत ने आकर कुण्डी भी न हिलाई।

मैं उकता कर फिर गुसलखाने की दरारों के पास पहुँचा। इस दफे नीचे के कमरे में चिराग की धुँधली रोशनी दिखाई दी। ऐंठूमल चारपाई पर पट्टियाँ बाँधे पहले ही की तरह पड़े थे। मगर मिजाज में उनके इस वक्त कुछ भी ऐंठ न थी। हमारे बाबा चटाई पर बैठे थे। बैजनाथ उनकी ठुड्डी पकड़-पकड़ कर मानों उन्हें मना रहा था। मगर वह बन्दरवाले मल्लू की तरह सर हिला रहे थे। इस मनाने में ऐंठूमल और एक नया दढ़ियल पग्गड़बाज भी बैजनाथ का साथ दे रहे थे। क्योंकि ये लोग बात-बात में बाबा की तरफ हाथ जोड़ते थे। मगर वह पिघलते हुए नजर आते थे।

पहले बातचीत बहुत गुपचुप हो रही थी, मगर धीरे-धीरे लोगों की आवाज कुछ मामूली हालत पर आई, तब उनके एकाध जुमले मेरे कान में पड़े।

हमारे बाबा एक दफे सर हिला कर जरा जोर से बोले—"नहीं साहब! मैं उसको अपनी नजरों से दूर नहीं कर सकता। इसीलिए मैंने उसकी अब तक शादी नहीं की। जब से उसकी माँ मरी है, तब से उसे अपने कलेजे से लगा कर पाला-पोसा है।"

इस पर बैजनाथ ने झुँझलाकर जवाब दिया। झुँझलाहट में इसकी भी आवाज ऊँची हो गई—"आखिर उसे आप कब तक यों ही बिठाले रहेंगे। औरतों का गुजर बिना मर्द के कहीं चल सकता है? इसीलिए माँ-बाप का धर्म है कि लड़कियाँ जब जवान हों तो उन्हें

तुरन्त ऐसी जगह ब्याह दें जहाँ बेचारी मौज से रहें। खुशकिस्मती से यह सरदार साहब आपको उसकी परवस्ती उठाने के लिए मिल गए। इनसे बढ़कर उसे कौन सुख दे सकता है? यहीं तक नहीं, बल्कि यह बेचारे आपके संकट को भी दूर करने के लिये तैयार हैं। डेढ़ सौ रुपये का जो आप पर कर्जा लदा है, वह यह अभी आपको देने को तैयार हैं।"

दढ़ियल महाशय चौंक कर बोल उठे—"अव्वी नहीं, जब उसको साथ लेकर गड्डी में बिठूँगा तब।"

ऐंठूमल ने वहीं से पड़े-पड़े हाँ में हाँ मिलाया—"बात वही हुई सरदार साहब। हाँ, सरकार अब आप भी मान लीजिये। धन्य भाग जो यह आप को सरदार साहब मिले। बिटिया इनके साथ सुख से तो रहेगी। बस यही चाहिए। मगर भाई बैजनाथ, तुम इनका हाल उतना नहीं जानते जितना मैं। क्योंकि मैं इनके साथ तभी से हूँ जब से इन्होंने पन्सारी की दूकान खोली और मुझे दूकान-दारी करने के लिए नौकर रक्खा। इसलिए मुझे खूब मालूम है कि ये बेचारे आजकल पाई-पाई के लिए मुहताज हैं। मेरे बीमार पड़ जाने से दूकान से इन दिनों कुछ प्राप्ति नहीं हो सकती। डेढ़ सौ रुपया अगर यह महाजन को दे देंगे तो यह खायेंगे क्या? यह भी तो सोचो।"

बैजनाथ ने सर हिलाकर कहा—"ठीक है। ठीक है। तो सरदार साहब दस-बीस रुपये के लिए पिछड़ने वाले नहीं हैं। क्योंकि गृहस्थी सँभालने के लिए एक औरत की इन्हें सचमुच जरूरत है।"

दढ़ियल फिर चौंके—"हाँ जी, मेरे को जोरू का तो बौत जरूरत है। मगर बाई अब दस रुपी से ज्यादे नहीं बढ़ा सकता। मेरे को पिञ्जाब तक का दो टिकट बी तो खडीदणा है। यह देखो मेरे पास तो बस ये ही हैं।"

यह कहकर उसने जेब में हाथ डाला। मगर बैजनाथ ने उन्हें रोक कर जवाब दिया—"अरे साहब! इन्हें आपकी बातों का एतबार है। अच्छा, मैं इनकी तरफ से सब बातें मंजूर किए लेता हूँ।

यह अपनी भलाई-बुराई क्या समझें? इनकी तो अक्ल बेटी की ममता में भरी हुई है। लाइए इनके हाथ पर शगून कीजिए, सम्बन्ध तो किसी तरह पक्का हो।"

ऐंठूमल—'हाँ सरकार, आप भी ईश्वर का नाम लेके जै गणेश कीजिए।"

दढ़ियल ने जेब से कुछ निकाल कर कहा—"अच्छा बाई तो अभी पाँच रूपी ले, बाकी पिच्छू देगा-जब अपणा इतमिनाण कर लेगा तब।"

बाबा ने बन्दर की तरह झपट कर उसके हाथ से रुपये लेकर टेंट में रक्खा। फिर रुँधे कण्ठ में बोले—"मगर वह मुझे छोड़ कर कहीं नहीं जायगी। नहीं, वह नहीं जा सकता। हाय! वह अपने बाबा के बिना कैसे रहेगी?"

दढ़ियल—"अजी इसका फिकर मत करो। बस, तुम राजी हो जाय, उसको तो राजी कर ही लेगा। हम मर्दबच्चा है। वह कैसे नहीं जायगी। हम तो ले जायगा।"

बाबा हिचकियाँ लेते हुए बोले—"हाय! मेरा तो कलेजा फटा जाता है। कैसे उससे जानेके लिए कहूँ। हाय! मेरी आँखों की पुतली! मेरी लाड़ली बेटी!"

ऐंठूमल ने दिलासा देते हुए कहा—"सरकार! लड़कियाँ एक न एक दिन सभी को रुलाती हैं। मगर किया क्या जाय? आप अब उसके पास न जाइए, नहीं और मुहब्बत भड़केगी। हाँ सरदार साहब, उसको अपने साथ ले जाने के लिए राजी करने का आपका काम है। राजी हो जाय, ले जाइए। हम इनकी तरफ से हामी भरे लेते हैं। भैया बैजनाथ, अब सरदार साहब से इनकी रिस्तेदारी हो ही गई, अब इनको ऊपर ले जाओ कुछ देर आराम करें। हाँ, दोनों अपना-अपना इतमिनान कर लें। सरदार साहब, इनकी बेटी बड़ी लाड़ली है। देखिए उसे किसी बात की तकलीफ न दीजिएगा। और हमारे सरकार के संकट दूर करने का ख्याल रखिएगा।"

दढ़ियल—"हाँ जी, ख्याल है। हम बेमाण नहीं हैं।"

मेरे सर पर मानों आसमान फट पड़ा। इतनी देर के बाद मेरी समझमें आया कि यह सारी पाखण्ड-लीला मेरे ही लिए है।

मैं अपने कमरे में जमीन पर पड़ा हुआ मारे परेशानी के सर धुन रहा था। उस पर श्रीमती जी की याद ने और भी बेचैन कर रक्खा था, क्योंकि परेशानी ही में परेशानी अदबदा कर सताती है। जी में यही आता था कि उस कम्बख्त दढ़ियल के आने के पहले ही जान दे दूँ। इतने में द्वार खुला और कोई खटपट करता हुआ मेरे पास आया। उसके बाद चिल्लाने लगा—"बिज्जनाथ! अरे! ओ बिज्जनाथ! कआँ गिया रे?"

बाहर से आवाज आई-"क्या हुक्म है सरदार साहब?"

मैंने डरते-डरते कनखियों से ऊपर ताका तो देखा, वही नीचे वाला दढ़ियल दरवाजे की तरफ मुँह करके बड़बड़ा रहा है—"अरे! यह शुशरी तो औंधी पड़ी है। लंगली लूली है क्या?"

बाहर से बैजनाथ ने जवाब दिया—"नहीं हुजूर, अभी नई नवेली है। हम लोगों तक से पर्दा करती है। आपकी दाढ़ी से डर गई होगी।"

दढ़ियल—"दाढ़ी से डर गई? आहाहाहा! दाढ़ी तो मर्दों का हुस्ण है। बिना बाल का चेहरा बन्दड़ सा लगता है। तबी तो हमलोग कब्बी बाल नहीं कटाता। अगर कटावे तो सब सरदार लोग हमारा मुह पर थूक कर हमारा साफा उताड़ लेगा। समझा जाणी? इसलिए आ, इदिड़ को आ, डर मत।"

यह कहता हुआ मेरी तरफ बढ़ा। मगर खैरियत हो गई कि मेरे चुप रहने से वह फिर पलट कर दरवाजे पर गया—"अरे! बिज्जनाथ! ये तो बोलती नहीं। गूँगी बेहड़ी तो नहीं है?"

बाहर से बैजनाथ बोला—"नहीं जनाब! अभी कैसे बोलेगी? शर्माती होगी।"

दढ़ियल—"आयँ' हिजाब करती है ? ये कहो। अरी जाण मेरेसे हिजाब क्यूँ ? वह शेर नहीं सुणा कि "हिजाबे नौउद्दूसाँड़ा सबे माणद; शबे गीदड़, नमी माणद, नमी माणद।" शायर का कौल है। और क्या ? हिजाब मत करो। थूथण हटा कर अपना चेहड़ा दिखाओ।"

यह कह कर वह मेरे पास आया और मेरा घूँघट हटाने लगा। मगर मैंने झट उसे दानों हाथों से और भी कसकर दबा लिया। वह भाग कर फिर दरवाजे पर हो रहा। और उसी बमकने लगा—"अरे! बिज्जनाथअ, यह अपणा थूथण नहीं हटाती। जरूर काणी-कुथड़ी होगी, तब्बी।"

बैजनाथ बाहर झल्ला पड़ा। झुँझलाकर बोला—"अच्छा, तो आप तशरीफ ले आइए। अपने घरका रास्ता लीजिए। वाह! अच्छे मिले।"

दढ़ियल—"अबी क्यूँ जाए ? चार बजे पिञ्जाब को गड्डी जाती है, तब मियाँ-बीबी इकट्ठे जायगा।"

बाहर ही से बैजनाथ ने फिर धौंस जमाई—"जी नहीं, आपका हाल मालूम हो गया। चलते वक्त ऐसे ही कोई न कोई ऐब लगा कर आप धता बताएंगे। आपका कौन एतबार ?"

दढ़ियल—"नहीं जी। मेरे को जोरू की बौत सख्त जरूरत है। खान्दान में एक भी लुगाई नहीं है। गुरू सौगन्ध। मैं इसको ले जाऊँगा। छोड्डुँगा नहीं। चाहे जितने टके खड़च करने पड्डे।"

"तब आप नाहक क्यों परेशान करते हैं ? चलते वक्त पुकारि-एगा।"—इतना कह कर बैजनाथ ने दरवाजा खींच कर बाहर से कुण्डी चढ़ा दी और मैं हाय! हाय! हम जोरू के मरभुखे के साथ अकेला छोड़ दिया गया। उस पर अब उसने मुँह से सिगार फक कर अपनी जेब से 'ह्विस्की' का अद्धा निकाला। मेरे होश उड़ गए। क्योंकि मैंने एक बड़े डाक्टर से सुना था कि सब शराबों से ज्यादा ह्विस्की में

शैतानी की आग होती है। इसीलिए जब बदमाशी की उम्र जवाब दे देती है तब शौकीन लोग इसकी शीशियाँ जेब में रख कर चलते हैं। एक तो यह कम्बख्त योंही जाँगलूस, उस पर जहाँ इसकी गर्मी पहुँची तहाँ तो यह फिर बिल्कुल बन्दर ही हो जायगा। मगर जब ओखली में सर पड़ गया तो डर कर मूसलों का इन्तजार करना महज बेवकूफी नहीं, तो है क्या? जो कुछ करना-धरना हो, पहले ही करना चाहिए। इसलिए मुनासिब यही मालूम हुआ कि इसकी बोतल किसी तरकीब से उड़ेल दूं, ताकि इसमें कुछ तो आदमियत बनी रहे। तभी मेरी चालबाजी कुछ काम दे सकती है। क्योंकि मैंने इतनी देर में सोच लिया था कि जब औरत का भेस बनाया है, तब उन्हीं लोगों की तरह अब जाल, मकर, फरेब और उनके पेटेण्ट (खास) नखरें भी अख्तियार करूँ तभी इससे पिण्ड छूटने की उम्मीद हो सकती है। इसलिए जैसे ही उसने आकर मेरा हाथ पकड़ा, वैसे ही हाथ झटक कर मैं चिल्लाया—"अरे! मरी! हाँ हाँ मुझे आज मत छुओ।"

वह—"क्यूँ?"

मैं—"मेरे पेट में दर्द है, जैसे कोई छुरा भोंक रहा है।"

वह—"अच्छा, तो चल खाट पर पेट साड़ू दूं!"

मैं—"नहीं-नहीं, आजकल चारपाई पर नहीं लेट सकती। तभी तो जमीन पर बैठी हूँ। अलग हटो जी। फिर नहीं मानते।"

वह—"क्यूँ? क्या कट्ट खाएगी?"

मैं—"नहीं तो अपना नेम-धर्म छोड़ दूं? कह तो दिया, पेट में दर्द है! उफ! हर महीने ये चार दिन बड़े सङ्कट के होते हैं।"

वह—"कआँ दड़द होता है। दिखूँ।"

मैं—"चलो हटो। मैं इन दिनों भला किसी के छूने काबिल हूँ? अरे बाप रे! टीस मार रही है। जरा वह बोतल तो इधर बढ़ाना पेट पर घुमाऊँगी।"

वह—"अच्छा अब्बी देता है।"

गजब हो गया। मैंने बोतल माँगी थी शराब उड़ेलने के लिए, मगर उस जङ्गली ने उसे मुझे देने के पहले उसकी काग खोल कर झट अपने मुँह से लगा लिया। जब तक मैं कुछ कहूँ, तब तक वह तिहाई शराब बिना पानी मिलाए एक साँस में गटक गया। अब उसका फेकना न फेंकना दोनों बेकार था। क्योंकि उसे हैवान बनाने के लिए उसके पेट में काफी सामान पहुंच गया। उसने आँख मटका और जबान चटका कर कहा—"मत घबड़ा! इसे खतम कर ले तो देता है।"

एकाएक मुझे एक बात याद आ गई। मैंने किसी किताब में पढ़ा कि अगर शराब में 'सिगार' का तम्बाकू या उसकी राख मिला दी जाय तो वह बड़ी तेज बेहोशी की दवा बन जाती है। इसलिए जैसे ही वह बोतल फिर मुँह से लगाने चला वैसे ही मैं एकाएक चिल्ला कर जमीन पर मछली की तरह तड़पने लगा। और लोटते हुए उसके फेंके हुए सिगार के टुकड़े को चुपचाप उठा कर हाथ में मलने लगा। उसने बौखला कर मेरे पास आकर पूछा—"की होया नी?"

मैं—"हाय! बाप रे बाप! भिड़ ने काट खाया। वह है वह। वह देखो तुम्हारे पाजामे में घुस गई।"

वह घबड़ा उठा। झट जमीन पर बोतल रख कर जल्दी-जल्दी अपने कपड़े उतार कर फेंकने लगा। इस बीच में मुझे शराब में सिगार की बुकनी मिला देने का मौका मिल गया। जाँघियाँ छोड़ कर उसने अपने सब कपड़े उतार दिए। फिर भी उसे चैन नहीं आया। वह उसको भी झाड़ कर देखने के लिए सेहन में गया। वहाँ उसके कानों में हवा जो घुसी तो नशा ने अपना गहरा रङ्ग जमाया। क्योंकि जब वह कमरे में फिर आया तो उसके पैर डगमगाने लगे और वह धम से चारपाई पर बैठ गया, और पास से बोतल उठा कर मजे-मजे उसे पीता हुआ आयँ-बायँ-शायँ बकने लगा। थोड़ी देर के बाद उसके हाथ से बोतल छूट गई और वह ऊँघता-ऊँघता चारपाई पर गिर पड़ा।

उसके कपड़े ज्यों के त्यों अभी तक जमीन पर पड़े हुए थे। मैंने उन्हें बेधड़क पहन लिया और अपनी साड़ी उसे किसी तरह उलट-पलट पहनाई। उसके बाद उस्तरा निकाल कर उसकी दाढ़ी मूँछें सफाचट कीं। उसके सर पर के बाल के बन्धन को भी खोल कर उसके कन्धों पर लटें फैला दीं, ताकि देखने वाले को वह बिल्कुल औरत मालूम हो। तब मैंने अपनी चोली से भेष बदलने वाले सामान से अपना चेहरा उसी की तरह दाढ़ियल बनाया। इसमें उसकी दाढ़ी के बालों की भी मदद लेनी पड़ी। इतने ही कामों में बहुत वक्त लग गया। उस पर दाढ़ी बनाते वक्त उसके चेहरे पर जो मुझे पानी लगाना पड़ा था, इससे उसके दिमाग में कुछ ठण्ढक भी पहुँच चुकी थी। इसलिए वह कम्बख्त अब कुनमुनाने लगा। उस पर मुसीबत यह कि बाहर से दरवाजा बन्द था। अगर कहीं यह मेरे यहाँ से निकल भागने के पहले ही होश में आ गया तो हाय! फिर मैं कहीं का न रहूँगा। खैर! लालटेन मद्धिम करके किसी तरह मैंने दिल कड़ा किया और जाकर दरवाजा भड़भड़ाने लगा। क्योंकि उम्मीद थी कि चौकीदारी के लिए शायद कोई सीढ़ियों पर हो। मेरा ख्याल सही निकला। बाहर की कुण्डी खुली, और किस्मत से हमारे बाबा ही सामने दिखाई पड़े।

मैंने तुरन्त भारी आवाज में पूछा—"बिज्जनाथ अ कहाँ है?"

बाबा सचमुच मुझे अपना दामाद समझे। क्योंकि मेरे पीछे रोशनी होने के कारण उसकी चमक से वह मेरी सूरत ठीक तौर से देख न सके। गड़बड़ा कर लगे अपनी सफाई देने—"बैजनाथ तो नीचे वाले कमरे में सो रहा है। मगर मुझे चैन कहाँ। बिटिया की ममता के मारे नींद हराम है। न रहा गया तो अभी टेकते-टेकते यहाँ आया ही था कि आपने किबाड़ भड़भड़ाया।"

मैं—"अच्छा, तो उससे अगर मिलना हो तो जाकर मिल लो, क्योंकि वह जाने के लिए राजी है। तब तक मैं बिज्जनाथ को जगाता हूँ।"

बाबा—"क्या सचमुच वह जाने के लिए राजी है ?"

मैं—"हाँ जी, तबी तो वह हमारे साथ खूब शराब पीकर अब बेखबर सो रही है। वह देखो।"

बाबा—"क्या बिलकुल बेखबर है ? ठीक कहिए। बेखबर है ? सचमुच ?"

मैं—तुमी जाकर देख न लो।"

बाबा "अच्छा तो आप ये जनाथ के पास चलिए। उसी नीचेवाली कोठरी में है, जिसकी रोशनी सीढ़ियों पर आ रही है। जब तक म एक नजर बिटिया को देख लूँ। क्या करूँ, ममता नहीं सब्र करने देती।"

यही तो मैं चाहता था। मैं बाहर निकला और वह भीतर गए। हजरत खुद ही दरवाजा भेड़ कर चारपाई की तरफ लपके और जाते ही "अरी मेरी मैना, अरी मेरी कबूतरी" कहते हुए अपने दामाद की बगल में लेट गए। क्योंकि दरवाजा ठीक तौर से न भिड़ने के कारण उसकी दरार से भीतर का तमाशा मुझे खूब दिखाई दे रहा था। इतने में कबूतरी चौंक कर बोली—"कूण है ? जाणाँ ?"

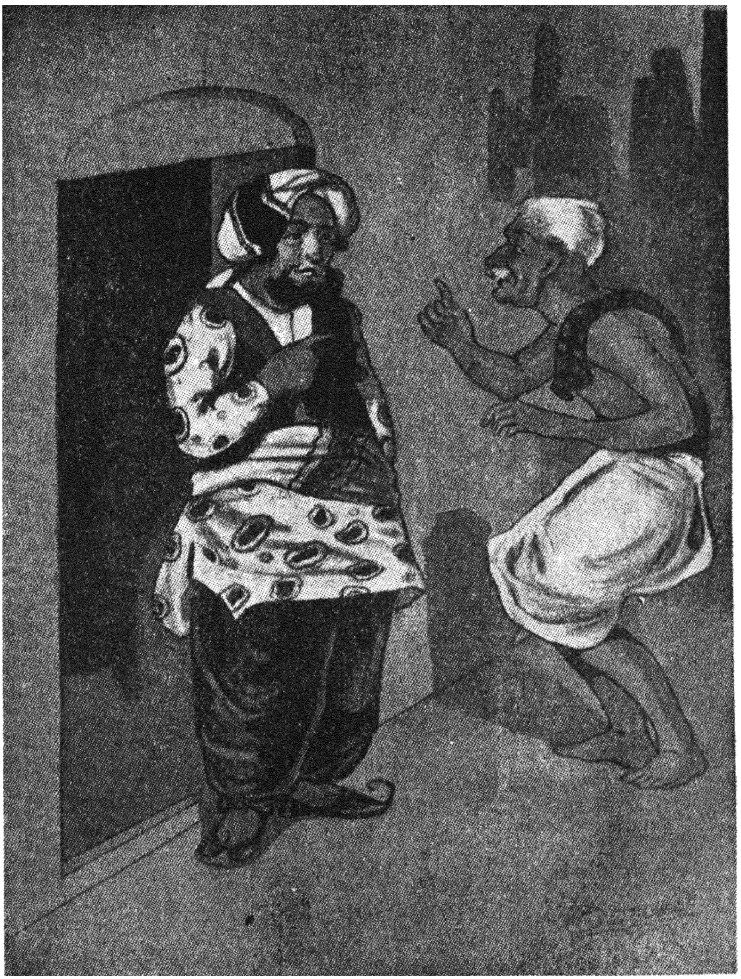
मैं झट बाहर की कुण्डी लगाकर नीचे उतरा। रास्ते में दो मञ्जिले की कोठरी की भी जञ्जीर चढाता गया।

❀ ❀ ❀

दो महीने तक मैं कई जगह घूम-घूम कर अपने दिन काटता रहा। मगर औरत बनने की फिर कभी हिम्मत न की। सरदार साहब के कोट की जेब में मुझे १८०) रुपयों के नोट मिले थे। यह ईश्वर की देन थी। क्यों न हो, ईश्वर जब देते हैं तब छप्पर फाड़ के। मैंने भी इन रुपयों को अपनाने में कोई बुराई न समझी, क्योंकि यह मेरी कारगुजारी की कमाई थी। यही मेरे बाबा मुझे बेच कर लेते, और यही मैंने उल्टे उन्हें बेच कर पाया। रहा सरदार साहब का मामला, उनकी तकदीर में औरत के बदले बुड्ढा मर्द लिखा था तो मेरा कसूर क्या ? इन्हीं रुपयों की बदौलत खूब चैन से इतने

दिन बीते, वरना भूखों मर जाता। मगर ससुर-दामाद में निबटी कैसी, और उस नरक-कुण्ड के कीड़े अपने-अपने नाबदानों से निकले कैसे और सरदार साहब को बन्दरनुमा चेहरा कभी अपनी बिरादरी के लोगों को दिखाने काबिल हुआ या नहीं, मुझे इन बातों का आजतक पता न चला।

मैं रोज ही अखबार में वही विज्ञापन ढूँढ़ा करता था, जिसको देख कर घर जाने का रास्ता मैं साफ समझता। मगर जिस अखबार में वह विज्ञापन निकलने वाला था मुझे वही नहीं मिलता। ईश्वर जाने सम्पादक जी सो गये थे या उन जगहों पर यह अखबार ही नहीं आता था। आखिर एक दिन पन्सारी की दूकान से शक्कर खरीदी तो उसके कागज में एकाएक वही विज्ञापन देखा। फिर क्या था मारे खुशी के मैं और मेरा दिल, दोनों बाँसों उछल पड़े। श्रीमती जी से मिलने के लिए ऐसा बेताब हुआ कि सर पर पाँव रख के उसी वक्त घर रवाना हुआ। अब उनसे मिलने में मुझे क्या खटका रह गया। जिस तरह से मैं उनसे मिलने के लिए तरस रहा हूँ, छटपटा रहा हूँ, तड़प रहा हूँ, उसी तरह से वह भी बेचारी मेरे लिए जरूर इन्तजार करती होगी और बड़ी बेचैनी से। क्योंकि इन दिनों एक उपन्यास में पढ़ा था कि औरतें ऊपर से चाहे जैसी बनें, मगर उनके भीतर उनका दिल बड़ा ही कोमल होता है। इसलिए अब मुझे विश्वास हो गया था कि हमारी श्रीमती जी भी खाली ऊपर ही से रूखी हैं। वह भी शान, बनावट और ऐंठ के मारे। मगर अन्दर वह जरूर ही मुलायम होंगी। बस यही सोच कर रास्ते भर मेरे मनसूबे कदम-कदम पर अण्डे-बच्चे देते जाते थे। रह-रह कर अपने भावी मिलन के आनन्द में मैं मस्त हो जाता था। क्योंकि सैकड़ों मुसीबतें झेलने के बाद जो प्रेम-मिलन हो तो उसके मजे का हाय! फिर क्या पूछना है। इसी तरह लाखों अरमान और हजारों उम्मीदों से लबालब भरा घर पहुँचा।



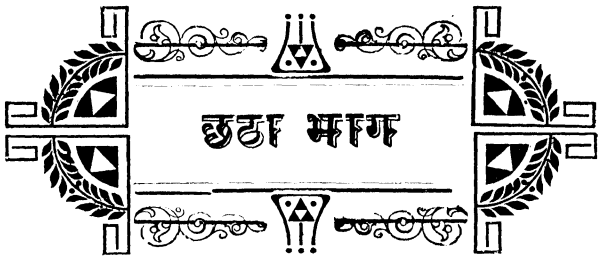
मैंने तुरन्त भारी आवाज में पूछा—बिजनाथअ कहा हे ?"

[चित्र १८०]

मगर अरे !!! घर का कोना कोना ढूँढ़ डाला। भण्डारख़ाना, रसोईखाना, ग़ुसलखाना, बल्कि लोटा लेके तीन दफे पाखाना तक भी हो आया। अरी श्रीमती जी, कहाँ हो ? ईश्वर के लिए जरा बोल दो ताकि दिल में कुछ ढाढ़स बँधे।

मैंने डरते-डरते चुपके से नौकरानी से पूछा। बस कलेजे में 'बमबार्डमेण्ट' हो गया ! उफ ! बेमौत मर गया ! लुट गया ! तबाह हो गया ! बरबाद हो गया ! हाय ! हाय ! मेरे मनसूबों के सब अण्डे गन्दे हो गये। मेरी लहलहाती जवानी पर एकदम सूखा बूढ़ापा फट पड़ा !! अब क्या कहूँ, अपना सर ? वह तो अपने भाई के साथ कल ही अपने माय के सिधार गई। वाह री श्रीमती जी, वाह ! खूब अँगूठा दिखाकर गई। उफ ! तुम बाहर-भीतर हर तरफ वज्र निकलीं ! अरी निर्दयी ! अरी बेदर्द ! अरी जालिम ! अरी हत्यारिन ! .....अरे भाई, कोई जल्दी से मेरा मुँह बन्द कर दो, नहीं तो मैं अपनी श्रीमती को न जाने क्या-क्या कह डालूँगा।





लाहौल बिलाकूवत

"ढाई सौ आदमी बारात में जा रहे हैं ? यह बारात है या शैतान की आँत ? भला इतने आदमी ले जाकर क्या कीजियेगा पण्डित जी ? इनकी वहाँ कौन सी जरूरत पड़ेगी ? आप अपने लड़के का व्याह करने जाते हैं या लश्कर लेकर समधी के घर डाका डालने ?"

"भइया ! यह सलाह आपने अपने पिता जी को क्यों नहीं दी थी, जब वे आपके विवाह में सारे नगर भर को बटोर ले गए थे ?"

अररररर ! पण्डित जी ने बुरी नस दबाई। मैं अपना सा मुँह लेकर रह गया। बात सच थी। कुछ जवाब देते न बन पड़ा। फिर भी खाँस खूँस कर किसी तरह मैंने कहना शुरू किया—"जो बात हो गई वह हो गई। उसका अब जिक्र क्या ? आदमी को हमेशा आगे देखना चाहिए, न कि अपने पीछे। इसीलिए तो ईश्वर ने सामने आँखें दी है, कुछ गर्दन की गुद्दी में नहीं।"

पण्डित जी—"भइया, ईश्वर की कृपा से अब आप वकील हो गए हैं। आपसे तर्क में तो मैं जीत नहीं सकता। परन्तु विवाह की शोभा बारात से और बारात की शोभा आदमियों से होती है। यदि बारात में चार-पाँच सौ आदमी भी न हुए, तो वह फिर बारात ही

क्या ? ऐसे ही समय जाना जाता है कि किसके कितने सङ्गी-साथी, हिती-मेली, यार-मददगार, नातेदार, पट्टीदार इत्यादि हैं। इन्हीं लोगों से कैसे शुभ अवसरों पर आबरू की लाज रहती है। नहीं तो संसार में कोई काहे को किसी को पूछे ? नमस्कार-पैलगी करे ? मेल-जोल भाईचारा, नातेदारी, सब इन्हीं दिनों के लिए है भइया। जब आपके लड़केबाले होंगे और उनके विवाह आदि के समय आएँगे तब इन बातों का महत्व आप खुद ही जान लेंगे। अधिक क्या कहूँ ?"

मैं—तो क्या ढाई सौ आदमी आपकी आबरू की रखवाली के लिए कम हैं, जो आप उनकी तादाद और बढ़ाना चाहते हैं ?"

पण्डित जी—"यह आप क्या कहते हैं ? ढाई सौ किस गिनती में हैं ? एक वह भी दिन था, जब हम लोगों के पुरखे ढाई-ढाई हजार आदमियों की बारात लेकर लड़कों का व्याह करने जाते थे।..."

मैं बीच ही में बात काट कर बोल उठा—"हाँ-हाँ, जब रेल नहीं थी और रास्ते में लूट-मार के डर से बिना गरोहबन्दी किए दो कदम भी चलना मुश्किल था। मगर अब इतनी बड़ी फौज लेकर कहीं जाने की क्या जरूरत ? मुफ्त में अपने सर परेशानी लेना और दूसरों को भी हल्कान करना। रुपए की बरबादी अलग और खासकर ऐसे समय, जब देश कङ्गाल हो रहा है ?"

पण्डितजी—"हाय ! हाय ! रुपए-पैसे होते किस दिन के लिए हैं ? इन कामों में तो गाँव-गिराँव, घर-द्वारतक बिक जाते हैं। आबरू से बढ़कर कहीं रुपया हो सकता है ? यह तो सोचिए। हाँ, तो आपको चलना पड़ेगा। इस तरह की बातों से आप छुट्टी न पा जायँगे ?"

मैं—"कौन मैं ? माफ कीजिए। एक दफे एक बारात में गया, भूखों मर गया। दूसरी दफा जाना पड़ा तो बेवक्त खाने-पीने से महीना भर तक बीमार पड़ा रहा। तीसरी बार कच्ची पूड़ियाँ खाते-

खाते पेचिश हो गई। चौथे मरतबे किसी रस्मपर समधियों में जो तकरार हुई तो डण्डे चल गए। भागने तक का रास्ता न मिला। यही गनीमत हुई की खोपड़ी फूटने से बच गई। तभी से चाहे कोई नाराज हो या खुश, मैं किसी बारात में नहीं जाता और खासकर देहात में।"

पण्डित जी—"तो भइया, मधनगरा देहात थोड़े ही है। उन्नाव शहर से कुल तीन कोस पर तो है। जो गाँव शहर से इतना मिला हो, उसमें देहातीपन कहाँ रह सकता है? उसपर लड़की के पिता स्वयं एक रियासत के उच्च पदाधिकारी हैं। उन्नाव शहर के सभी अफसरों से उनका मेल-जोल है। वहाँ के बड़े-बड़े हाकिम, वकील, बालिस्टर सभी उनके यहाँ जायँगे। तभी तो आप लोगों को कष्ट दे रहा हूँ कि हमारी तरफ भी दस-बीस बड़े आदमियों की भीड़ हो जाए। क्या बताऊँ, आपके पिता जी अभी तक इलाहाबाद से लौटे नहीं और बारात कल सुबह ही की गाड़ी से जानेवाली है। नहीं तो मैं उनको भी हाथ पाँव जोड़ कर ले चलता। इसलिए अब आप ही पर भरोसा है और यह पगड़ी आपके चरणों पर है...!"

मैं—"अरे! राम! राम! आप ब्राह्मण देवता होकर यह क्या करते हैं पण्डित जी? नाहक आप मेरे पीछे पड़े हुए हैं। मैं बारातों में जाने से कसम खा चुका हूँ। यहाँ तक कि हाल ही में मेरी सगी स्त्री के सगे भाई की शादी थी और मैं उसमें नहीं गया। यह तो आप जानते ही हैं।"

"और पण्डित जी यह भी जानते होगें कि उसमें आपके पिता जी गए थे। इसलिए वहाँ घर भर के जाने की जरूरत न थी।"—यह कहते हुए हमारे सहपाठी मिस्टर लाजीशियन, जिन्होंने हमारे साथ ही वकालत शुरू की थी, कमरे में फट पड़े। और आते ही उन्होंने पण्डित जी की तरफ से ऐसी पैरवी की कि अन्त में मुझसे कहला ही कर छोड़ा कि—"अच्छा भाई, चलूँगा।"

पण्डित जी के जाने के बाद मैंने लाजीशियन को फटकारना शुरू किया—"अजब आदमी हो, तुम्हें बारात में जाने का बहुत शौक है तो तुम्हीं जाते, मुझे काहे को इस झगड़े में फँसाया ?"

लाजीशियन—"उस्ताद, बिना तुम्हारे मजा जो नहीं आता। वह महफिल वीरान जहाँ भाँड़ न बाशद।"

मैं अपनी उसी धुन में बकता गया—"तब क्या बहुत सुधार-सुधार चिल्लाया करते हो। यों कहने को तो अक्सर कहते हो कि शादी में बारात ले जाना बहुत बुरा है। इसीसे सारे झगड़े-बखेड़े पैदा होते हैं। और यह कि आजकल मुल्क की माली हालत ऐसी खराब हो रही है कि दो-चार मिहमानों की एक वक्त भी मिहमानदारी करते नहीं बन पड़ती। उस पर चार-चार दिनों तक किसी के घर एक फौज का पड़ाव डाल देना कहाँ की अक्लमन्दी है ? बस दूल्हे के साथ खाली घरवालों का ही जाना बहुत काफी है। मगर जब वक्त पड़ा तो तुम खुद ही दुम दबा गए। लगे पण्डित जी से राग मिला कर कहने कि हाँ भाई, आबरू का मामला है, जरूर चलना चाहिए।"

लाजीशियन—"अख्वाह ! यह कहिए कि इस वक्त आपके सरपर सुधार का भूत सवार है। अजी रिफारमर साहब, हर जगह तलवार नहीं चलाई जाती। यह सुधार का बड़ा ही मुख्य नियम है। अगर उनसे कहीं कह देता कि हम नहीं जायँगे, तो सुबह तक दरवाजे पर चक्कर लगाते-लगाते हमारा द्वार खोद डालते और जबरदस्ती हमें उठा कर ले जाते।"

मैं—"तो अब क्या जाना नहीं पड़ेगा ?"

लाजीशियन—"जानेवाले को कुछ कहता हूं। इसीलिए तो कह दिया कि कल एक खफीफा का बहुत जरूरी मुकदमा है। बारात के साथ तो नहीं जा सकता, मगर मुकदमा करके दोपहर की गाड़ी से जरूर आऊँगा।"

मैं—"यह तो सरासर धोखेबाजी है।"

लाजीशियन—"क्या करता ? न मानने वाले असामियों को इसी तरह राह पर लाया जाता है और इसी तरकीब से अपना भी गला छुड़ाया जाता है। इसे धोखेबाजी नहीं, कूटनीति कहते हैं।"

मैं—"बस! बस! अपनी कूटनीति अपने घर रखिए। मुझे फसा कर देखता हूँ तुम किस तरह निकल जाते हो। मैं भीअब बारात के साथ न जाकर महज तुम्हें ले जाने की खातिर दोपहर की गाड़ी से आऊँगा।"

लाजीशियन—"यह बात ? खैर ! जब पण्डित जी को तुम पर इतना भरोसा होगा कि तुम्हें दोपहर की गाड़ी से आने के लिये छोड़ जाएँ तब तो।"

मैं—"होगा कैसे नहीं ? मैं क्या तुम्हारी तरह धोखेबाज हूँ कि कहूँ कुछ और करूँ कुछ। पण्डित जी से कह दूंगा कि बिना मेरे लाजीशियन अकेला पड़ कर हर्गिज नहीं आयेगा।"

लाजीशियन—"देखा जायगा। अब तो तुम्हें अपना कच्चा चिट्ठा बता ही दिया। उस पर भी डरता हूँ कि तुम कहीं फिर अपनी सी न कर जाओ।"

मैं—"अपनी सी के क्या माने ?"

लाजीशियन ने मुस्करा कर जवाब दिया—"वही जो सदा करते आए हो ?"

यह अलबत्ता समझ समझ में नहीं आया।

२

सचमुच लॉजीशियन ने पण्डित जी को जाने कैसी पट्टी पढ़ा रक्खी थी कि उन्हें मेरी बातों का किसी तरह विश्वास ही नहीं होता था। बल्कि उल्टे यही समझते थे, कि मैं अपनी जान छुड़ाने के लिए बहाना कर रहा हूँ। इसलिए उन्होंने मुझे अपने साथ बारात में ले जाने के लिए और भी जिद पकड़ ली। ऐसी कि तीन ही बजे रात से मेरे घर पर धावे शुरू हो गए और पाँच बजते-बजते मैं पण्डित जी के दरवाजे पर जबरदस्ती पकड़ कर लाया गया। उस वक्त मैंने

लाजीशियन की कूटनीति का फायदा समझा और जाना कि दुनिया में बिना इसके किसी भलेमानुस का गुजर नहीं हो सकता। लाजीशियन भी वहीं बारात की रवानगी के इन्तजाम में मौजूद था। आखिर उसी ने जब कहा कि—"अगर यह किसी वजह से इस वक्त नहीं जा सकते तो कोई हर्ज नहीं। मैं इन्हें अपने साथ लेता आऊँगा। अगर मुझे मुकदमे से छुट्टी न मिली या और कोई जरूरी काम फट पड़ा तो भी मैं इन्हें तो भेज ही दूंगा। चाहे जैसे बन पड़े। खातिर जमा रखिए।" तब जाकर पण्डित जी ने किसी तरह मेरी जान छोड़ी। वाह री अक्ल! उन्होंने एतबार भी किया तो किस पर? मेरी शिकायतों और दलीलों का अच्छा नतीजा निकला।

आखिर बारात चलने के लिए जमा हो गई। मगर जिनको-जिनको पण्डित जी बड़े आदमी समझते थे, वे एक नहीं दिखाई पड़े। हाँ, उनकी जगह पर उनके लड़के-बाले और ऐरे-गैरे रिश्तेदार, जिनसे पण्डित जी से जान-पहचान तक नहीं थी, एवजीदार बन कर दूगुने-तिगुने की तादाद में अलबत्ता जुट गए। गोया बारात क्या है, मित्र-मण्डली के खान्दानों की 'पार्लीमेंट' है, जिसमें हरेक खान्दान का कोई न कोई प्रतिनिधि अवश्य होना चाहिए। यह लोग माँगी हुई गाड़ियों और मोटरों पर, जिस तरह से छकड़े पर बोरे लादे जाते हैं, दौड़-दौड़ कर लदने लगे। सवारियाँ कम और आदमी ज्यादा। उस पर दूसरे खेवे के लिए न समय ही था और न किसी में इन्तजार करने का दम। बस बरातियों में हो गई झौड़। खैर! किसी तरह बारात स्टेशन पर पहुँची। लाजीशियन के साथ वहाँ तक देख-रेख के लिए हमें भी जाना पड़ा। पण्डित जी ने मारे अक्लमन्दी के रेल की एक ही गाड़ी Reserved (सुरक्षित) कराई थी, और न्योता दिया था सारे शहर भर को। बारातियों के एक ही रेला में वह ठसा ठस भर गई। मगर प्लेटफार्म पर की भीड़ फिर भी कम न हुई। डाँट-डपट और लड़-झगड़ कर किसी तरह उस गाड़ी में कुछ और भी

ठूँसे गए। तब तक भीतर गाली-गुप्ता के साथ ढकेलम-ढकेला शुरू हो गया। इस शोर-गुल में रेल के कर्मचारीगण फट पड़े और लगे मुसाफिर गिनने, तब तो पण्डित जी के होश उड़ गए। बेचारे सिकुड़ कर एक कोने में दबक रहे। टिकट कलक्टरों ने आधे से ज्यादे आदमी उतार दिए। यह लोग अपनी यह आवभगत देख कर पण्डित जी पर उबल पड़े और लगे गालियाँ दे-देकर कहने कि जब इसे हम लोगों को ले जाने का दम नहीं था तो किस बिरते पर न्योता देकर बुलाया? इन आबरू की लाज रखने वालों ने पण्डित जी की अच्छी आबरू बनाई। बड़ी खैरियत हुई कि गाड़ी छूट गई। नहीं तो बेचारे पर न जाने और कौन सी आफत आती। बारात ले जाने वालों और जाने वालों की जब यह हालत है, तो हिन्दू-समाज को चाहिए कि महाब्राह्मणों की तरह बारातियों की भी एक जाति फौरन बना दे, ताकि तब किसी को न खुशामद करने की जरूरत पड़े और न शिकायत करने की नौबत आये। जब जितने बारातियों की जरूरत हो, चट किराए पर बुला लिए जाया करें। बस झगड़ा खतम। उम्मीद है, मेरे इस प्रस्ताव पर हिन्दू समाज जरूर ध्यान देगा। मगर जब अक्ल होगी तब।

शादियों में जाने से मैं पहिले ही घबड़ाता था, उसपर स्टेशन पर का हाल देख कर मेरी तबियत कुछ ऐसी खट्टी हुई कि मकान आकर जी में ठान लिया कि बला से मेरी कसम टूटे या पण्डित जी नाराज हों, मगर अब मैं दोपहर की क्या, किसी भी गाड़ी से नहीं जाऊँगा। इस शादी में जाने के लिए मेरे राजी हो जाने का कारण कुछ और भी था। मगर उसको भी मैंने इस समय तिलाञ्जलि दे दिया। यह तो मैं जानता ही था कि लाजीशियन जाएगा नहीं और उसी को ले जाने के लिए बात पड़ जाने पर मैं रुक गया। मगर मेरे ताज्जुब की हद न रही, जब वही दोपहर की गाड़ी आने के डेढ़ घण्टे पहिले ही इस शादी में जाने के लिए तैयार होकर मेरे यहाँ आ धमका।

मैंने घबड़ा कर पूछा—"अरे! यह क्या? तुम तो जाने वाले नहीं थे?"

लाजीशियन—"ऐसा न कहता तो तुम मेरा साथ देने के लिए रुकते कैसे? यह भी कूटनीति थी। क्या मैं अकेले थोड़े ही जाता?"

मैं—"तुम तो अजब थाली के बैंगन मालूम होते हो। कभी इधर लुढ़कते हो और कभी उधर।"

लाजीशियन—"मैं क्या करूँ, संसार में सफलता इसी में है कि समयानुसार अपनी नीति धड़ाधड़ बदलता रहे।"

मैं—"तो अब क्या तुम व्याह-शादी में बारत ले जाने के पक्ष में हो गए?"

लाजीशियन—"भई वाह! कहाँ राम-राम और कहाँ टें टें! मैं तो समझता था कि जब से तुम वकालत करने लगे हो, तब से बहुत कुछ आदमी हो गए हो और दुनियादारी की बातें समझने लगे हो, मगर देखता हूँ कि अब भी कसर बाकी है। अरे भाई! बारात से क्या बहस? यहाँ तो सवाल अपने आने-जाने का है। अच्छा अब उठिए। चटपट चलने के लिए तैयार हो जाइए। अब सुधार-उधार पर लेक्चर झाड़ने का समय बिल्कुल नहीं है।"

मैं अपनी बुद्धि पर कटाक्षपूर्ण समालोचना सुनकर जल मरा। फिर भी अपना गुस्सा दबा कर रुखाई से सिर्फ इतना ही कहा—"तुम्हें जाना हो जाओ, मैं तो नहीं जाने का।"

लाजीशियन—"क्यों क्यों? तब किस बिरते पर पण्डित जी के सामने इतना अकड़ते थे और सैकड़ों कसमें खाई थीं?"

मैं—खरबूजा, खरबूजा देखकर रङ्ग पकड़ता है। मैं भी अपनी कुशलता अपनी नीति बदलने ही में देखता हूँ।"

लाजीशियन अपनी ही तरह जबाब पाकर अपना सा मुँह लेकर रह गया। मगर झेंप मिटाने के लिए हँस कर बोला—अल्लाह! आप नखरा भी करना जानते हैं?"

मैंने चिढ़ कर कहा—"मुझे नखरा करने की जरूरत? क्या मैं औरत हूँ? तुम शायद समझते होगे कि वहाँ जाने में मेरी भी गरज अटकी है। क्योंकि मेरे ससुर जी आजकल उन्नाव ही में हैं और वहीं मेरी श्रीमती जी भी हैं। इसीलिए मैं इस शादी में जाऊँगा जरूर, ताकि जरा मैं अपनी ससुराल में भी जा सकूँ। क्यों? यही बात है न? मगर हजरत, तुम्हें यह पता नहीं है कि मैं ससुराल जीते जी हर्गिज नहीं जा सकता। वहाँ जाने से मैंने कसम खाली है। खास कर इसीलिए मैं अपने साले की शादी में नहीं गया था। मेरे ही न जाने की वजह से श्रीमती जी का अभी तक आना नहीं हुआ।"

लाजीशियन—"अरे! यार तब तो नाहक मौका हाथ से खोते हो। मैं तुम्हारी जगह पर होता तो मैं इस शादी में नाक के बल जाता। इधर पण्डित जी भी खुश और उधर अपना भी दिल खुश। इससे उम्दा बहाना तुम्हें श्रीमती जी से मिलने का मिल नहीं सकता।"

श्रीमती जी की याद उभर पड़ी। इससे मेरी कुछ ऐंठ जाती रही और मैं जरा नर्म पड़ कर बोला—"आह! उनसे मिलना और साप को हाथ से पकड़ना दोनों एक ही है। सारी जिन्दगी बीत गई और उनसे....।"

बड़ी अक्लमन्दी की कि मैं चुप हो गया। क्योंकि तुरन्त ही ख्याल आया कि अपनी कम्बख्ती का भेद कभी नहीं बताना चाहिए।

लाजीशियन ने शायद मेरी बात सुनी नहीं, इसलिए उसने और ही धुन में पूछा—"आखिर ससुराल जाने से क्यों घबड़ाते हो?"

मैं—"घबड़ाने की कोई बात नहीं है। मगर मैं वहाँ रहना नहीं चाहता। क्योंकि वहाँ के लोग जरा बेहूदे हैं। यही तो मुश्किल है।"

लाजीशियन—"बस? इतनी ही बात है? तब तो तुम्हारा मेरे साथ जाना और भी अच्छा है यार। मजे से बारात की ओर लौटते समय ससुराल भी हो लिया। मैं ऐसी तरकीब बता दूंगा कि तुम्हें

वहाँ ठहरने की जरूरत ही न पड़ेगी। बस दो घड़ी बैठे, बीबी साथ ली और खट से चले आए।"

मैं—"हाय! हाय! ऐसा जब कहीं मुमकिन हो तब तो। मैं अब तक जाकर उन्हें ले न आता? जब जाऊँगा तो वहाँ दो-एक दिन ठहरना जरूर पड़ेगा और ठहरने में.....खैर! मगर जब साले साहब की शादी में मैं वहाँ नहीं गया, तब अब जाऊं भी तो कौन सा मुँह लेकर? इसीसे वह लोग मुझे अब बुलाते भी नहीं हैं।"

लाजीशियन—"अजी वाह! इन बातों के चक्कर में न पड़ो। बस श्रीमती जी को याद करो और चल खड़े हो। बेड़ा पार है। मैं तो तुम्हारी मदद के लिए साथ ही हूँ। घबड़ाते किस लिए हो?"

इसके बाद लाजीशियन ने श्रीमती जी की याद दिला-दिला कर मुझे ऐसा बेकाबू कर दिया कि मेरी मुहब्बत भड़क उठी और उसके ताव से मेरी प्रतिज्ञा ही पिघल गई। फिर तो अपनी ससुराल जाकर श्रीमती जी से मिलने और उनको अपने साथ लाने की बड़ी-बड़ी तरकीबें सोची जाने लगीं। मगर अभी कोई राय ठीक नहीं हुई थी कि लाजीशियन घड़ी देख कर बोल उठा—"अरे! यार, गाड़ी आने में अब सिर्फ़ आधा ही घण्टा रह गया। बस अब, झटपट स्टेशन चले चलो। वहीं यह बातें तय हों जाएँगी।"

स्टेशन पहुँच कर लाजीशियन एकाएक मेरा हाथ पकड़ कर बड़े जोर से बोला—"बाजी मार ली दोस्त। तरकीब सूझ गई।"

मैं—"क्या?"

लाजीशियन—"सुनो। पण्डित जी की बारात मधनगरा गई है। वह उन्नाव से तीन ही कोस पर है। जिनके यहाँ शादी होगी, वह सुन ही चुके हो कि बड़े आदमी हैं और उन्नाव के अफसरों से उनका मेल-जोल है। इसीलिए उन्होंने तुम्हारे ससुर जी को जरूर न्योता दिया होगा.....।"

मैं—"यह तो मैंने पहिले ही सोचा था और इसी भरोसे पर

मैं बारात की मुसीबतें झेलने को तैयार हो गया था। क्योंकि ससुर जी से वहाँ मुलाकात होगी और लाख मनमुटाव हो, आँख मिलते ही मुरौवत आ ही जाती है। इसीलिए वह बारात से अपने साथ मुझे अपने यहाँ ले ही जाते। मगर मैं किसी तरह वहाँ ठहरता नहीं। जरूरी मुकदमों का बहाना करके तुरन्त ही भाग खड़ा होता। अगर वह भलेमानुस होंगे तो ऐसे वक्त श्रीमती जी को मेरे साथ कर ही देंगे। मगर बाद को सोचा कि फिर भी वह दुविधे वाली बात है। वहाँ जाएँ भी और मुफ्त में अपना सा मुँह लेकर लौटें, यह तो ठीक नहीं। उस पर बरातियों की जो आवभगत देखी कि बेचारे गर्दन में हाथ दे-दे कर रेल से उतारे गए, तो बस मेरी राय बदल गई।"

लाजीशियन—"उस्ताद, सोचा तो था तुमने बहुत ठीक, फिर भी बिलकुल गलत। क्योंकि तुम यहीं देख चुके हो कि यहाँ के सभी बड़े आदमियों ने आखिरी वक्त पर एक न एक बहाना करके अपने अपने एवजीदार भेज दिए, खुद नहीं गए। कोई जाए कैसे? आजकल नौकरी पेशेवालों को बारातों में जाने के लिए फुरसत कहाँ मिलती है? इसी तरह तुम्हारे ससुर जी भी देहात में जाने वाले असामी नहीं है, जब तक उन पर कोई खास दबाव न पड़े। उसपर बिना तुम्हारे पिता की आज्ञा के वह तुम्हारी श्रीमती जी को भेज नहीं सकते।"

मैं—"हाँ, यह तो सही बात कहते हो। तब?"

लाजीशियन—"तब क्या, मैं तुम्हारे पिता की तरफ से तुम्हारे ससुर जी को ऐसा तार दिए देता हूँ कि खास कर तुम्हीं से मिलने के लिए वह इस शादी में खुद जाकर शरीक हों और दूसरे ही दिन तुम्हें वहाँ से लाकर वह तुम्हारी श्रीमती जी को तुम्हारे साथ फौरन विदा कर दें। एक दिन के लिए भी वह तुम्हें न रोकें।"

मैं फड़क उठा और दिल खोल कर लाजीशियन की बुद्धि की प्रशंसा करते हुए कहा—"वाह दोस्त! यह तुम्हें खूब सूझी। क्यों न

हो ? आखिर मेरे ही दोस्त तो। मान गया। मगर तार में श्रीमती जी को फौरन भेज देने के लिए कौन सा बहाना गढ़ोगे ?"

लाजीशियन—"बस वही तो सिर्फ सोचना रह गया है। मैं चाहता हूँ कि उसे एकाध घण्टे खूब गौर से सोच कर लिखूं, ताकि तुम्हारे ससुर जी के दिल में बात बैठ जाए। और ऐसी घटना गढ़ूँ जो उनको मालूम हो कि तुम्हारे रवाना हो जाने के बाद यहाँ हुई है, तभी तो वह तुमसे मिलने के लिए दौड़े हुए मधनगरा जाएँगे।"

मैं—"बेशक-बेशक, तार तो ऐसा ही होना चाहिए, तभी काम बनेगा।"

लाजीशियन—"मगर मुश्किल यह है कि इसके लिए तब मुझे रुकना पड़ेगा। और मैं पण्डित जी के आगे झूठा भी बनना नहीं चाहता।"

मैं—"हाँ, यह अलबत्ता एक अड़चन पड़ गई। और हाय ! हाय ! गाड़ी भी कम्बख्त आ रही है। इतनी जल्दी में भला क्या हो सकता है ? रुकना तो तुम्हें पड़ेगा ही।"

लाजीशियन—"वाह ! ऐसा भी कहीं हो सकता है ? भला पण्डित जी क्या कहेंगे ? दोस्ती में फर्क आ जाएगा। यह गाड़ी गई तो और किसी गाड़ी से हम द्वारचार के वक्त पहुँच नहीं सकते। और हम लोगों को, जो पण्डित जी के न पट्टीदार हैं और न सजातीय, बस उसी में शरीक होने से मतलब है। इसलिए अगर हम इस गाड़ी से न जा सके तो फिर हमारे लिए वहाँ जाना बिल्कुल बेकार ही है।"

मैं—"पण्डित जी से तो तुम्हारी चार दिन की मुलाकात है और हमारी-तुम्हारी दोस्ती लड़कपन से है। इसका तो जरा ख्याल करो।"

लाजीशियन—"नाहक मैं तुम्हें बुलाने गया। तुमने अजब धर्म-सङ्कट में डाल दिया। अच्छा पण्डित जी से मेरी तरफ से बहुत-बहुत माफी माँग लेना। और कह देना कि मेरा मुकदमा खतम नहीं हुआ बल्कि कल पर टल गया।"

मैं—"कह दूंगा भाई, मगर तुम रुक जाओ। हाथ जोड़ता हूँ।"

गाड़ी छूटी तो मैंने खिड़की से सर निकाल कर फिर उसे ताकीद कर दी—"दोस्त, तार देने में देर न होने पावे। मेरे पहुँचने से पहिले ही वह ससुर जी को मिल जाए। समझे ? और बहाना खूब.....।"

उसने गाड़ी के साथ दौड़ते हुए चिल्लाकर कहा—"समझ गया, समझ गया; खातिर जमा रक्खो। मगर मेरी पीठ ठोंक कर बताना तो कि मेरी कूटनीति कैसी रही।"

उसकी पीठ तो हाथ बढ़ा कर मैंने ठोंक दी। मगर उसके सवाल का जवाब देते न बन पड़ा, महज गाड़ी की घड़घड़ाहट के मारे।

३

चिराग जलने के समय हमारी गाड़ी उन्नाव स्टेशन पर पहुँची। ख्याल था कि तार पाकर शायद ससुर जी पहिले स्टेशन ही पर आना मुनासिब समझें। क्योंकि उनके वास्ते यह ज्यादा आसान था। मगर वहाँ कोई भी ससुराली आदमी न देखकर मैं जरा चकराया, मगर बाद को सोचा कि लाजोशियन ने मेरे रवाना होने का वक्त तार में थोड़े ही लिखा होगा। उसने सिर्फ इतनी ही सूचना दी होगी कि बारात में गए हैं। इसलिए ससुर जी का यहाँ न आना कोई अचरज की बात नहीं मालूम हुई।

मुझे विश्वास था कि पण्डित जी ने इस गाड़ी से आए हुए बारातियों को मधनगरा पहुँचने के लिए सवारियाँ और आदमी तैनात कर रक्खे होंगे। मगर पिछड़े हुए बारातियों में अकेला मैं ही निकला टुटरू-टूँ। और मुसीबत यह कि स्टेशन पर बड़ी देर तक मैं टापता रहा, मगर किसी कम्बख्त ने मुझे बात तक न पूछी कि तुम कौन हो। किराये के इक्के, गाड़ी, तांगे, जो इस गाड़ी के मुसाफिरों के लिए जमा थे, वे भी सब हुर्र हो गए। अकेले तीन कोस जाना, वह भी नहीं मालूम किस तरफ इस अँधेरी रात में, उस पर न कोई सवारी न शिकारी—बड़ी तबीयत घबड़ाई। इधर श्रीमती जी की मुहब्बत दिल में अजीब ऊधम मचाए हुए थी। उनके इतने पास पहुँच कर

भला वह कब काबू में रह सकती थी। बार-बार यही जी में आता था कि सब ख्याल छोड़-छाड़ कर एकदम सरपट दौड़ता हुआ सीधे ससुराल ही में जाकर दम लूँ। मगर न जाने क्या सोच कर टाँगें जवाब दे देती थीं। इतने में एक फीलवान ने "चै मल" करता हुआ अपने हाथी को स्टेशन के पिछवाड़े खड़ा किया और वहीं से हाँक लगाई—"अरे मधनगरा बारात में चलइया है हो ?"

मेरी जान में जान आई, मैंने लपक कर जवाब दिया—"हाँ हाँ, हैं-हैं, हम हैं हम।"

फीलवान—"का कहत हो ? तनि जोर से बोलो। हम ऊँच सुनित है।"

मैं—"अरे ! हम जाएँगे।"

फीलवान—"का बिलार अस मेंव-मेंव करत हौ ? नटई में छेद नाहीं है। अउर जोर से बोलो।"

मुझे गला फाड़ कर कहना पड़ा कि—"हम जायँगे।"

फीलवान—"कए जने हो ?"

मैंने इशारे से बताया कि अकेले ही।

फीलवान—"तूहीं हौ अकसरे ? बाट पड़ी ! तब का जहाज अस हमार हाथी भिजवाइन ? नहके तो।"

मैं—"तब हम किस पर जाते ?"

फीलवान—"तू तो फिर मेंमियाय लाग्यो। मुँह से बक्कुर नाहीं फूटत है ?"

मैं झुँझला कर चिल्ला उठा—"अबे तो हम जाते कैसे ?"

फीलवान—"गोड़ नाहीं रहा ? चला अउतो पैदल। एक आदमी के लिए ससुर एतना बड़ा हाथी के साँसत दिहिन। अभी दुपहरिया के हीयाँ से खैंचियत मनई मुर्दा अस ढोय ले गैन है। इनाम-बकसीस भाड़ में गवा। किच्चो दमो नाहीं लेवे पावा कि जुरतिन रपटाय दिहिन। हाथी नाहीं जानों गदहा होय। दौड़ौते तो आयन हैं, नाहीं पहुँचबो न करित।"

जला हुआ तो था ही, उस पर उसकी बड़बड़ाहट से और बदन में आग लग गई। बस मैं मारे गुस्से के उबल पड़ा—"क्यों बे हराम-जादे सूअर के बच्चे! यह क्या बेहूदा बक रहा है? साले मारे जूतों के अभी फर्श कर देंगे।"

फीलवान—"अरे सरकार हम आपको थोड़े कछू कहेन हैं? हम तो अपना दुखड़ा रोवत रहेन। का करी सरकार, दिन भर भूखन मरिगैन अउर कौनो ससुर एक छेदामो बकसीस नाहीं दिहिस। यही लिए तो हम कव्वौ बरात के सवारी नाहीं चढ़ाइत है। मुल का कही हम अपने मालिक का। जेही माँगत है वही का हथिया दे देत हैं।"

खैरियत हो गई कि इस वक्त गुस्से में मैं डाँट-डपट कर गया, नहीं तो यह बेहूदा न जाने मुझे कितना परेशान करता। सच है। नीच नीचता ही से ठीक रहते हैं। लात के देवता कभी बात से नहीं मानते। एक ही घुड़की में हजरत कैसे ढीले पड़ गए? फिर भी मेरी तबियत उससे घबड़ाती ही रही। बदमाश तो बदमाश; कहीं बदमाशी किसी वक्त कर ही बैठे, कौन ठिकाना? इसी ख्याल से मैं हाथी पर सामने की तरफ मुँह करके आगे नहीं बैठा, क्योंकि उस जगह हाथी की सूँड़ पहुँचने का अँदेशा रहता है। दूसरे यह भी धड़का था कि फीलवान का इशारा पाकर हाथी अपनी सूँड़ में पानी भर कर मुझ पर न छोड़ दे। येही सब सोच-बिचार कर मैं दुम के पास पीछे की ओर मुह करके उकड़ूँ बैठा। और हर कदम में झोंके में लट्टू की तरह इधर उधर लुढ़कने लगा। ईश्वर जाने उस जगह पर कोई बिजली का तार लगा हुआ था या हाथी ही कम्बख्त अपना पिछला धड़ नचाता हुआ चलता था कि मैं किसी तरह अपने को सँभाल ही नहीं पाता था। उस पर वह बदमाश फीलवान अपने हाथी की बदमाशी का जो हाल बयान करने लगा तो और मेरे प्राण सूख गए। कहने लगा-"बाबूजी, जान्यो? बीस बरस से हम यू हाथी पर हन। हम ही एका चलाय पाइत है। और कौनों के मानत नाहीं है। एक दाईं एक साहब सिकार के लिए

एका जबरदस्ती मँगवाय पठइन। हम रहेन नाहीं। चरकटा का लेइ जाए के पड़ा। बीच ढर्रे में :तो हथिया बिगड़ा। चरकटा का अपने गरदन से टाँग पकड़ कर खींच लिहिस, अउर साहब झट पेड़े से लटक गए। नाहीं उनहूँ के अचार निकारत। तब्बे से कोऊ एकरे किनारे नाहीं जात है। मल! मल! चै!"

मैं सिकुड़ कर ईश्वर का नाम लेता हुआ दुम की तरफ और सरक गया। और इस डरावने प्रसङ्ग को बदलने के लिए उससे पूछा—"अब कितनी दूर है?"

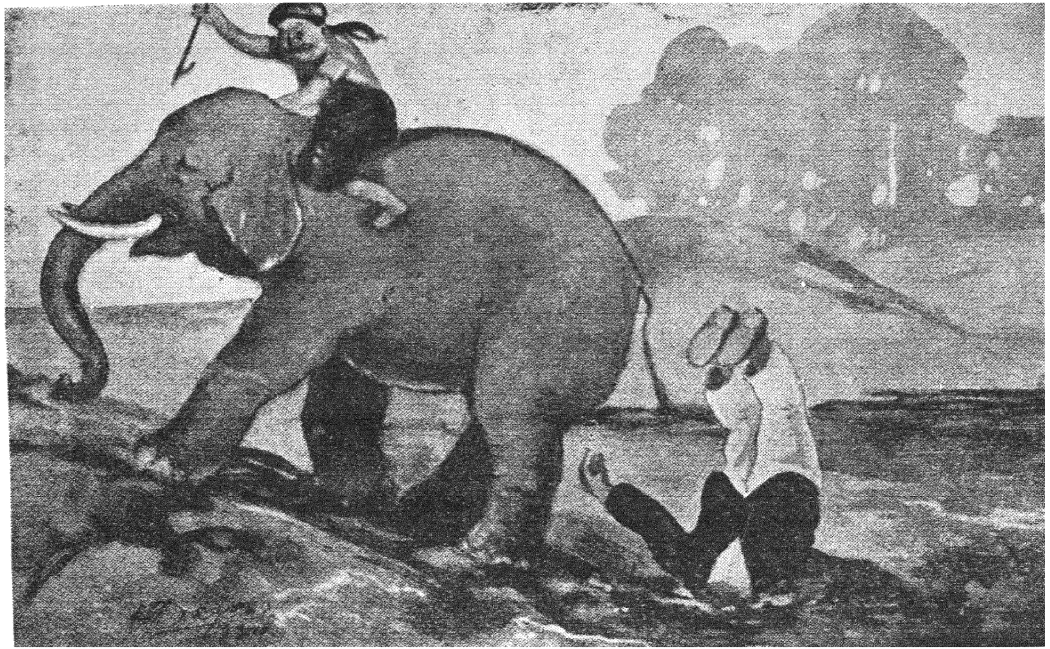
मगर उसने सुना कुछ और ही और लगा अपना राग अलापने—"का पूछेयो बरात कहाँ टिकी है? टिकिहे कहाँ बस बगिया में। देहात में एतिक मनई के लिए कहूँ महल बना होत है? दुई-चार जने होयँ तो कोनो हरवाहे के बखरी खाली कराय दीन जाए, मुल सैकड़न मनई के लिए बस बगिए सहारा जानो। मल! मल! ठोकर! हाँ गउवाँ में आज एक अउर बरात आई है। ठकुरन के होय, भैया बुद्धूसिंह के हीयाँ। तीन बरगदवा वाला पेड़ वही लोग छेकाए हैं। मुल ऊ बरात नीक, गाँवें के होय तो का? उनके हीयाँ सुनित है नाचो होई। पतुरिया बुलावे के लिए लढ़िया पठइन हैं। अउर पाँड़े के हीयाँ, बस टिड्डी अस सहर के मनई फाट पड़े। न नाच, न फाँच, न इनाम, न एकराम, बात अलबत्ता पसेरी-पसेरी भर के सुन लो। अउर लड़ाई के हवाल न पूछो। छिन-छिन भर पर आफत। अबते तो हुकुम जनाइन कि छे-छे सेर के हिसाब से दस घोड़ा के दाना पठए दो। पाँड़े कहिन कि घोड़ा के कहे एक गदहो तो नाहीं लायो है। दाना का करिहो लेके? एही पर भवा उखमज। यह लोग कहें नाहीं लायन नाहीं सही। हमरे हीयाँ दाना लीन जात है। हम बिना लिहे मानब न। पाँड़े कहिन अच्छा लीहो। जब ताईं भाँवर न होए जाई, दमड़ी के चीज न देब। भल किहिन। पानी तक पीवे का नाहीं दिहिन। अब भले भूखन फटकत होइहें। ओह पर सहर के मनई

बगिया में रहे के हवाल का जानें ? कइयू जने के कमला लाग गा, तौन खजुवावत-खजुवावत देहिया भर आपन नोच डारिन। सुथन्ना वुथन्ना उनके सब ढील होइगा। ई नाहीं जानत रहे कि देहाते में जूता धरे काँधे पर और पैजामा बाँधे मूड़े पर तब गुजर होत है। मल ! मल ! का कहेयो ? तू तो अस भिन्न से बोलत हो और ओह पर ओहर मुँह किए हो, सुनी का हम आपन मूँड़ ? पानी ? हाँ आज बरसा है। बरसत में अउर छीछालेदर भवा। सभै भींग गए। कइयू जने घारी और भुसैला में घुसर घुसर गए। एक जने के बल मारिस तौन पड़ा चिल्लात रहे। सोय गयो बाबू जो का ?"

मैं चुप रहा। इस बेहूदे के मुँह लगना ठीक नहीं मालूम हुआ। उस पर जब कलेजे में चिल्लाने का दम हो तब तो कोई इस बहरे से बात करे। वह कम्बख्त इसी तरह रास्ते भर बड़-बड़ाता रहा। रस्सा पकड़े-पकड़े मेरा हाथ कल्ला गया और झकझोरों से सारा बदन टूटने लगा। मारे सुस्ती के आँख अलग बन्द होने लगी। एकाएक मेरी पीठ पीछे की तरफ झुकी और हाथी के पैरों से चभाचभ की आवाज आने लगी। अँधेरे में एक दफा गौर से देखा तो मालूम हुआ कि हाथी एक नाले में उतर रहा है। दूसरे किनारे के चढ़ाव पर हाथी की दुम की तरफ झुक पड़ा। झोंके में हाथ का रस्सा छूट गया। हाथी की चाप के चभाचभ के साथ एक भचाक सी आवाज और हुई। और वैसे ही जाना कि हाय ! हाय ! दलदल के कीचड़ में मैं खोपड़ी के बल एकदम उल्टा खूंटे की तरह गप से गड़ गया।

४

आँख खुली तो अपनी नाक की सिधाई में आसमान के तारे दिखाई पड़े और अपने को नाले में चित लेटा हुआ पाया, सिर्फ सर पानी के बाहर जरा किनारे पर था और बाकी समूचा धड़ पानी के भीतर। समझ में नहीं आया कि मैं ऐसी जगह इस फैशन से क्यों



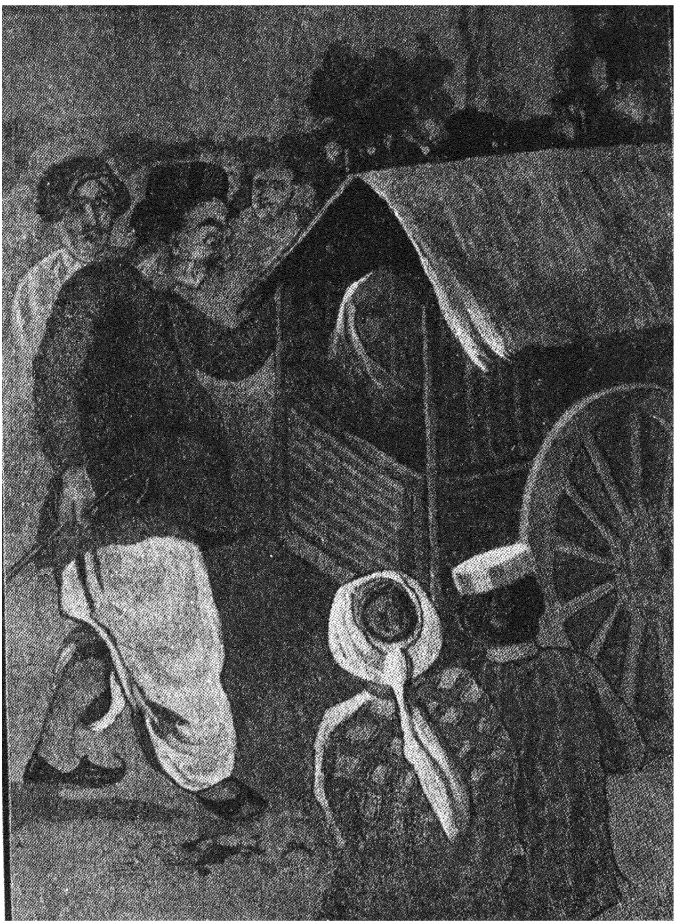
हाय ! हाय ! दलदल के कीचड़ में मैं खोपड़ी के बल एकदम उल्टा खूँटे की तरह गप से गड़ गया। [पृष्ठ २००]

लेटा हुआ हूँ। मगर जब कुछ होश ठिकाने हुए तो याद पड़ा कि ओ हो ! मैं तो हाथी पर से गिरा था। यही गनीमत हुई कि पानी से जरा हट कर दलदल में मेरी खोपड़ी धँस गई थी, नहीं तो वह बेचारी भी इस वक्त पानी के नीचे ही आराम करती। और बेहोशी में उसी के भीतर दम घुट कर मैं हमेशा के लिए ठण्ढा हो जाता। यों तो कीचड़ में भी यही बात हो सकती थी, मगर मालूम होता है कि गिरने के झोंके में शायद मैं बाद को कलाबाजी खा गया था मेरे सारे बदन का बोझ टाँगों की तरह मेरी खोपड़ी सँभाल न सकी। इसी से वह दलदल से उखड़ गई और इस तरह बे सहारे का होकर मेरे धड़ को पानी में लेट जाना पड़ा है। मगर मैं कसम खाकर कहता हूं कि यह बातें मेरे अनजाने हुई होंगी। क्योंकि होश में मुझसे कभी ऐसी बेवकूफी हो नहीं सकती थी।

पानी से किसी तरह निकला तो, मगर चेहरे और खोपड़ी पर एक अजब कन्टोप चढ़ा हुआ पाया। टटोला तो जाना कीचड़ है। लाहौल बिलाकूवत ! खैरियत थी कि अँधेरा इतना था कि हाथ तक सुझाई नहीं देता था, वरना देखने वालों का ख्याल तो अलग रहा, मुझे खुद ही बीच धारे में जाकर कपड़े पहनते डुबकियाँ लगाते शर्म मालूम होती। न जाने किस अक्ल के दुश्मन ने हाथी की सवारी ईजाद की है ? चढ़ते ही प्राण आसमान को चला जाए। बैठो तो बैठना आफत। बदन की चूल-चूल बिखर जाए—हौलदिल हो जाए। दिमाग चकरा जाए। जो कहीं चढ़ाव-उतार मिल जाए तो बस सीधे मौत के मुँह में। न एक इञ्च इधर और न एक इञ्च उधर। भला ऐसा जानवर सवारी के लिए रखना चाहिए ? हर्गिज नहीं। इसे तो फौरन मार कर खा जाना चाहिए।

अब लीजिए, हाथी का कहीं भी पता नहीं। अँधेरे में जिसे हाथी समझ कर पास जाता था वह कोई न कोई पेड़ ही निकलता था। यह बड़ी मुसीबत हुई। क्योंकि मेरा असबाब उसी पर था और

भींगे कपड़े पहने रहना मेरे लिए अब गैर-मुमकिन हो गया। ईश्वर जाने इतनी देर तक पानी में पड़े रहने से मेरे बदन की नस-नस में ठण्डक समा गई थी या सफर की थकान और हाथी के झकझोरों से मुझे सचमुच जूड़ी आ गई कि मैं बजते हुए तार की तरह एकाएक थरथराने लगा। हाथी पर मुझे अब भूल कर भी चढ़ने का शौक नहीं था। मगर कपड़े बदलने के लिए उसका ढूँढ़ना तो जरूरी था। ढूँढ़ता किधर ? हर तरफ अँधियारा। जरा सी बाइसिकिल जो होती है उसमें अगर रात में लम्प न हो तो चालान हो जाए, मगर इतने बड़े पहाड़ ऐसे जानवर की दुम में लालटेन भी नहीं बाँधी जाती। सरासर अन्धेर है कि नहीं ? एक तो हाथी साला योंही काला. उस पर उसके पैरों में नाल भी नहीं कि उसकी कुछ आहट ही मिले। तीसरे फीलवान भी मिला तो बदमाश, बहिरा और बेवकूफ तीनों। जिसे हाथी पर से आदमी लुढ़क जाने की खबर न हो सकी तो वह अब चिल्लाने से कहाँ सुन सकता था ? चिल्लाने के लिए दम भी तो चाहिए। और यहाँ सारा जोर बदन की कँप-कँपी में घुसा हुआ था। ऐसे ही वक्त पर ईश्वर याद आते हैं और वह भी ऐसे मौकों पर अपनी ईश्वरीय मदद पहुँचा कर अपने ईश्वरपन का झट सबूत भी दे देते हैं। बड़े उस्ताद हैं। ताकि दुनिया में उनका मान रहे। इसीलिए मुझे इधर-उधर कटे हुए कनकौवे की तरह भटकते भटकते एक तरफ चूँ-चूँ की आवाज सुनाई दी। उसके बाद आदमियों की भनक मालूम हुई। गिरता-पड़ता पास पहुँचा तो एक बैलगाड़ी जान पड़ी। धन्य भाग ! पूछने पर पता चला कि ठाकुर साहब की बारात में नाचने के लिए उस पर बी नसीबन मधनगरा ही जा रही हैं। मगर अफसोस ! पाँच रुपया देने पर भी साजिन्दों के पास कोई फालतू जोड़ा मर्दाने कपड़े का न निकला। आखिर बी नसीबन को दया आई। उसके नाचने वाले कपड़े अलग बँधे थे। उस बेचारी ने उसी को मुझे देकर मेरी जान बचाई। मरता क्या न करता ? इस जूड़ी में मेरे भीगे हुए



जब तक मेरे सर से किसी ने चादर खींच ली। वैसे ही सामने ससुरजी पर नजर पड़ी। फिर तो बौखलाहट में मेरे और उनके मुँह से एक दूसरे के स्वागत के लिए एक ही शब्द निकला—क्या ? "लाहौल विलाकूवत !"

[पृष्ठ २०३]

कपड़ों से वे लाख दर्जे अच्छे थे। अब जाकर कलेजे में थोड़ी सी गर्माहट पहुँची और जाना कि मुझ पर सचमुच बुखार चढ़ा हुआ है। इसी से सर दर्द के मारे मुझसे गाड़ी पर बैठा न रहा गया। सिकुड़ कर एक किनारे लेट गया। कुछ ही देर में मुझे दीन-दुनिया का कुछ भी होश न रहा।

एकाएक हल्ले-गुल्ले में मेरी आँख खुली। मगर 'किटसन लाइट' की रोशनी में मेरी आँखें चौंधिया गईं। मालूम हुआ कि कोई मुझे जबरदस्ती गाड़ी पर से उतार कर एक तरफ घसीटे लिए जा रहा है। मेरे चारों तरफ आदमियों की भीड़ लगी हुई है। और सभी जोश में चिल्ला रहे हैं कि—"ठाकुरों की ऐसी-तैसी? उनके यहाँ के बाराती नाच देखें और हम लोग मक्खी मारें?" "वाह! ऐसा नहीं हो सकता। यहाँ भी नाच होना चाहिए।"...."दो रण्डियाँ तो आई हैं। एक उन लोगों के लिए छोड़ दो और एक को यहाँ नचाओ।"...."हाँ-हाँ जरूर नाच होगा।"...."बारात में पण्डिताई नहीं चल सकती।" ...."आखिर हम लोगों को बुलाया क्यों?"...."हम तो जरूर नाच देखेंगे।"...."बस-बस इसी को ले चलो।"...."हाँ-हाँ, यह उससे अच्छी है। अच्छे कपड़े पहने हुए है। अजी जबर्दस्ती ले आओ।...."

इतने में कोई बोल उठा—"अरे! यह तो रण्डी नहीं, कोई मेहरा मालूम होता है।"

जब तक मेरे सर से किसी ने चादर खींच ली। वैसे ही सामने ससुर जी पर नजर पड़ी, क्योंकि नाच देखने वालों में इस समय अगुआ वे ही हो रहे थे। फिर तो बौखलाहट में मेरे और उनके मुँह से एक-दूसरे के स्वागत के लिए ही शब्द निकला—क्या?

"लाहौल बिलाकूवत!"

भला ऐसा भी शुभागमन किसी ने सुना होगा?

५

वाह री तकदीर! मुझे जनानी पोशाक में देख कर ससुर जी खुद

ही शरमा गए। मुझे ज्यादा झेंपने की जरूरत ही न पड़ी। उस पर बारातियों ने जो उन्हें बनाना शुरू किया तो वह यह समझे—जैसा कि बाद को उन्होंने लोगों से बताया—कि यह सरासर बारातियों का पाजीपन है। इन्हीं लोगों ने उन्हें बेवकूफ बनाने के लिए मुझे सोते में पेशवाज पहना कर उनके सामने पकड़ ले गए। खैर, जो कुछ भी समझे बहुत अच्छा समझे। क्योंकि इससे मेरी आबरू बच गई और वह मुझसे कुछ भी न बोले। हाँ, बारातियों और जनातियों में अलबत्ता रात भर खूब तुर्की-बतुर्की होती रही। मैं था बारातियों में, इसलिए मेरी वजह से बारती लोग मेहरा बनाए जाते थे। और ससुर जी थे जनातियों में, इसलिए यह बला उनके सर मढ़ कर यह लोग कहते थे कि वाह! हजरत वाह! आप लोगों की रिश्तेदारी तक में यह असर है तो फिर आप लोगों का क्या कहना है। बस मालूम हो गया। ईश्वर के लिए जरा दूर ही रहिए। कहीं हवा न लग जाए। इस भँड़ैती में सभी शरीक थे। सिर्फ दो ही आदमी इससे अलग रहे। एक ससुर जी और दूसरा मैं। वह झेंपती के मारे और बन्दा शराफत के मारे। क्योंकि मुझे इस किस्म की हँसी-दिल्लगी पसन्द नहीं और उस वक्त जरा तबीयत भी खराब थी।

एक घड़ी रात बाकी थी, ससुर जी मकान जाने के लिए तैयार हो गए और मुझे भी अपने साथ चलने को कहा। कहने लगे—"झटपट तैयार हो जाओ और चलो, मुझे आज ही बच्ची को बिदा करना है।"

मेरी बाछें खिल गईं और बड़ी उतावली से पूछा—"सचमुच?"

ससुर जी—"हाँ-हाँ, तुम्हारे पिता जी का तार आया है। बच्ची की वहाँ बड़ी सख्त जरूरत है।"

बात अपने मतलब की थी, इसलिए बड़े जोरों से गिरगिट की तरह सर हिलाता हुआ मैं बोल उठा—"जी हाँ, होनी ही चाहिए।"

ससुर जी—"मैं भी दो ही चार दिन में मुबारकबादी देने खुद आने वाला हूँ।"

मैंने बिना कुछ समझे-बूझे कह दिया—"जरूर ! जरूर !"

ससुर जी—"मगर तुम्हारे पिता जी भी अजब मसखरे हैं। उनके लड़का पैदा हुआ है तो सीधे सादे इस खुशखबरी को यों लिखते कि मेरे लड़का हुआ है, बहू को फौरन भेज दीजिए। मगर वह तो तार में भी मसखरापन कर बैठे। हजरत लिखते हैं कि इत्तिफाक से मेरी बुढ़ौती में इस वक्त एकाएक एक लड़का पैदा हो गया। भई वाह ! यह इत्तिफाक और एकाएक की एक ही रही।

लाहौल बिलाकूवत ! लाजीशियन कम्बख्त को मेरी श्रीमती जी को बुलाने के लिए और कोई बहाना नहीं सूझा था, जो उसने यह बे सरो पैर की बात गढ़ी ? भला पिता जी के कानों तक यह खबर पहुँचेंगी तब क्या होगा ? उस पर मैंने भी कैसी गलती की कि ससुर जी से कह दिया कि हाँ-हाँ, आप मुबारकबादी देने के लिए जरूर आइएगा। मैं क्या जानता था कि उस बेवकूफ ने तार में यह ऊट-पटाँग बात लिखी होगी।

दो ही-घण्टे मुझे ससुराल में रहना पड़ा। मगर इतनी ही देर में सास, महराजिन, नौकरानी और मुहल्ले की बायली औरतों ने अपने बेहूदे मसखरापन से मेरी माँ की जैसी मिट्टी पलीद की है, मेरा ही दिल जानता है। "आहो हो ! समधिन का क्या कहना ! बुढ़ापे में फिर जवान हो गईं। क्यों नहीं मिरचा जितना सूखता है, उतना ही कड़ुआ होता है।" यह सब सुनसुन के मैं मन ही मन लाजीशियन को हजारों गालियां दे रहा था। मगर जब मेरे साथ श्रीमती जी सचमुच बिदा कर दी गईं, तब अपने मित्र की बुद्धि की थाह पाई। और दिल खोल कर उसकी तारीफ की। क्योंकि और किसी बहाने में इतना जल्द असर कब मुमकिन था ? इससे मेरी ससुरालवालों ने भी जाना कि जच्चेखाने में समधिन साहबा की देख-रेख के लिए बच्ची का फौरन वहाँ पहुँचना बहुत जरूरी है। इसीलिए मैं वहाँ रोका भी नहीं गया और मजे में मेरा काम भी बन गया। और सब से

उसने सचमुच डिबिया से पान निकाल कर आधा खुद कुतर लिया और बाकी कुतरे हुए हिस्से को मेरे मुँह की तरफ बढ़ाया। मैं मारे गुस्से के जल मरा। मगर गुस्सा आया भी तो किस पर, ईश्वर पर; जिनकी मिन्नतें अपनी श्रीमती जी से मिलने के लिए मनाते-मनाते मैं मर मिटा और उन्होंने मेरी बिनती सुनी जरूर, मगर मिलाने में फिर भूल कर गए। उन्हें मिलाना चाहिए था मुझे मेरी हृदयेश्वरी से, मगर उन्होंने मुठभेड़ करा दिया मुझे इस चुड़ैल से। इसीलिए जिस जुलाहे का खेत उसके पड़ोसी की बकरी रोज चर जाया करती थी और उस बेचारे ने तङ्ग आकर रात भर दुआ माँगी कि या अल्ला मियाँ बकरी मर जाय, मगर सुबह को देखा कि खुद उसी का बैल मर गया। तब उसने ठीक ही कहा था कि, "अल्ला मियाँ, तुम्हें इतने दिनों अल्लामियाँई करते हो गया, मगर अब तक तुम्हें बकरी और बैल की तमीज न हुई।" और अब मुझे भी कहना पड़ता है कि "ईश्वर, तुम खाकी जानवर ही नहीं पहचान पाते हो, बल्कि स्त्री-स्त्री में भी भेद नहीं जानते हो। क्या कहूँ, न हुआ स्वराज, वरना तुम ऐसे अनाड़ियों को ईश्वरगिरी हर्गिज न करने देता। तुम्हारे विरुद्ध मैं जरूर कोई नया 'कैण्डिडेट' खड़ा करके सारे देश का 'वोट' दिलवा देता। मगर आजकल तो तुम्हारा राज्य है जो चाहो धाँधली करो। जानते हो न, कि तुम्हारे आगे किसी की कुछ चल नहीं सकती? हाय! जो कहीं तुम मेरी प्राणेश्वरी से मुझे मिला देते तो उसका जूठन, उसके तलवे का धोवन भी एक साँस में गट से पी जाता। मगर इस मरखण्डी देवनी का जूठन किस तरह चाटूँ? न बाबा, यह मुझसे नहीं हो सकता। यह ख्याल आते ही आँते उल्टी पड़ती हैं। इसलिए मैंने जल्दी से अपना सिर झुका कर अपना मुँह जाङ्घों में छिपा लिया, और हाथ जोड़कर बोला—"मुझे माफ करो।"

अब क्या था। उसने मुझे हाथ जोड़ते देख कर झट से अपना हाथ मेरी गर्दन में बिना 'नोटिस' दिए डाल दिया। मेरे प्राण सूख



कमबख्त ने मेरा हाथ पकड़ कर बाहर खींच लिया और आँखें लाल कर मुझसे बोला—"बस खबरदार! बहुत हो चुका। अब जो ज्यादा हाथ-पैर बढ़ाओगे तो चेहरा बिगाड़ दूँगा।" [पृ २०७]

मैं पहिले देख ही न सका था, वरना मैं ससुर जी के सामने ही इस पहन-पोशाक पर एतराज कर बैठता—मानता थोड़े ही।

मैंने जनानी गाड़ी के पास जाकर उनसे कहा—"अख्वाह! आप तो आज खूब लिल्ली घोड़ी बनी हुई हैं। देखिए हम आप दोनों अब बुड्ढे हो गए, और तब भी इतना लम्बा-चौड़ा घूँघट? अजी इस नहूसत को हटाइए! बरसों क्या, जन्म भर का प्यासा हूँ, जरा चाँद सा मुखड़ा दिखाइए, ताकि कुछ कहने के पहिले आपको फर्राशी सलाम तो कर लूँ।"

वह कुछ न बोलीं, बल्कि झिझक कर और सिमट गईं।

मैं बेताब होकर फिर कहने लगा—"अरे! ईश्वर के लिए जरा जबान ही हिलाए। कुछ ढाढ़स हो। आप तो ऐसी गोबर-गनेश बनी हुई हैं गोया बोलना जानतीं ही नहीं। अच्छा आइए, इस डब्बे पर से उतर चलिए और चल कर मेरे साथ बैठिए।"

एक आदमी मुझे जनानी गाड़ी की खिड़की पर डटा हुआ देख कर गाड़ी से, धम से प्लेटफार्म पर कूद पड़ा। और जैसे हीं मैं दरवाजा खोल कर अपनी श्रीमती जी को उतारने के लिए अन्दर जा रहा था वैसे ही उस कम्बख्त ने मेरा हाथ पकड़ कर बाहर खींच लिया और आँखें लाल कर मुझसे बोला—"बस खबरदार! बहुत हो चुका। अब जो ज्यादा हाथ-पैर बढ़ाओगे तो,चेहरा बिगाड़ दूंगा।"

मैं घबड़ा कर उसका मुंह देखने लगा—"अबे तुझे यहाँ किसने बुलाया? आखिर तू कौन बला?"

वह—"यह शरीफों का कायदा नहीं है कि दूसरों की बहू-बेटी की इज्जत में बट्टा लगाता फिरे।"

मैं—"अररररर! अपनी जोरू दूसरों की बहू-बेटी नहीं तो क्या अपनी बहू-बेटी होती है? उल्लू कहीं का, चला है हमीं को उल्लू बनाने।"

वह—"जरा जबान सँभाल के बात करो।"

मैं—"अबे क्या नशे में है? हम अपनी जोरू से बात करते हैं, तेरे बाप का क्या बिगड़ता है? क्या ससुर जी ने तुझे चौकीदार बना के साथ कर दिया है?

वह—"वाह बे जोरू वाले! कभी तेरे बाप ने भी जोरू देखी थी? हम अपने माल के चौकीदार न होंगे तब क्या तू होगा?"

गाड़ी ने सीटी दी। हम दोनों लड़ते हुए पास के तीसरे दर्जे में घुसे। बात बढ़ चली। गाली-गलौज के बाद हाथापाई की नौबत आई। चलिए जूतियाँ चलने लगीं। खूब चाँद गर्म हुई। मेरी खोपड़ी में जो गर्माहट पहुँची तो ख्यालात ने अजब रंग पकड़े। मैं सोचने लगा कि बारात में मेरी वजह से ससुर जी की भद हुई थी। कहीं उसी की कसर निकालने के लिए तो नहीं उन्होंने दूसरे की बीवी साथ कर दी है। नाराज तो मुझसे पहिले ही से थे। इसीलिए मैं ससुराल नहीं जाता था। इस नाराजगी पर मेरे ही कारण उनकी दुर्गत बनी। फिर भी वह मुझसे कुछ न बोले। इसीलिए तो, क्योंकि वह मजाक का बदला मजाक से देना चाहते थे। तभी वह भीगी बिल्ली बने हुए थे। मगर भाड़ में गई उनकी यह दिल्लगी। यहाँ खोपड़ी पिलपिली हो गई और जान अलग मुसीबत में पड़ा। फिर ख्याल आया कि शायद उन्होंने मेरी श्रीमता जी की दूसरी शादी न कर दी हो। विवाहोच्छेद' के पक्षपाती हैं ही। यह उनके लेख ही से मालूम होता है। इसमें नेतागिरी प्राप्त करने के लिए इनका 'श्रीगणेशायनमः' अपने ही यहाँ किया हो। कौन ठीक? कुछ लालची गँवारों ने लड़कियों की शादी का राजगार बना ही रक्खा है! और रुपया ले-लेकर कई जगह लड़कियों के पाँव चुपके से पूज आते हैं, जैसा अकसर रुखसती के मुकदमों में पता चलता है। मुमकिन है ससुर जी ने भी अपने 'विवाहोच्छेदप्रस्ताव' की बुनियाद डालने के लिए इसी तरकीब का सहारा लिया हो। और अपने दामादों को आपस में कट-मरने के लिए यों छोड़ कर आप अलग हो गए। बरना श्रीमती जी को इतने पर्दे में

लाकर गाड़ी में चढाने की क्या जरूरत थी ? मुझे अपना लेख पढ़ने को क्यों दिया ? चलते वक्त यह क्यों कहा कि "तुम्हारी जायदाद का एक और हकदार पैदा हो गया ?" और यह भी साला श्रीमती जी को "माल" ही कह रहा है, और अपना ! बस-बस, यही बात है। तभी श्रीमती जी मुझसे हमेशा भड़कती आईं। और मैं उनकी मुहब्बत में सदा उल्लू बनता रहा। हँसना-बोलना या मिलना कैसा, कभी अपने पास तक मुझे फटकने का मौका न दिया। दूसरे की बीबी होकर मुझसे परहेज किया ही चाहें। उफ ओ ! इसका भेद आज खुला। यह सोचते ही मैं आग-बबूला हो गया। ज्यों-ज्यों खोपड़ी भिन्नाती थी, त्यों-त्यों मेरा गुस्सा ससुर जी पर बराबर चढ़ता ही जाता था।

स्टेशन पर गाड़ी रुकते ही मेरी जायदाद का नया हकदार यानी श्रीमती जी का दूसरा मर्द लखनऊ रेलवे-पुलिस को तार देने की धमकी देता हुआ स्टेशन को लपका। मगर मैं उससे पहिले दौड़ कर दन् से ससुर जी को यह तार दे दिया—

"Your daughter has two husbands, wire which is the real one to station master Lucknow. Life in danger."

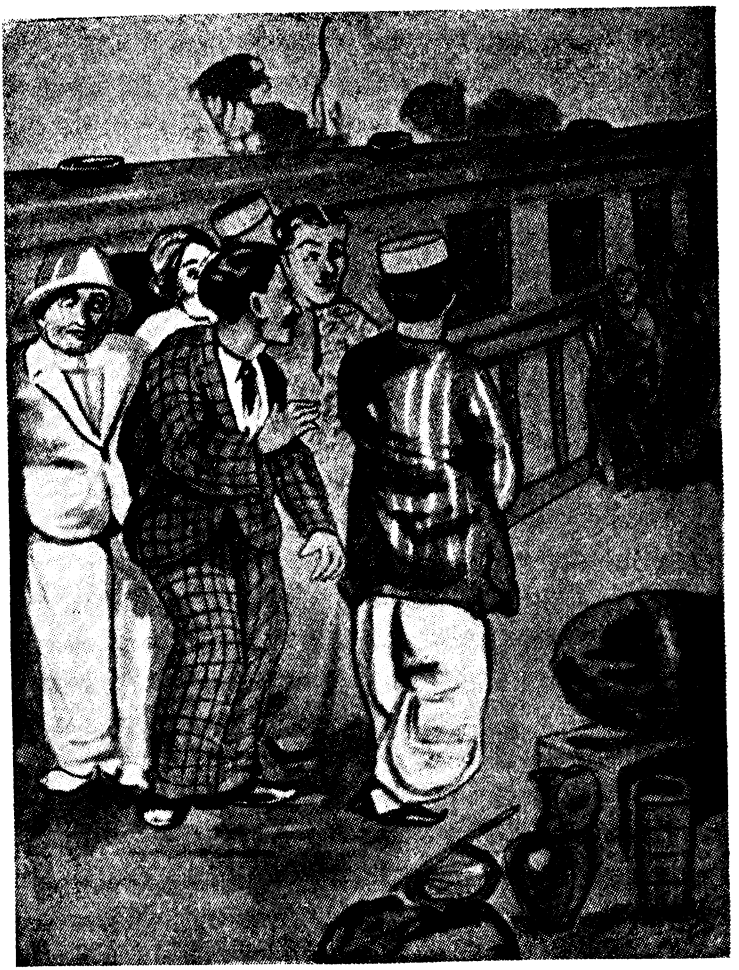
यानी—"आपकी लड़की के दो मर्द पैदा हो गए। लखनऊ स्टेशन-मास्टर को फौरन तार दीजिए कि कौन असली है। जान खतरे में है।"

इसके सिवाय श्रीमती जी को बचत का उपाय ही क्या था ? क्योंकि मुझे लखनऊ में गाड़ी बदलनी थी और वह साला वहीं उतरने वाला था। मजे से पुलिस की मदद से उन्हें अपने साथ ले जाता और मैं मुँह देखता ही रह जाता ! बचा चाल तो अच्छी चले थे, मगर मैं उसका भी चचा था। कैसी किश्त लगाई है कि हजरत अब बिना मात खाए बचते नहीं। ससुर जी को खाहमखाह मेरे हक में

तार देना पड़ेगा। क्योंकि मेरी शादी डङ्का बजा कर हुई थी। और इस पाजी की गुपचुप हुई होगी। यहाँ तक कि मुझे भी खबर नहीं। ऐसे वक्त इस कम्बख्त का पक्ष लेने की कभी उनकी हिम्मत नहीं पड़ सकती। अगर हयादार होंगे तो, जिस वक्त स्टेशन-मास्टर पुलिस वालों को मेरे तार का जवाब दिखाएँगे, तभी इस बदमाश की अक्ल ठिकाने होगी और इसे उलटे लेने के देने पड़ जायँगे।

मैं अब दूनी हिम्मत से उससे लड़ता हुआ स्टेशन से निकला और किसी तरह फिर दोनों एक ही गाड़ी में बैठे। जनानी गाड़ी के पास न मैं खुद गया और न उसी को जाने दिया। हम कोई कुली-कबाड़ी या देहाती तो थे नहीं कि बेहूदे की तरह मार-पीट में थकना न जानते हों? इसलिए शरीफों का जितना हाथ चल सकता है उतना ही चला पाता था। खैर, यह इतमीनान तो है कि उसकी कमी मेरी जबान से खूब पूरी होती थी; अङ्गरेजी, फारसी, हिन्दी-उर्दू सभी में मैं गालियाँ देता था। और शायद इन्हीं रङ्ग-बिरङ्गी गालियों को सुनने के लिए ही हम दोनों को किसी ने छुड़ाया भी नहीं। रास्ते भर यह मार-पीट और गाली-गलौज जारी रही। मुसाफिरों को इसमें कुछ ऐसा मज़ा आया कि उन लोगों ने हम दोनों में किसी को भी लखनऊ तक उतरने नहीं दिया। यही मैं चाहता भी था और इसीलिए खोपड़ी भिन्नाती थी, बला से, मगर मैं अपनी गाली-गलौज का ताव ठण्ढा नहीं पड़ने देता था। यहाँ तक कि लखनऊ जब एक स्टेशन रह गया और एञ्जिन बिगड़ गया, जिसके मारे गाड़ी पूरे डेढ़ घण्टे वहाँ रुकी रही तो भी मजाल है कि मेरी जबान एक मिनट के लिए भी रुकी हो। उस वक्त मैं और भी जोश के साथ गालियाँ देता था, ताकि उस पाजी का ध्यान मार-पीट में लगा रहे और यों उसे उतरने का मौका न मिले।

आखिर मेरी गाड़ी लखनऊ डेढ़ घण्टे 'लेट' पहुँची। 'प्लेटफार्म' पर मेरे चारों तरफ एक खासी भीड़ लगी हुई थी। और बीच में



अरररररर ! जनाने 'इण्टर' से एक के बदले दो औरतों को उतरते देख मेरे हाथ से उस पाजी की कमर छूट गई ।

[पृष्ठ २११]

मैं अपनी बीबी के हकदार की कमर पकड़े हुए छटपटा रहा था। वह हर तरह से अपने को मुझसे छुड़ाना चाहता था, मगर मैं भी उसे किचकिचा कर ऐसा जकड़े हुए था कि एक कदम भी उसे जनानी गाड़ी की तरफ नहीं बढ़ने देता था। जब रेल के कर्मचारियों को मालूम हुआ कि एक ही मुर्गी के लिए ये दोनों मुर्गे लड़ रहे हैं, तो उन लोगों ने कहा कि यह बात है तो दर्बे से मुर्गी को भी निकालना चाहिए, देखें वह किसकी तरफ लपकती है। मैंने चिल्लाकर कहा—"बहुत ठीक। तीन गाड़ियों के बाद जो जनाना 'इण्टर' है, उसी में मेरी श्रीमती जी अकेली बैठी हुई हैं। उतार लाइए और उन्हीं से पूछिए कौन उनका असली मर्द है। मगर इसकी जिम्मेदारी आपको लेनी होगी कि यह साला उनको अपने साथ न ले जाने पावे। और स्टेशन-मास्टर को भी बुला लाइए।"

मगर अरररररर! जनाने 'इण्टर' से एक के बदले दो औरतों को उतरते देख मेरे हाथ से उस पाजी की कमर छूट गई। हाय! हाय! अब जाना की वह घूँघट वाली सचमुच उसी की औरत है और मेरी श्रीमती जी तो निहायत फन्सी साड़ी पहिने हुए उसके पीछे ठुमकती हुई आ रही हैं। मगर यह उस वक्त कहाँ थीं, जब मैं उस घूँघट वाली को अपनी बीबी समझ कर उतरने के लिए कह रहा था। इसका जवाब उसका मर्द उससे बातें करके खुद ही बम्बाने लगा—'देखी-देखी, आप लोगों ने इसकी बदमाशी? मेरी बीबी भी कहती है कि जैसे ही वह औरत—(मेरी श्रीमती जी को बता कर) गुसलखाने के भीतर गई, वैसे ही तो यह कम्बख्त मौका देख कर इससे (अपनी जारू की तरफ इशारा करके) हाथापाई करने पहुँचा था। ऐसी चालाकी? वह तो खैरियत हो गई कि मैं फट पड़ा। पकड़े गए तो लगे कहने मेरी बीबी है, मेरी बीबी। पाजी कहीं का! जरा आजकल के बदमाशों की हिम्मत तो देखिए बाप रे बाप! अब जनानी गाड़ी में औरतों को छोड़ने लायक नहीं है।"

लाहौल बिलाकूवत ! तब तो सचमुच बड़ी गल्ती हो गई। हत तेरे 'पर्दा-सिस्टम' की ! जिन औरतों को घूँघट निकाल कर सफर करना हो उनको चाहिए कि रेल के बाबुओं की तरह 'लेबिलदार' टोपियाँ भी पहना करें, जिन पर उनके मर्दों के नाम मोटे-मोटे हर्फों में लिखे हों। वरना मेरी तरह न जाने कितने भलेमानुसों की खोपड़ी की खैर नहीं। श्रीमती जी को क्या कहूँ। वक्त पर छिप गईं और बोलीं भी नहीं। महज Bad Training (बुरी शिक्षा)। खैर यह बातें तो गईं भाड़ में, यहाँ मेरी जान अब यह सोच कर और घपले में पड़ गई कि हाय ! बौखलाहट में मैं ससुर जी को कैसा बेहूदा तार दे बैठा। इतने में एक तरफ कोई जोर से बोल उठा—"अख्वाह ! आप यहाँ ? आपको तो उन्नाव स्टेशन पर देखा था।"

दूसरा हाँफता हुआ कहने लगा—"जी हाँ, अभी-अभी मोटर से आ रहा हूँ ! तीस-बत्तीस ही मील तो है।"

यह तो ससुर जी की आवाज थी। घूम कर देखा तो हाय ! गजब ! सचमुच वही भीड़ चीरते हुए मेरी तरफ आ रहे थे। बस हवास गुम हो गए। मुँह दिखाने की हिम्मत न पड़ी। श्रीमती जी को वहीं छोड़, मैं सर पर पाँव रख कर भागा। पीछे मुड़ कर एक बार भी नहीं देखा। दूसरे प्लेटफार्म पर न जाने कहाँ की गाड़ी उसी वक्त छूटी थी। मैं झट से उसी में कूद कर घुस गया। लीजिए, श्रीमती जी फिर हाथ से निकल गईं। आह !

किस्मत को देखिए कि कहाँ टूटी जा कमन्द।
दो-चार हाथ जब कि लबे-बाम रह गया॥

हाँ-हाँ, सिर्फ दो ही चार हाथ। यही तो अफसोस है।

६

लाजीशियन की जबानी मेरे सभी यार-दोस्तों को पहिले ही मालूम हो चुका था कि मैं बारात से लौटते समय श्रीमती जी को लाने के लिए ससुराल भी जाऊँगा। इसलिए मकान पर मेरे पहुँचने

की खबर पाते ही यह लोग गिद्ध की तरह मुझ पर टूट पड़े। और आते ही लगे पूछने कि क्यों भई, ससुराल गए थे? बहाना करते-करते नाक में दम आ गया। आखिर सचाई को निबाहते हुए मैंने यह शेर पढ़ कर बला टालने की कोशिश की—

नहीं जाते तो यह दिल चैन से रहने नहीं देता।
मगर जब हम वहाँ जाते हैं, दर्द एक और लाते हैं॥

इसको सुनते ही यार लोग लगे मेरा बदन टटोलने। बलिहारी है उनकी अक्ल की कि "दर्द एक और लाने" का मतलब यह समझे कि ससुराल में इस दफे मैं फिर मारा गया। वाह! वाह! "भैंस के आगे बीन बजाए और वह बैठी पगुराए" इसी को कहते हैं। खैर! मैंने इन लोगों की बेवकूफी पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। मगर जब देखा कि दो ही तीन दिनों में यह खबर सारे शहर में आँधी की तरह फैल गई तब तो मेरे कान खड़े हुए। इसलिए इतवार के दिन जल्दी से खाना खाकर मैं नौ बजे ही दिन को अपने दफ्तर में इतमीनान से इस बदनामी को दूर करने का उपाय सोचने के लिए चला आया। मेरा दफ्तर मेरे घर से अलग एक किराये के मकान में था, जहाँ सुबह को बैठ कर मुवक्किलों का मैं इन्तजार करता था और शाम को क्लब से लौट कर यार-दोस्त अड्डा जमाते थे। पिता जी भी वकील थे। और दो आदमियों का एक ही घर में वकालत करना ठीक नहीं होता, इसलिए मुझे अपना दफ्तर अलग रखना पड़ा। मगर जिस इतमीनानके लिए इस वक्त यहाँ आया वह मुझे नसीब नहीं हुआ, क्योंकि छुट्टी के दिन होने के कारण दिमाग चाटने वाले मुवक्किल एक-एक करके टपकने लगे। उस दिन दोपहर ही को मेरे कुछ दोस्त लाजीशियन के साथ आ गए, जिनको देखकर इन बेकार के झाँय-झाँय करने वालों ने अपना बस्ता समेटा और मेरी जान छोड़ी। खैर, इस परेशानी में भी मैंने अपनी बदनामी मिटाने के लिए यह राय तय कर ली थी कि दोस्तों से अपना सच्चा-सच्चा हाल कह डालूँ, तभी

इन लोगों का ससुराल में मेरे मारे जाने का भ्रम दूर हो सकता है। आखिर मेरा ख्याल सही निकला। क्योंकि मेरी मुसीबतें सुनने के बाद सभों ने एकमत होकर सारा दोष मेरी श्रीमती जी ही को दिया, जिसकी मैंने भी दिल खोल कर ताईद की। अन्त में लाजीशियन ने बहुत कुछ सोच-सोच कर पूछा—"भला अब तुम्हारी श्रीमती जी की उम्र क्या होगी ?"

मैं—"शादी हुए तो मुद्दतें हो गईं, मगर देखने में अभी वह बिल्कुल वैसी ही हैं। अपने सर की कसम। क्या लाजवाब भोलापन है कि याद आते ही....."

लाजीशियन—"मैं पूछता हूँ उम्र और आप लगे भोलापन बयान करने। तुम्हारा यही तो बेतुकापन अच्छा नहीं मालूम होता। जब देखो तब बेवक्त की शहनाई बजाने लगते हो।"

मुझे हिसाब लगा कर बताना पड़ा—"यही कोई बाइस-तेइस बरस की होंगी।"

लाजीशियन—"ओहो! बीस बरस के ऊपर हो चुकीं ? तब भला वह तुम्हारा मुह देखना कैसे गवारा कर सकती हैं। उहुँक, गैर-मुमकिन है। इसलिए तो वह तुम्हारे साथ रवाना होकर भी तुमसे पीछा छुड़ाने की तरकीब कर बैठीं।"

मेरे साथ और लोग भी चौंक पड़े—"क्यों ? क्यों ?"

लाजीशियन ने बड़े इतमीनान से जवाब दिया—"अब तो वह पतिवर्ता हो गई होंगी।"

सब लोग हँस पड़े। मगर मेरे बदन में आग लग गई, क्योंकि इससे हमारी श्रीमती जी के पूर्व-चरित्र पर कलंक लगता था। मगर जब तक मैं लाजीशियन को कुछ कहता, तब तक उल्टे वही बिगड़ बैठा—"वाह जनाब! आप लोग हँसते क्या हैं ? बीस बरस के बाद स्त्रियों को पतिवर्ता हो ही जाना चाहिए। इसमें झूठ क्या है ? शास्त्र की बात है।"

अब तो मुझसे नहीं रहा गया, झुँझला कर कह बैठा—"तो क्या मेरी श्रीमती जी पहले पतिवर्ता नहीं थीं ?"

श्यामाचरण बीच ही में बोल उठे—"मगर यह तो इनके लिए और भी अच्छी बात है। क्योंकि यही तो उनके पति हैं भाई।"

लाजीशियन—"हुआ करें। जहाँ कोई स्त्री पतिवर्ता हुई तहाँ उसे पुरुष-जाति से घृणा हो गई। फिर एक नहीं, इनके ऐसे उसके अगर बावन पति हों तो क्या ? आखिर पति तो पुरुष-जाति ही का होता है। मगर क्या आप लोग पतिभर्ता के मानी कहीं पति को पूजने वाली तो नहीं समझते हैं ?"

जदुनाथ—"तब क्या इसके मानी कुछ और हैं ?"

लाजीशियन ने बड़े जोर से हँस कर कहा—"अहाहाहा ! यह कहिए तभी आप लोग भड़क रहे हैं। अजी इसके यह मानी नहीं हैं। यह तो कुछ स्वार्थी पतियों ने अपनी भोली-भाली स्त्रियों से अपने आप को जबर्दस्ती पुजवाने के लिए इस शब्द का यह रूप देकर इसके मानी में यह ढोंग रच रक्खा है। सच पूछिए तो असल में यह शब्द है पतिवर्ता, जो बिगड़ते-बिगड़ते इन्हीं लोगों की बदौलत अब पतिवर्ता हो गया है।"

श्यामचरण—"पतिभर्ता ? अच्छा तो इसके क्या मानी हुए ?"

लाजीशियन—"मानी शब्द ही से जाहिर है। पतिभर्ता यानी पति का भर्ता बनाने वाली, या कचूमड़ निकालनेवाली।"

जदुनाथ—"ओहो ! पतियों की अपनी जोरुओं के आगे दुम दबी रहती है। यार ठीक कहते हो। मान गया। इसके जरूर यही मानी होंगे।"

श्यामचरण—"अब तो मिस्टर सैक्सन को बुरा मानने की कोई वजह नहीं मालूम होती।"

मैंने ठण्ढी साँस लेकर शान्त भाव से कहा—"नहीं भाई। अब तो मैं भी यही कहूँगा कि हमारी श्रीमती जी सचमुच पतिवर्ता हो गई

हैं। आज से नहीं, बल्कि उसी दिन से, जिस दिन शादी हुई। उफ ओ! मुझे तड़पा-तड़पा कर मेरे दिल का जैसा उन्होंने कचूमड़ निकाला है उसे मैं ही जानता हूं।"

श्यामचरण—"और जो कहीं साथ रहने पाती तो तुम्हारा अचार ही निकल गया होता।"

जदुनाथ—"इसमें क्या शक है। पतिवर्ताओं से ईश्वर तक दबते हैं। मगर भाई लाजीशियन, तुम यह बड़ी दूर की कौड़ी लाए। क्योंकि यह बारीकी आज-कल कोई समझता नहीं।"

लाजीशियन—यह "स्त्री-शास्त्र" की बातें हैं। इन्हें लोग क्या जानें? काम-शास्त्र, रति-शास्त्र, कोक-शास्त्र के नाम तो सुने थे, बल्कि शादी के दो बरस पहिले से दो बरस बाद तक गीता की तरह रोज ही उनका पाठ करता रहा, जैसा अब कालेज के लगभग सभी नौजवान करते हैं, मगर स्त्री-शास्त्र आज तक देखने को भी नसीब नहीं हुआ था। मिलता तो इसे भी मैं जरूर बरजबान रट डालता। मुमकिन है, श्रीमती जी के लक्षण पहचानने में यही मुझे कोई ठीक ज्ञान बताता। जिससे मेरी मुश्किल आसान होती। इसलिए इसका नाम सुनते ही मैंने बड़ी उत्सुकता से पूछा—"यह मिलता कहाँ है?"

लाजीशियन—"मिलेगा कहाँ? यह क्या कामसूत्र, रसविज्ञान, या बदमाशी-शास्त्र की तरह पुरुषों का थोड़े ही बनाया हुआ है। इसकी रचना स्वयं महाराज शैतान देव ने की है और वह भी सामुद्रिक भाषा में, जिसका आज तक टाइप ही नहीं बन सका। जैसे ईश्वर ने भाग्य-शास्त्र को मनुष्यों की हथेलियों पर लिख रक्खा है, उसी तरह शैतान देव ने अपने स्त्री-शास्त्र को स्त्रियों की खोपड़ी पर बालों की जड़ों के नीचे रच रक्खा है। उस पर मुश्किल यह है कि मर्दों की तरह औरतें मुण्डी नहीं होतीं। इसी से इस शास्त्र का पता नहीं चलता। क्योंकि जब तक स्त्रियों की खोपड़ी के बाल आप से आप गिर नहीं जाते, तब तक उनकी असलियत नहीं खुलती। वह तो न जाने किस

देश की एक मुण्डी स्त्री हमारे नानाजान को मिल गई थी, जिससे उन्हें इस गुप्त शास्त्र की थोड़ी बहुत झलक मिली थी।"

श्यामाचरण—"ओहो! तब तो यह कोई बेढब शास्त्र मालूम होता है। इसमें जरूर ही बड़े सच्चे ज्ञान की बातें होंगी।"

लाजीशियन—"क्यों नहीं? मगर अफसोस तो यह है कि हमारे नानाजान इसका सम्पूर्ण ज्ञान प्राप्त नहीं कर सके। बीच ही में वह स्त्री उन्हें मारने दौड़ी और कसम रखा कर बोली कि खबरदार, इस ज्ञान को किसी को बताना नहीं; और अगर बताना भी तो उसी को, जो साल भर तक अपनी स्त्री से न बोलने की कसम खा ले, वरना सुनने वाले के लिए इसका असर एकदम उल्टा होगा।"

श्यामाचरण रँडुआ थे। जदुनाथ का अभी गवना नहीं हुआ था। और मुझे श्रीमती जी से मिलने की कोई उम्मीद ही नहीं थी, इसलिए हम तीनों ने बेधड़क कसम खाकर कह दिया कि उस शास्त्र का कुछ ज्ञान सुनाओ, मगर लाजीशियन को शायद मेरी कसम पर कुछ शक था। वह अनाकानी करने लगा, इसलिए उसको अच्छी तरह विश्वास दिलाने के लिए मैंने दुबारा कड़ी से कड़ी कसम खाई कि साल भर क्या, मैं दो साल तक श्रीमती जी से न बोलूँगा, क्योंकि मुझी को इस शास्त्र की सबसे ज्यादा जरूरत थी।

बड़ी मुश्किलों से हजार नखरों के बाद कसमों पर कसम रखाता लाजीशियन इस अनोखे शास्त्र को सुनाने के लिए राजी हुआ। उसने यों कहना शुरू किया—"अच्छा भाई, नहीं मानते तो कहता हूँ। मगर मुझे नानाजान की कुल बातें तो याद नहीं हैं। एकाध जो भूली-भटकी दिमाग में पड़ी हैं उन्हीं को कहूँगा। खैर सुनो, जैसे दिन के साथ रात, रोशनी के साथ परछाईं होती है वैसे ही परमपिता परमेश्वर के साथ श्रीमहाराज शैतानदेव भी लगे रहते हैं।"

जदुनाथ—"हाँ-हाँ, यह तो मानी हुई बात है। बाइबिल में लिखा है।"

लाजीशियन—"ईश्वर जब पृथ्वी बना कर उस सृष्टि की रचना करने लगे, तो अपनी परम योग्यता का नमूना दिखाने के लिए पुरुष-जाति को बनाया। उनका विचार था कि इसकी उत्पत्ति का ढङ्ग पेड़-पालो के नियम पर किया जाए, ताकि यह जाति बिना अन्य किसी की सहायता के आप से आप उपजा करे। वैसे ही शैतान देव हाथ जोड़ कर बोले—'महाराज, यह आप क्या अनर्थ कर रहे हैं। पुरुष जाति की बुद्धि भ्रष्ट करते रहने का आप कोई उपाय न करेंगे तो यह अपनी योग्यता से जीवित ही अवस्था में देवलोक पहुँच कर स्वर्ग पर अपना अधिकार जमा लेगी। इसका ज्ञान इतना बढ़ जायगा कि अपने आगे आपके ईश्वरत्व को भी कुछ नहीं समझेगी। नरक में उल्लू बोलेंगे। वहाँ चालान करने के लिए हमें एक भी पापी न मिलेगा। हम बैठे खाली मक्खियाँ मारेंगे, क्योंकि जब तक इसका ज्ञान भ्रष्ट नहीं होगा, तब तक यह जाति पाप की तरफ कैसे झुकेगी ?"

ईश्वर चकराए और घबड़ा कर बोले—"हाँ यह तो है। मगर अब क्या करें ?"

शैतानोवाच—"बस, आप इसकी दुम में कोई ऐसा उपद्रवी, अनर्थकारी और पाखण्डी जानवर बाँध दीजिए कि जिसे देखते ही इसका ज्ञान भ्रष्ट हो जाया करे। जिसके पीछे यह सारी जिंदगी तबाह रहे; जिसकी खातिर यह कोई भी पाप करने के लिए न हिचके। जो बाप-बेटों में, भाई-भाई में खून करा सके। हर वक्त इसे सत्यानाशी की तरफ ढकेल सके। इसकी बुद्धि को कभी अधिक बढ़ने न दे ! और जिसके बिना इसका कोई काम भी चल न सके...."

इतने ही गुणों की तारीफ में ईश्वर के होश उड़ गए। कानों पर हाथ धर कर बोले—"ना बाबा, यह हमारे मान का नहीं है। ऐसे भयङ्कर जानवर की कल्पना करना शैतान ही का काम हो सकता है।"

फिर क्या था ? इतना इशारा पाते ही शैतान बाबा ने पुरुषजाति के गले मढ़ने के लिए झट खुद ही स्त्री-जाति का नमूना बना कर ईश्वर

को दिखा दिया और उसके सहयोग से मनुष्य-जाति की सृष्टि करने का उपाय भी सुझा दिया। इति स्त्री-शास्त्रे भूमिका खण्डे।"

श्यामाचरण—"यार यह तो सही मालूम होता है। देखो, संसार में जितने झगड़े-बखेड़े होते हैं वह ज्यादेतर स्त्रियों की ही बदौलत।"

जदुनाथ—"हाँ-हाँ, जिस जाति की रचना स्वयं शैतान के बनाए हुए नमूने के अनुसार हो वह जो न उपद्रव कर दे, वही थोड़ा है।"

मेरे दिल में भी बात पैठ गई और मैंने सभों से ज्यादा चिल्ला कर कहा—"अजी नमूने से क्या होता है, मैं तो यहाँ तक कहने को तैयार हूँ कि इस जाति की रचना भी शैतान ही ने की होगी, वरना मेरी श्रीमती जी भला सारी जिन्दगी मुझे इस तरह उल्लू बना सकती थीं? हरगिज नहीं।"

लाजीशियन—"हाँ-हाँ, इतना मत चिल्लाओ। नहीं कोई स्त्री सुन लेगी तो अपने साथ हम लोगों को भी पिटवाओगे क्या?"

अब चाहे कोई बुरा माने या भला। मगर सच्ची बात दिल में घुस कर अपनी सचाई उगलवा ही लेती है और जले हुए दिल से तो हमेशा सच्ची ही बात निकलती है। अच्छा पाठिका महारानी, आप ही न्याय कीजिए! मेरी जीवनी शुरू से आखीर तक एक साँस में सिलसिलेवार पढ़ कर बताइए कि शैतान ने हमको बनाया है या हमारी श्रीमती जी को। हाँ, ईमान-धर्म से पक्षपात छोड़ कर। बस, मेरी झुठाई-सचाई आप ही खुल जायगी। मगर ईश्वर के लिए आप बुरा न मानिएगा। क्योंकि आप तो देवी जाति की हैं। यह मैं पहिले ही कहे देता हूँ, ताकि आपके इन्साफ में गड़बड़ी न हो।

लाजीशियन ने सभों के आग्रह पर फिर कहना शुरू किया—'ईश्वर स्त्री-जाति का नमूना देखकर फड़क उठे। मुग्ध होकर बोले—अहाहाहा! कैसी मनमोहिनी चीज आपने बनाई है। देखने में कितनी सुन्दर, कैसी मुलायम और सीधी है कि वाह! वाह।"

शैतानोवाच—"जी हाँ, तभी तो पुरुषों की बुद्धि भ्रष्ट होगी।

मगर यह मुलायमियत बस देखने ही भर के लिए है. क्योंकि इसमें जैसी कठोरता और टेढ़ापन है, वह न आपके वक्र में है और न रेखागणित के किसी कोण में।"

मैं—"अरे ! उस जमाने में रेखागणित कहाँ था ?"

लाजीशियन—"क्यों ? इसकी विद्या मनुष्यों को चाहे बाद को मालूम हुई हो, मगर थी तो ईश्वर के दिमाग में, वरना वह चाँद-सूर्य की गोलाई, किरणों की सिधाई, पदार्थों के भिन्न-भिन्न आकार कैसे बनाते ?"

श्यामाचरण—"हाँ जी, वह ईश्वर ही ठहरे। सब चीजों के जानने वाले। यह ऐसे ही खुरपेंच लगाया करते हैं। आप कहिए !"

लाजीशियन—"अच्छा सुनिए, परमपिता ईश्वर कहते भए × ×"

जदुनाथ—"अहाहा ! कहने का ढङ्ग तो देखो। 'कहते भए'। बिल्कुल शास्त्र है। अब भी जो इसे शास्त्र न समझे तो वह महा घाँमड़ है।"

लाजीशियन—"ईश्वर बोलते भए, हे शैतान देवता, इस मन-मोहिनी जन्तु के अब गुणों का बखान कीजिए ! शैतानोवाच—अच्छा महाराज, सुनिए। इसके गुणों का हाल कहने के पहिले इसके जातीय भेदों को बताना उचित होगा। पुरुष-जाति तो अपनी अज्ञानता से इसका विभाग पद्मिनी, चित्रिणी, शङ्खिनी और हस्तिनी में करेगी, मगर सच पूछिए तो इसकी जाति अपनी जातीयता में समान होगी अर्थात् स्त्री पन में स्त्री स्त्री एक ही होगी। हाँ, भेद केवल ऊपरी बातों में, जैसे रूप विद्या, बुद्धि, सुकुमारता इत्यादि में हुआ करेगा। मगर यह व्यक्तिगत भेद है, जातीय नहीं कहा जा सकता। इसलिए इसका जातीय विभाग इसकी अवस्थानुसार होना चाहिए, जो तीन हैं। अर्थात (१) गर्विता (२) पतिभरता—यह शब्द बाद को पुरुषों की चालाकी से पतिव्रता के नाम से प्रचलित होगा—और (३) अनुगृहीता। स्त्री की जातीयता पन्द्रह बरस से शुरू होगी। और

पन्द्रह बरस से बीस बरस तक यह गर्विता रहेगी। यानी इस पर सुन्दरता का नशा ऐसा चढ़ा रहेगा कि यद्यपि पुरुषों से इसका हँसने-बोलने का बड़ा जी चाहेगा, तथापि मारे घमण्ड के किसी से भी सीधे मुँह बात न करेगी। और बीस बरस के बाद चालीस बरस तक के लिए इसका दूसरा भेद चलेगा। इस अवस्था में इसे बच्चे खिलाने और हुकूमत जताने की रुचि हो जाएगी, जिसके आगे उसकी पुरुष-जाति की चाहत दब जाएगी। इसलिए यह पतिभर्ता या पति-पतिव्रता कहलाएगी। परन्तु चालीस बरस के उपरान्त यानी तृतीय अवस्था में यह अपनी असलियत पर आएगी। इस समय अलबत्ता यह पुरुष-जाति के बोलने का अनुग्रह मान सकती है इसलिए इसका नाम अनुगृहीता होगा। इसीलिए बुद्धिमान को चाहिए कि गर्विताओं और पतिभर्ताओं को दूर ही से प्रणाम करे और अपनी कुशलता चाहे तो भूल कर भी इनसे प्रेम करने का साहस न करे। इति स्त्री-शास्त्र भेद-विधान खण्डे। बोलो भाई श्री शैतान जी की जय!"

सारा कमरा जय-जयकार के कोलाहल से गूँज उठा। मगर मेरा मुँह खाली खुलकर रह गया—आवाज न निकली। क्योंकि मेरा तो होश उड़ा हुआ था।

श्यामाचरण—"क्यों मिस्टर सैक्सन, आप चुप क्यों हैं? क्या आप इन बातों को झूठ समझते हैं?

मैं—"नहीं भाई। मैं तो भुगते हुए हूँ। मेरा बराबर भला दूसरा कौन इन्हें सच समझ सकता है? तभी तो मैं सोच रहा हूँ कि श्रीमती जी के अनुगृहीता होने में अभी सतरह-अठारह बरस बाकी हैं। इतने दिनों तक कैसे सब्र कर सकूँगा?"

जदुनाथ—"अपनी सलामती चाहते हो तो सब्र करना ही पड़ेगा। भई बुरा न मानना। साफ-साफ कहना अच्छा होता है।"

मैं—"मगर-मगर, हाँ मेरी श्रीमती जी के तो अभी कोई बच्चा ही नहीं है, इसलिए मेरे लिए उनके दिल में जगह अभी जरूर खाली रहनी चाहिए।"

लाजीशियन—'जी, इस मनसूबे में न रहिएगा। बच्चा न हो न सही। होने का मौसिम तो उनके सर पर सवार हो गया; जिसमें उनकी रुचि का बदल जाना जरूरी है। जैसे जाड़ा पड़ते ही सबको सर्दी लगती है, चाहे किसी के पास जड़ावर हो या न हो, वैसे ही इसको भी समझ लो। सारा खेल उम्र का है भाई!"

लीजिए, मेरी रही-सही उम्मीद भी जातीं रही।

श्यामाचरण—"अगर पतिव्रताओं को पुरुष-जाति की चाहत नहीं रहती तो यह लोग अपने पतियों को निकाल बाहर क्यों नहीं कर देतीं?"

लाजीशियन—"यह अच्छी कही। निकाल दें तो यह हुकूमत किस पर बतावें? नौकर एक ही फटकार में भाग खड़ा होता है। और किसी में इतनी डाँट-डपट सुनने का दम कहाँ? यह पति ही लोगों में इतना जीवट है कि रात-रात भर अपनी बीबियों की फटकार गुटुर-गुटुर सुना करते हैं और सुबह को मूँछों पर ताव देकर फिर ज्यों का त्यों हो जाते हैं। ऐसे अड़ियल टट्टू को पाकर भला कौन स्त्री निकालना पसन्द कर सकती है, जिसका न दाना देना पड़े, न घास; उल्टे वही कमा-कमा कर खिलावे और रातों-दिन झिड़कियाँ सुने घाते में?"

जदुनाथ—"धन्य हो महाराज! बलिहारी है आपकी। खूब कहा। मालूम होता है, चचा शैतान स्वयम् आपकी खोपड़ी पर इस समय विराजमान है, वरना इतने मुश्किल सवाल का ठीक-ठीक जवाब देना गैर मुमकिन था।"

अब तो मुझमें कुछ थोड़ी सी जान फिर आ गई। मुमकिन है, श्रीमती जी भी अपने अड़ियल टट्टू को अपने पास बुलाने की कभी जरूरत समझें।

लाजीशियन ने अपना शास्त्र फिर शुरू किया—"ईश्वर इस भेद-विधान से सन्तुष्ट होकर बोले—अच्छा इस मनमोहिनी जीव के लक्षणों का भी कुछ हाल सुनाइए।"

शैतानोवाच—"हे जगत्पति, यों तो इसके लक्षण बहुतेरे हैं, परन्तु मुख्य तीन ही माने जाएँगे। जिनके अनुसार यह निम्न तीन विशेषणों की अधिकारिणी होगी—(१) पाखण्डी (२) बकवादिनी और (३) कङ्कालिनी। यह तीनों ही गुण इसकी प्रत्येक अवस्थाओं में पाए जाएँगे, परन्तु इसमें कोई न कोई किसी न किसी अवस्था में विशेष अवश्य रहेगा। जैसे गर्विता में पाखण्ड गुण बलवान होगा। वे लोग कहने को रात तो कहेंगी दिन। पूछिए जमीन की बात तो बताएँगी आसमान की। बस इतने ही में पुरुष-जाति की अक्ल गुम हो जाएगी। इसी तरह पतिव्रता में बकवाद लक्षण प्रधान हो जाएगा। पहुँचते ही दिमाग चाट लेंगी। हुकूमत, फटकार, शिकायत, कोसना, मुँह फुलाना, माँगना सभी की, ऐसी झड़ी लग जाएगी कि पति जी साँस भी न ले सकेंगे और उनके दिमाग का अच्छी तरह भरता बन जाएगा। अब रहा तीसरा लक्षण, वह अपना चमत्कार विशेषकर तीसरी अवस्था में दिखाएगा। इसलिए अनुगृहीता सबसे अधिक कङ्कालिनी होंगी। राह चलने हवा तक से लड़ेंगी। सीधी बात में भी ऐसी बेढब चिनगारियाँ निकलेंगी कि घर का घर झुलस उठेगा। क्योंकि इनका हृदय तो स्वयं इस बात से सदा जला ही करेगा कि हा! पुरुष-जाति कितनी मूर्ख है कि यह गर्विताओं और पतिव्रताओं के फेर में पड़ी हुई है। इति स्त्री-शास्त्र लक्षण-बखान खण्डे। बोलो शैतान काका की जय।"

काका की धूम मच गई। तालियाँ बजा-बजा कर उनके नाम पर बधाइयाँ दी जाने लगीं। मगर लाजीशियन ने सबको मना करके कहा—"ईश्वर के लिए इतने जोर से नहीं भाई, वरना इस शास्त्र का जहाँ एक शब्द भी किसी स्त्री के कान में पड़ा तहाँ सब गुड़ गोबर हो जाएगा। अच्छा भाई, इसके आगे भी झटपट सुन लो। ईश्वर ने जब इसकी प्रकृति के विषय में पूछा, तब शैतान देवता एक पैर पर खड़े होकर बोले—हे करुणानिधान, इसका हाल न पूछिए। यह इतनी

विकट, इतनी अथाह, इतनी रहस्य और भ्रमपूर्ण है कि बस इसी को बनाने में तो हमारी सारी शैतानी खर्च हो गई है। इसको ठीक-ठीक समझने के लिए संसार में न कोई ज्ञान होगा, न विद्या और न बुद्धि। तब ईश्वर ने कहा कि जब इसकी प्रकृति इतनी कठिन और दुर्गम्य रक्खी जायगी जो पुरुष-जाति इसे जान कैसे सकेगी ?"

शैतानोवाच—"यही तो हमारी शैतानी है भगवन्! कि पुरुष जाति इसकी कभी थाह ही न पावे। तभी तो बड़े-बड़े पण्डितों, बुद्धिमानों औ ! ानियों का भी गर्व चूर हो सकेगा और अपने कर्मों पर हाथ धर कर कहेंगे—स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्याः।"

ईश्वर बोले—इसके रहस्यों का हाल कुछ सुनाइए तो!

शैतान ने उत्तर दिया—अच्छा जगत्पति, बताता हूँ, परन्तु पुरुष जाति से यह भेद गुप्त रखिएगा। नहीं तो वह सावधान हो जाएगी और तब इसकी ही नहीं; बल्कि संसार की भी रोचकता नष्ट हो जाएगी। अस्तु, सुनिए! सबसे पहिले नमूने के तौर पर स्त्री-जाति के कुछ शब्दों और वाक्यों के जो असली अर्थ होंगे, कहता हूँ:-

शब्द तथा वाक्य				असली अर्थ
नहीं	....	....	...	हाँ
उहुँक	...	....	...	अच्छा
चल हटो	...	....	...	और पास आओ
खबरदार	....	...	...	बहुत खूब
हमसे मत बोलो		...	...	खाली बोलो ही नहीं, बल्कि हाथापाई भी करो।
गाली	...	...	...	धन्यवाद

(चुम्बन के बाद)

यही तो नहीं अच्छा मालूम होता।

तुम बड़े खराब हो	....		...	बलिहारी! एक दफे और।

प्यारे		उल्लू
प्राणनाथ		महामूर्खाधिराज !
तुम्हारे दर्शनों की प्यासी हूं	...	तुमसे मेरी कोई मरज अटकी है।
मैं तुम्हें प्यार करती हूँ	...	तुम्हें उल्लू बना कर मैं तुमसे कुछ ऐंठना चाहती हूँ।

इतना सुनते ही ईश्वर विचलित होकर बोल उठे—"यह क्या ऊटपटाँग बकने लगे। बस-बस, इस भ्रम-कोष को बन्द कीजिए।"

शतानोवाच—"भगवन्, इस जीव के प्रेम के मानी-मतलब ही होंगे तो मैं क्या करूँ ? हाँ, पुरुषों के प्रेम का मानी अलबत्ता गधापन होगा। तभी तो यह प्रमिका को उल्लू की तरह आँखें फाड़-फाड़ कर घूरेंगे और प्रेमिका सदैव तिर्छी नजरों से नीचे ताकेगी, ताकि इसकी दृष्टि टेंट पर रहे, अलग न बहकने पाए। मगर उसके मूर्खाधिराज जी अर्थात् प्रेमी महोदय, यह समझ कर कि शर्म से आँख नहीं मिली और उल्लू बना करेंगे। इसी तरह पुरुष-जाति मूर्खतावश समझेगी कि उसकी पहन-पोशाक को स्त्री-जाति पसन्द करती है, इसलिए यह इसके आगे छैला बनने की कोशिश करेगी। परन्तु यह उसकी और मूर्खता होगी, क्योंकि स्त्री-जाति सिवाय अपने दूसरे किसी का भी बनाव-चुनाव नहीं देख सकेगी। तभी तो सड़कों पर लम्बी धोती और अच्छी पोशाक वाले पुरुषों को पाते ही घृणा से घूँघट निकाल कर मुँह फेर लेगी और कच्छड़ चढ़ाए गँवारों के आगे मुँह खोले रहेगी। लँगोटी वाले साधुओं और नागे-बाबाओं को पूजेगी। इति स्त्री-शास्त्रे पाखण्ड खण्डे। बोलो शैतान बाबा की जय !"

श्यामाचरण और जदुनाथ वाह-वाह करके उछल पड़े और मैं भी इस शास्त्र की अनोखी बातों पर फड़क उठा और अपनी बहुत सी गलतियों को समझ गया।

मैं—"सचमुच दोस्तो, इस बेढब शास्त्र की बातें बहुत सही मालूम होती हैं। अफसोस है कि मैं इसे पहिले से नहीं जानता था। उफ् ओ! इतनी जिन्दगी नाहक गधापन में बीती।"

श्यामाचरण—"अजी यह शैतानी शास्त्र है, कोई ठट्ठा थोड़े है। इसकी सचाई पर भला कौन शक कर सकता है? बस समझने वाला चाहिए।"

लाजीशियन—"क्यों नहीं, इसकी सचाई ईश्वर तक को माननी पड़ी। वह समझ गये कि पुरुषों के भयङ्कर दिमाग को ठिकाने रखने के लिए शैतान बाबा की सलाह सोलहो आने कील-काँटे से दुरुस्त है। तभी तो वह उनके इस नमूने को अपनाने के लिए मजबूर हुए। हाँ अपने सन्तोष के लिए और संसार में अपने ईश्वरत्व का परिचय देने के लिए इसके गुणों में अपने ईश्वरीय शील-स्वभाव और सुलक्षणों से रद्दोबदल कर कुछ आदर्श रमणियों की भी रचना कर दी। मगर बहुत थोड़ी सी। इसलिए इनसे यह शास्त्र कुछ भी सम्बन्ध नहीं रखता।"

श्यामाचरण—"तो हमें इनके बारे में जानने की कुछ जरूरत भी नहीं है। हमें तो बस शैतानी कारखाने की स्त्रियों के हाल से सरोकार है, जिनसे हम लोगों का पाला पड़ा है—क्यों मिस्टर सैक्सन?"

मैं और ही धुन में था। इसलिए गड़बड़ा कर बोल उठा—"मगर इस शास्त्र में चुम्बन पर कोई अध्याय नहीं है।"

लाजीशियन—"वाह, है क्यों नहीं? इसमें कौन सी बात नहीं है? यह तो इतना अथाह है कि कभी समाप्त ही नहीं हो सकता। आप ही लोग बीच में पूछ-ताछ करने लगे, इसीसे बहुत सी बातें छूट गईं। सुनिये, इसके विषय में हमारे शैतान बाबा कहते हैं कि चुम्बन पाने का तो स्त्री का स्वाभाविक हक होगा, जिसकी रक्षा वह अपनी सभी कलाओं द्वारा करती रहेगी। मगर यह चोरी और छीना-झपटी से लेने की चीज है। जो कोई इसे प्रार्थना पूर्वक माँग कर लेना चाहेगा, उससे वह बिगड़ उठेगी, फिर उसका कभी मुँह देखना पसन्द न

करेगी। मगर यह कार्रवाई हमेशा आँख बचा कर करनी चाहिए। क्योंकि—

"When no tell tale spy is near us,
Eye not sees, nor ear can hear us.
Who would not be kissed ?"

अर्थात् जहाँ कोई झाँकने, ताकने, ताड़ने या सुनने वाला न हो, वहाँ भला कौन ऐसी स्त्री है जो चुम्बन न चाहे ? ऐसे सुअवसर में भी पुरुष चूके तो वह स्त्री की दृष्टि में महाघामड़ होगा और अगर स्त्री परहेज करे तो फौरन् समझना चाहिए कि उसके ओठों में फुन्सी निकली है या उसके गालों पर रङ्ग चढ़ा है, जिसकी कलई खुल जाने का डर है या वह मूली, लहसुन, प्याज की तरह कोई बदबूदार चीज खाए हुए है, जिसकी दुर्गन्ध वह छिपाना चाहती।—इति स्त्री-शास्त्र चूमाचाटी खण्डे।"

जदुनाथ—"वाह रे चचा शैतान, क्यों न हो! एक-एक बात लाख-लाख रुपये की कही है। क्या कहना है! देखिए छीना-झपटी की सलाह कितनी अच्छी और कितनी सच्ची है। कवियों ने भी इसका लोहा माना है—

"The Girl shall please me best that 'No' for
"Yea" ! can say;
And every wanton kiss can sesrion
with a Nay.

श्यामाचरण—"और ओठों पर फुन्सी की बात कितने मार्के की है। इसकी ताईद ज्ञानियों ने भी की है। देखिए—

"Kisses are women's birth-right and the girl who does not want them has either got a sore lip or desires to hide the awful truth that she has been eating onions."

अब तो चुम्बन के प्रसङ्ग पर मेरे मुँह से लार टपक पड़ी। बड़े जोरों से आह खींच कर मैं बिलबिलाने लगा—"काहे को नौ मन तेल होगा और काहे को राधा नाचेंगी ? यहाँ श्रीमती जी से मिलना ही तकदीर में नहीं लिखा है, चुम्बन की नौबत हाय ! कैसे आवे ?"

लाजीशियन—"क्यों ? क्यों ? क्या अभी उनसे भेंट नहीं हुई ? आज ही तो आई हैं, इसी दोपहर की गाड़ी से, क्योंकि मैं तुम्हें ढूँढ़ने के लिए पहिले तुम्हारे मकान पर गया था। वहाँ दरवाजे पर एक किराए की गाड़ी पर से तुम्हारे ससुर जी के साथ एक जनानी सवारी उतारते देखी थी। पता लगाने पर मालूम हुआ कि तुम्हारी श्रीमती जी आई हैं !"

मैंने बेताब होकर पूछा—"सच कहो। तुम्हें मेरी कसम ! हाय ! हाय ! आज नौ ही बजे से दफ्तर में हूँ। और शाम हो गई, अभी तक घर जाने का मौका भी नहीं मिला।"

श्रीमती जी को देखने का नशा मुझ पर एकाएक बड़े जोरों से चढ़ बैठा और मैं बदहवास होकर मकान जाने के लिए कमरे से गिरता पड़ता निकला। वैसे ही लपक कर लाजीशियन ने मेरा हाथ पकड़ लिया।

मैं—"ईश्वर के लिए भाई मुझे जाने दो।"

लाजीशियन—"मगर कसम याद रखना। कहीं भूल न जाना-नहीं गजब हो जायगा।"

मैं—"कैसी कसम ?"

लाजीशियन—"स्त्री-शास्त्र सुनने के पहिले तुमने साल भर के बदले दो साल तक अपनी श्रीमती जी से न बोलने की जो कसम खाई थी, क्या अभी से भूलने लगे ? मेरा क्या, तुम्हीं भुगतोगे भाई।"

"लाहौल बिलाकूवत !!!"

यह कह कर दोनों हाथों से मैंने अपना सर पीट लिया।

७

लाजीशियन का स्त्री शास्त्र ज्ञान में तो सच्चा था ही, मगर मुसीबत यह हुई कि वह अपने असर में भी सचाई दिखाने लगा, क्योंकि श्रीमती जी से बोलना तो दूर रहा, सिर्फ बोलने के ख्याल ने ऐसी आफत ढा दी कि मेरी जिद एक न चली। मामला घर पहुँचते ही लाहौल बिलाकूवत पर और लाहौल बिलाकूवत हो गया। ड्योढ़ी के भीतर भी कदम भी नहीं रखने पाया था कि घर भर मुझ पर अङ्गारे की तरह फट पड़ा। पिता जी अगियाबैताल बने डण्डा लेकर मुझे दरवाजे के बाहर तक खदेड़ लाए। और माता जी का क्या पूछना था ? वह सबसे ज्यादा आग बबूला हो रही थीं। द्वार पर आ-आकर मुझे कोसने लगीं। क्यों ? महज इसलिए कि ससुर जी आज इतवार पाकर उन्हें मुबारकबादी देने—यानी उनका नया बच्चा खेलाने—आए थे। अच्छा, इसमें कौन सी बिगड़ने की बात थी ? माना की खबर झूठ थी। फिर भी क्या साठ बरस की स्त्री को बच्चा नहीं होता ? और अगर नहीं भी होता तो मैंने यह खबर उड़ाई नहीं थी। इसका तार पिता जी की तरफ से ससुर जी को मेरे बारात में रवाना हो जाने के बाद दिया गया था। मगर अफसोस है कि इसे जाँच करने की किसी को भी नहीं सूझी। वहाँ तो यह अन्धेर मचा हुआ था कि बहू को बुलाने के लिए इसी बेहूदे ने यह बेहूदा तार दिया है, दूसरा कोई हो ही नहीं सकता। ससुर जी को क्या कहूँ, वह आग लगा कर मेरे घर पहुँचने के पहिले शाम ही की गाड़ी से लौट भी गए। मालूम होता है, हजरत ने और भी कुछ मेरे खिलाफ जड़ो हैं। तभी कुत्ते की चाल आए और बिल्ली की तरह भागे। खैर, उन्होंने यही बड़ी भलमनसाहत की कि श्रीमती जी को छोड़ गए। मगर क्या बताऊँ, ऐन मौके पर पिता जी की अक्ल पर पत्थर पड़ गया। उन्होंने साफ-साफ कह दिया कि खबरदार, अब जो कभी इस घर में कदम रक्खोगे तो टाँग तोड़ दूंगा। आप ही बताइए, ऐसे मरकहे पिता के साथ भला

कौन भलामानुस सपूत रहना पसन्द करता ? आखिर दफ्तर ही में बाजार की पूड़ी खाकर रहना पड़ा। मगर इससे बढ़ कर कम्बख्ती क्या होगी कि श्रीमती जी घर में मौजूद और बन्दा घर से निकला हुआ। उन्होंने मेरे लिए कुछ सिफारिश भी नहीं की। क्यों न हो, पतिवर्ता ही, ठहरीं।

पिता जी की यह हरकत मुझी को नहीं, बल्कि मेरे दोस्तों को भी बहुत बुरी मालूम हुई। यह कुछ नहीं, बस हिन्दुस्तानी बापों की हिन्दुस्तानियत है कि यह लोग जिन्दगी भर अपने लड़कों के बाप बने रहना चाहते हैं और यह हक बराबर जमाते रहने के लिए अपनी धाँधली से नहीं चूकते। इतना नहीं समझते कि लड़का अब बच्चा नहीं है। वह अपने बाप के दर्ज पर खुद पहुँच गया है। ऐसी हालत में इन लोगों का बाप बने रहने की कोशिश करना कितनी बड़ी मूर्खता है। इसलिए लाजीशियन की सलाह मुझे ठीक मालूम हुई कि पिता जी पर नोटिस दे दिया जाए कि क्यों न उन पर श्रीमती जी की रुखसत का दावा कर दूं। क्योंकि वही तो अब मेरे रास्ते में रोड़े अटका रहे हैं। बस अक्ल ठिकाने हो जाए। खुद दौड़े हुए आएँगे और खुशामदें करेंगे और तब मुझे घर में जाने से हर्गिज न रोकेंगे। इसके सिवाय उन्हें दबाने की और तरकीब ही क्या थी ?

मगर नोटिस पाते ही पिता जी दबने के बदले और भड़क उठे। लगे बकालतखाने में सभों को नोटिस दिखा-दिखा कर बमकने—"देखिए साहब, मेरे सपूत की कार्रवाई ! ससुर के ऊपर रुखसती का दावा होते तो आप लोगों ने सुना होगा, मगर बाप के ऊपर ऐसे दावे का किसी ने कभी ख्याल भी न किया। राम ! राम ! न जाने यह कम्बख्त किस नक्षत्र में पैदा हुआ था कि इसे जो सूझती है, उल्टी ही।"

यों शेखी बघारने को चाहे जो बघारते, मगर हजरत दिल में डर जरूर गए थे। क्योंकि कचहरी से जब मैं लौट कर अपने दफ्तर

वाले मकान में आया, तो देखा कि आपने श्रीमती जी को वहाँ पहिले ही भेज दिया है। वाह! वाह! कई युगों के बाद सोई हुई तकदीर जागी। बासी भात में भी अल्ला मियाँ का साझा? अब भला किसकी मजाल है कि मुझको उनसे अलग कर सके? रही उनसे न बोलने की कसम, उसके लिए मैंने पहिले ही से तदबीर सोच रक्खी थी। साँप मरे और लाठी न टूटे, तब तो मेरी बुद्धि की तारीफ है। तभी तो मैं इस कसम के अड़ङ्के पर भी उनसे मिलने के लिए व्याकुल था और पिता जी पर नोटिस दी थी। उसी वक्त स्त्री-शास्त्र की बात याद आई कि स्त्रियों को मर्दों के बदन पर अधिक कपड़े नहीं पसन्द आते। वैसे ही एक कमरे में घुस कर मैंने अपना चारजामा उतार डाला और झट पहलवानों की तरह लँगोट चढ़ा कर नङ्ग-धड़ङ्ग श्रीमती जी के सामने गया और लगा उनसे इशारों में बातें करने। क्योंकि मुंह से न बोलने की कसम खाई थी, कुछ हाथ-पैरों से थोड़े ही। मगर उनकी बुद्धि की बलिहारी कि वह मेरे इशारों के माना बिल्कुल ही बेतुका समझीं। उन्होंने जाना कि मैं उनसे कुश्ती लड़ने को कह रहा हूँ। बस वह भड़क कर भाग खड़ी हुई। यह अजब मुसीबत हुई। क्योंकि जब मैं आँगन में होता तो वह कमरों में घुस जातीं। जब वहाँ पहुँचता तब आँगन में चिल्ला कर हो रहतीं। इसी बीच में पिता जी के घर की नौकरानी फट पड़ी और यह तमाशा देखते ही बगटुट भागी। हमारा और श्रीमती जी का यह लुका-छिपी का खेल देर तक जारी रहा। मगर अफसोस! उनकी अक्ल इतनी मोटी थी कि लाख तरह से समझाने पर भी वह मेरे इशारों का मतलब न समझीं और अन्त तक न समझीं। इतने ही में खटपट करते हुए अन्दर कई आदमी घुस आए, जिनमें पिता जी और डाक्टर साहब भी थे। सब लोगों ने मिल कर मुझको पकड़ लिया। अब जाना कि पिता जी अपना बदला निकालने के लिए मुझे सीधे पागल-खाने भिजवाने का इन्तजाम कर रहे हैं। खासकर कब? जब श्रीमती

जी से दिल खोलकर मिलने में हाय! हाय! बस जरा सी ही कसर हर गई। लाहौल बिलाकूवत! कलियुग में अब ऐसे भी बाप होने लगे।

सात रोज तक लगातार मैं पिता जी के घर पर पहरे में रक्खा गया। अब श्रीमती जी भी वहीं थीं। मगर मैं उनके पास जाने नहीं पाता था। रात के वक्त मेरे दाहिने-बाए दो चौकींदार डण्डा लेकर सोते। दिन में तीन बार डाक्टर साहब आते थे। चौबीसों घण्टे मेरे सर पर कद्दू का तेल चपोड़ा जाता था। सर्दी के मारे मेरी नाक में दम हो गया। बीमार तो मैं न था, मगर कम्बख्तों ने मुझे मार-मार कर बीमार बना ही दिया। पिता जी ने अच्छा बदला लिया। अगर बड़ी से बड़ी खोपड़ी वाला औपन्यासिक भी इस ढङ्ग की कहानी गढ़ता, जिसमें वह मेरे ऐसे प्रेमी और उद्योगी पति को उसकी स्त्री के मिलन से रोके रखना चाहता, तो दावे से कहता हूँ कि वह दो ही चार परिच्छेदों के बाद दावात-कलम तोड़ कर फेंक देता, उससे ख्यालों बात में भी ऐसा अनर्थ न हो सकता। मगर श्रीमती जी औपन्यासिकों की भी चची निकलीं। उन्हें मेरे हाल पर कभी भी तरस नहीं आया। मेरे कोशिशों पर इस खूबी से बराबर पानी फेरती रहीं कि वह मेरे लिए जिन्दगी भर मृगतृष्णा बनी रहे और आखिर में उन्होंने मुझे पागल ही बना कर यमदूतों के चङ्गुल में हवाले किया। उन्हीं की कृपा की बदौलत मेरी यह गति हुई—कुछ मेरी गलती से नहीं। इसकी ताईद, मुझे विश्वास है, आप लोग भी जरूर करेंगे, क्योंकि न वह चिल्ला कर मेरे पास से भागी-भागी फिरतीं और न मुझे इस तरह बँधवा कर पहरे में रखने के लिए पिता जी को कोई बहाना मिलता। खैर, पन्द्रहवें दिन डाक्टरों से मेरा पिण्ड छूटा और उन लोगों ने सर्टिफिकेट दे दी कि अब इसका दिमाग सही है। उनका सर! गोया मैं पागल ही तो था।

ईश्वर-ईश्वर करके बड़ी मुश्किलों से आखिर वह भी रात आई, जब श्रीमती जी के कमरे में मुझे जाना नसीब हुआ। मगर उत्यारे

डाक्टरों ने मेरा सारा प्रेम दवाइयों के जरिए से जुकाम बनाकर बहा डाला था! इसलिए दिल में उमङ्ग तो थी, मगर मुर्दनी बहुत। इन्तजार करते-करते मेरी पलकें झपक गईं। किसी की छींक पर मेरी आँखें खुलीं। सामने ही श्रीमती जी को देखा। विश्वास न हुआ। आँख मल कर फिर घूरने लगा। फिर तो बासी कढ़ी में उबाल आ गया। मेरी मुहब्बत और खुशी दोनों गड़बड़ा कर भड़क गईं, और जोश में न जाने मैं क्या बोल उठा। मगर कसम की याद आते ही फौरन दाँतों से जबान दबा कर तकिए में अपना मुँह छिपा लिया। गजब हो गया। बोलने की हाय! बड़ी कड़ी सजा मिली। उस वक्त तकिए में एक भिड़ चिपकी हुई थी। उसने भनभना कर मेरे गाल और ओंठ में कचाकच डङ्क मार दिए। मैं चुपके से कसमसा कर रहा गया। उफ भी न कर सका। जल्दी से उठ कर मैं वहां से भागने लगा कि श्रीमती जी ने मेरा हाथ पकड़ लिया। अब जितना ही मैं अपना मुँह उनसे छिपाता था, उतना ही वह मुझे गुदगुदाती थीं। मुहब्बत भी भड़की तो धत् तेरे की! किस वक्त, जब मेरा मुँह बिल्कुल डबल-रोटी हो रहा था। उस पर न जाने कौन भस्खरा मेरी ही गली में यह शेर गाने लगा, और बड़े जोरों के साथ कि:—

वस्ल जानाँ का हुआ जाके तुझीसे मे नसीब।
शबते वस्ल मिला हमको तो सिरका होकर॥

लाहौल विलाकूवत!!! यह तो शायद मेरे ही ऊपर था। मगर नहीं-नहीं, उसकी ऐसी-तैसी—"देर आयद दुरुस्त आयद।" क्यों भई! ईश्वर करे ऐसा मिलन सबको नसीब हो।

* समाप्त *

मुद्रक—पं० बैकुण्ठनाथ भार्गव आनन्दसागर प्रेस, गायघाट, बनारस १.

नवीन सरल

फोटोग्राफी शिक्षा

यह फोटोग्राफी सम्बन्धी पुस्तक बिलकुल नये ढंग से लिखी गई है। इसमें फोटोग्राफी की प्रत्येक बात को चित्र उदाहरण और टेबुलों द्वारा अच्छी तरह समझाया गया है। प्रत्येक फोटोग्राफर को पूर्ण सहयोग मिलेगा।

मूल्य ६)

सरल

होमियो-पैथिक-चिकित्सा

होमियोपैथिक जगत् में अपूर्व चमत्कार उत्पन्न करनेवाली मेटिरिया मेडिका सहित। अल्पकाल के परिश्रम से ही आप अपरिमित धन कमाते हुए यश, लाभ उठा सकते हैं। इसी ग्रन्थ से आप मर्मज्ञ होमियोपैथिक डाक्टर बन सकते हैं। शीघ्र ही एक प्रति मंगाइए। मूल्य ८)

दूसरा नवीन संस्करण

स्वप्नदोष-विज्ञान

लेखक—

पं० गणेशदत्तजी 'इन्द्र',

विद्यावाचस्पति।

इस पुस्तक में 'स्वप्न-दोष' से सम्बन्धित सभी विषयों पर प्रकाश डाला गया है।

एक प्रति के लिये २) रु०।

हारमोनियम मास्टर

इस पुस्तक को पढ़कर आप हारमोनियम बजाना तथा मरम्मत करना अच्छी तरह सीख जाइयेगा इसके अलावा तबले और मृदंग का भी विषय देकर पुस्तक को सर्वश्रेष्ठ बना दिया गया है। इस पुस्तक ने संगीत प्रेमियों के दिल में अपना ऊँचा स्थान बना लिया है। मूल्य ४)

प्रकाशक—भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस १.

(ब्राञ्च—कचौड़ीगली, बनारस।)

रमल-शास्त्र

अर्थात्

रमल प्रदीपिका

(प्रथम भाग)

लेखक—पं० बचानप्रसाद त्रिपाठी, रमलाचार्य

चिन्ताहरण यन्त्री के निर्माता ।

यह पुस्तक क्या है, मनुष्यों का हृदय धन है; प्रत्येक प्राणिमात्र के हृदय की गुप्त वासना को प्रकट करनेवाला भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों काल का हाल सुगमतापूर्वक बतलानेवाला है !

इसमें क्या-क्या बातें आप पायेंगे, सूक्ष्म संकेत हम देते हैं। मनुष्य का भाग्य कैसा है ? भाग्योदय कब होगा, धनवान कब होंगे, यात्रा करने से लाभ होगा या हानि, मकान के इस हिस्सा में धन गड़ा है या नहीं ? यदि है तो मकान के किस हिस्से में है, ठीक-ठीक पता मालूम करना, इस स्थान में रहने से लाभ होगा या अन्य जगह जाने से लाभ होगा, प्यारे भाग्य में सन्तान-योग है या नहीं, सन्तान न होने में दोष किसका है ? कब और किस उपाय से दीर्घजीवी सन्तान होगी ? गर्भ है या नहीं ? यदि है तो कितने मास का, गर्भ में पुत्र होगा या कन्या, किस दिन किस लग्न में पुत्र होगा, मुकदमा कौन जीतेगा, ब्याह कब होगा ? स्त्री कैसी मिलेगी, इत्यादि असंख्य प्रश्नों के उत्तर एक साधारण हिन्दी पढ़ा हुआ व्यक्ति बिना किसी गुरु की सहायता के स्वयं ही समस्त भविष्य इस रमलशास्त्र ग्रन्थ के द्वारा मालूम कर सकेगा। मूल्य २॥), डाकखर्च ॥)

प्रकाशक—भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, बनारस १.

ब्राञ्च-कचौड़ीगली, बनारस ।

संसार के सभी विद्वानों तथा पत्र-पत्रिकाओं द्वारा सम्मानित

सचित्र तथा चमत्कारिक पुस्तक

जयहिंदका आध्यात्मिक रहस्य

'जयहिन्द' तथा 'अमर' शब्द का गूढ़ विवेचन

'जयहिन्द' शब्द तो सभी कहते व सुनते हैं, परन्तु इस शब्द का सम्बन्ध ब्रह्म से है—कैसे ? साथ ही साथ १०८ दाने माला में क्यों रखे जाते हैं ? अक्षय-नवमी का प्रारम्भ कैसे ? व्यासजी ने अट्ठारह पुराण क्यों बनाये ? भगवान कृष्ण ने गीता में अट्ठारह अध्याय में ही उपदेश क्यों दिया है ? व्यासजी ने अट्ठारह हजार श्लोक में ही महाभारत क्यों लिखा ? महाभारत में अट्ठारह अक्षौहिणी सेना का वर्णन क्यों हुआ ? और महाभारत युद्ध १८ दिन ही क्यों हुआ ? गोस्वामी तुलसीदासजी ने अपने मानस में अट्ठारह पद्य यूथप बन्दर ही क्यों लिखा ? तथा नवदुर्गा, नवार्णमन्त्र, नवग्रह, नव की गिनती इन सबका ब्रह्म से सम्बन्ध कैसे हुआ तथा सत्ययुग में सृष्टि कब से आरम्भ हुई ? त्रेतायुग में सीताराम, द्वापरयुग में राधाकृष्ण, कलियुग में जयहिन्द, कैलाशनाथ के नाम का महत्त्व ब्रह्म से सम्बन्ध रखता हुआ 'अमर' क्यों व कैसे है ? तथा बिसिमिल्लाहिर्रहमानेरहीम के जगह पर ७८६ क्यों लिखा जाता है ? और ज्योतिषियों के खेलने की सतरञ्ज सर्वतोभद्र का नक्शा तथा कई प्रकार के बीसा यन्त्र और उसके मुख पृष्ठ पर १०८ दाने माला जिसके प्रत्येक दाने में गाँधीजी का चित्र है, जिसका कि ब्रह्म से सम्बन्ध है, बहुत ही आकर्षक है, जिसकी लूट हो गई और देखकर बिना लिए तबियत नहीं मानती, शीघ्रता कीजिए—थोड़ा ही छपा है, अन्त में विद्यावाचस्पति गणेशदत्त इन्द्र द्वारा 'जयहिन्द' शब्द के गूढ़ विवेचन भी चार प्रकार से दिये गये हैं, इन सबका विस्तारपूर्वक प्रभाव जानने के लिये—

'जयहिन्दका आध्यात्मिक रहस्य' मूल्य ॥=) आना व डाकखर्च ।=) आना (कुल ॥।≥) आने का) टिकट भेजकर मंगाइये व लाभ उठाइये।

इस अद्भुत चीज़ की व्याख्या चित्र बनाकर अनोखे ढङ्ग से की गयी है, जिसे देखकर स्त्री, पुरुष, बाल, वृद्ध सभी का मन नवीन शैली की महत्ता पर फड़क उठेगा। थोड़ा ही छपा है ! शीघ्रता करें !

एक प्रति रजिस्ट्री से सुरक्षित पाने के वास्ते ॥=) मूल्य, ।=) डाकखर्च, कुल ॥।≥) भेजना चाहिए।

प्रकाशक—भार्गवपुस्तकालय, गायघाट, ब्राञ्च-कचौड़ीगली, बनारस १.